• वर्ष 23 • अंक 1 • अक्तूबर-दिसंबर 2010

बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन

बैंकिंग पर व्यावसायिक जर्नल

सहकारी बैंकिंग विशेषांक

सदस्य
ABCI
Member

बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन

विषय सूची

संपादक मंडल		1
संपादकीय		2
इतिहास के पन्नों से	डॉ. पुष्प कुमार शर्मा	4
● सहकारिता के विविध आयाम और सैद्धांतिक पक्ष	डॉ. रमाकांत शर्मा	9
● भारत में सहकारी आंदोलन का इतिहास एवं विकास	कुमार परिमलेन्दु सिन्हा	15
● सहकारिता के विकास के लिए किए गए सरकारी प्रयास	डॉ. एस. एल. लोढ़ा	25
● आर्थिक विकास में सहकारी संस्थाओं का योगदान	काज़ी मुहम्मद ईसा	29
● आर्थिक विकास में प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों की भूमिका	डॉ. भागचन्द्र जैन	38
● आर्थिक विकास और सहकारी बैंक - एक पहलू	डॉ. दामोदर खड़से	43
● कृषि एवं ग्रामीण विकास में सहकारी ऋण-संस्थाओं की भूमिका	डॉ. राजीव कुमार सिन्हा	45
● सहकारिता की पृष्ठभूमि में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की अनुपूरक भूमिका	संतोष श्रीवास्तव	50
● सहकारिता विकास में राज्य सहकारी तथा जिला सहकारी बैंकों की भूमिका	सुबह सिंह यादव	56
● सहकारी बैंकों के विकास में भारतीय रिज़र्व बैंक का योगदान	श्यामलाल गौड़	60
● सहकारी क्षेत्र पर लागू विधिक प्रावधान	डॉ. जयन्ती प्रसाद नौटियाल	65
● विश्वव्यापी बाज़ार अर्थव्यवस्था में सहकारिता की भूमिका	के. सी. मिश्रा	69
इधर-उधर से	सावित्री सिंह	75
● शहरी सहकारी बैंकों का संगठन एवं कार्यप्रणाली	डॉ. चेतना पाण्डेय	79
● अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन : सहकारी बैंकिंग का संकटमोचन	सुशील कृष्ण गोरे	83
● भारत में शहरी सहकारी बैंक : समस्याएं और समाधान	विनय बंसल	89
● शहरी सहकारी बैंकों का वर्तमान एवं भविष्य: सुधार की आवश्यकता	डॉ. नरेन्द्रपाल सिंह एवं डॉ. लोकेन्द्र सिंह	99
पुस्तक समीक्षा		108
अनुचिंतन		110
लेखकों से/पाठकों से		112

संपादक-मंडल

सदस्य

डॉ. शरद कुमार
निदेशक, सांख्यिकी और सूचना प्रबंध विभाग
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

के. सी. मिश्रा
महाप्रबंधक
कृषि बैंकिंग महाविद्यालय, पुणे

एस. सी. झंवर
प्रधानाचार्य
एस. पी. बी. टी. महाविद्यालय, मुंबई

सूरज प्रकाश
उप महाप्रबंधक (राजभाषा)
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

डॉ. गजेंद्र कुमार
सहायक महाप्रबंधक (राजभाषा)
इलाहाबाद बैंक, कोलकाता

डॉ. हरियश राय
सहायक महाप्रबंधक (राजभाषा)
बैंक ऑफ बड़ौदा, मुंबई

अरुण श्रीवास्तव
मुख्य प्रबंधक (राजभाषा)
यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई

प्रबंध संपादक

डॉ. पुष्प कुमार शर्मा
प्रभारी महाप्रबंधक (राजभाषा)
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

कार्यकारी संपादक

सावित्री सिंह
सहायक महाप्रबंधक (राजभाषा)
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

सदस्य सचिव

के.सी. मालपानी
प्रबंधक (राजभाषा)

भारतीय रिज़र्व बैंक
राजभाषा विभाग
केंद्रीय कार्यालय, गारमेंट हाउस
वरली, मुंबई 400 018

इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में दिये गये विचार संबंधित लेखकों के हैं। यह आवश्यक नहीं है कि भारतीय रिज़र्व बैंक उन विचारों से सहमत हो। इसमें प्रकाशित सामग्री को उद्धृत करने पर भारतीय रिज़र्व बैंक को कोई आपत्ति नहीं है बशर्ते स्रोत का उल्लेख किया गया हो।

डॉ. पुष्प कुमार शर्मा द्वारा भारतीय रिज़र्व बैंक, राजभाषा विभाग, गारमेंट हाउस, वरली, मुंबई 400 018 के लिए संपादित और प्रकाशित तथा मौज प्रिंटिंग ब्यूरो, मुंबई 400 004 में मुद्रित।

इंटरनेट http://www.rbi.org.in/hindi पर भी उपलब्ध। E-mail : rajbhashaco@rbi.org.in फोन 2498 2076 फैक्स 2498 2077

मुखपृष्ठ : सुधाकर वरवडेकर

संपादकीय

''शनै: पंथा, शनै: कंथा, शनै: पर्वत लंघनम
शनै: विद्या, शनै: द्रव्यम् एते पंच शनै: शनै:''

चिन्तन

नीति श्लोक का शाब्दिक अर्थ भी अपने आपमें बहुत महत्वपूर्ण है अर्थात् राह चलने का कार्य, कंथा(साधु) बनने की प्रक्रिया, पर्वतारोहण, विद्या एवं धन प्राप्ति का कार्य धीरे-धीरे ही होता है, इनमें अधीरता का कोई स्थान नहीं है। धैर्य रखना ही पड़ता है। परंतु इसमें अन्तर्निहित एक दूसरा अर्थ यह भी है कि जब राही को मंजिल मिलती है, अर्थात् वह अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेता है, कंथा अर्थात् साधुभाव प्राप्त करने में उम्र बीत जाती है, जब पर्वत के शिखर पर आप होते हैं, या विद्या प्राप्ति या धन प्राप्ति में आप उच्चतम शिखर पा लेते हैं; तो जो आनंद होता है वो अप्रतिम होता है, अद्वितीय होता है, अकल्पनीय होता है, आनंद का अथाह सागर प्राप्ति की चरम सीमा में होता है। परंतु, प्रारंभ से चरम की यात्रा अलौकिक अनुभव देती है - यह यात्रा ही है जो सक्रिय बनाती है, सामाजिक बनाती है, हमारे व्यक्तित्व निर्माण को इस यात्रा का ही प्रतिफल मानना चाहिये।

बैंकिंग के परिप्रेक्ष्य में, इस श्लोक को यदि हम समझें तो, बैंकिंग का प्रारंभ उसका पथ है, कंथा (साधु स्वभाव) भाव अर्थात् समभाव सभी ग्राहकों के साथ, स्टाफ के साथ शनै: शनै: ही प्राप्त होने की प्रक्रिया है, पर्वत का लंघन बाधाओं (आंतरिक एवं बाहरी) से पार जाना, विद्या यहां जुड़ता अनुभव है और धन बैंकिंग का लाभ है। यह एक चक्र है जिसे हम हर वर्ष तुलनपत्र के आइने से देखते हैं और अपनी प्रगति का मूल्यांकन करते हैं। ये पांचों कड़ियां आपस में जुड़ी हैं; किसी एक कड़ी का निकलना या टूटना, पूरे चक्र को पुन: परिचालित करने के श्रम से जोड़ देगा और वह बहुत कठिन होगा। पुन: प्रारंभ करना, पुन:.....। अत: बहुत जरूरी है कि भले ही हम सैद्धांतिक रूप से अपनी नीतियों की राह कैसी भी बनाये, परंतु हमें इन ''पांच तत्वों'' का आधार अपनी सफलता के लिये लेना ही पड़ेगा। तभी हम सफल बैंकर बन पायेंगे।

इस पत्रिका ने अपनी यात्रा 23 वर्ष पहले प्रारंभ की थी और इन्हीं पांच तत्वों को अपने 'कार्य दर्शन' का मूलमंत्र बनाकर आगे बढ़ती रही। पत्रिका ने अपनी पहचान तो बहुत अच्छी तरह से बना ली परंतु साथ ही अपने से जुड़े तमाम लोगों को भी पूरे बैंकिंग जगत में पहचान दिलायी। बैंकिंग पत्रिका के संपादन का गौरव मिला। यह इस 'शनै: शनै:' के सिद्धांत का ही प्रतिफल है कि प्रगति चहुंमुखी होती गई। पिछले आठ वर्षों में इस पत्रिका ने अधोहस्ताक्षरी को जो पहचान दी उसका मूल्यांकन विदाई के इस क्षण में नहीं हो सकता, यह एक अकूत धन है जो झोली में आ गया ...

पाठकों के स्नेह ने लौटाने नहीं दिया बल्कि उसमें वृद्धि की शनै: शनै:। चाणक्य ने कहा है कि -

अनित्यानि शरीराणिं विभवो नैव शाश्वत:।
नित्यं सन्निहतो मृत्यु कर्तव्यो धर्मसंग्रह।।

अर्थात् शरीर, धन, वैभव कुछ भी शाश्वत नहीं है, शाश्वत तो केवल मृत्यु है इसलिये धर्म संग्रह करना चाहिये। धर्म यहां कर्तव्य परायणता का संकेत है अर्थात् आप अपने कर्तव्य पालन को करते रहें वही सर्व कल्याण का गुरुमंत्र है। अधोहस्ताक्षरी ने इस गुरुमंत्र को अपनाने का प्रयास किया है बाकी कार्य तो इस पत्रिका ने किया है, पाठकों ने किया है। मैं अलविदा के इस पल में इसे ईमानदारी से स्वीकारता हूं, नमन करता हूं।

अनुचिन्तन

समय नहीं दिखता, परंतु उसकी करवट बदलती है तो दिखायी देता है - ***परिवर्तन,*** एक शाश्वत सत्य की तरह। इस लम्बी यात्रा में समय के साथ-साथ पत्रिका ने भी बहुत से रंगरूप बदलकर पाठकों के साथ अपना जुड़ाव बनाये रखा। हमें 'साक्षात्कार' नहीं छापने के लिये प्रश्नों का सामना करना पड़ रहा है तो 'इतिहास के पन्नों से' के लिये शाबाशी भी आ रही है। इसे कहते हैं परिवर्तन को स्वीकार करना। मैं शनै: शनै: अपनी बात पर आता हूं - और वह है परिवर्तन का यह पल। मेरी कलम से यह अंतिम संपादकीय है इस पत्रिका का, पर पाठकों के लिये परिवर्तन का एक संकेत। हमें मानकर चलना चाहिये कि परिवर्तन बेहतर ही होता है। पाठक के रूप में जुड़कर मैं भी उसी गौरव को महसूस करूंगा जो एक संपादक के रूप में अनुभव कर रहा हूं। ....विदा।

पुनश्च: 'इतिहास के पन्नों से' में इस बार दस्तक दे रहा है, पंजाब नैशनल बैंक। अपने विचारों के दरवाजे खोलकर स्वागत करें, तो उसकी सार्थकता है, उसकी महत्ता है। संपादक और पाठकों के बीच विद्यमान सहकारिता ही पत्रिका की घनिष्ठता को दर्शाती है और इसी भावना के साथ हमने यह अंक सहकारिता को समर्पित किया है। चूंकि हम और आप बैंकिंग से जुड़े हैं इसलिए हमारा यह अंक **'सहकारी बैंकिंग विशेषांक'** है।

आपकी प्रतिक्रियाओं ने पत्रिका को सदैव ही समृद्ध किया है, आगे भी करें, यही कामना है।

शेष!

सादर

(डॉ. पुष्पकुमार शर्मा)

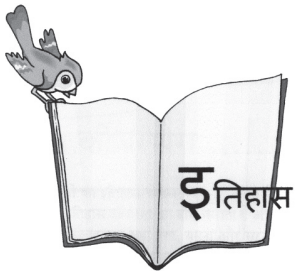

इतिहास के पन्नों से

भरोसे का प्रतीक....

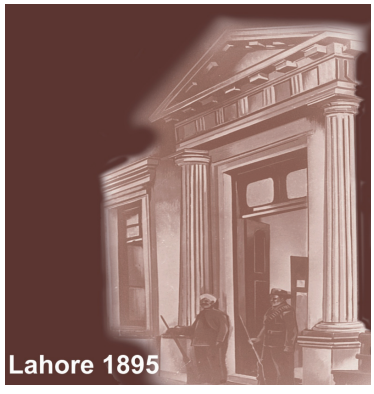

पंजाब नैशनल बैंक

किसी भी संस्था की कहानी को शब्दों में बांधना बड़ा मुश्किल काम होता है क्योंकि वह शब्दातीत होती है - इतिहास की लंबी परंपरा से जुड़ी होती है। इस श्रृंखला का प्रारंभ हमने पिछले अंक से किया था और उसका प्रतिसाद हमें बहुत बढ़िया मिल रहा है। इसी कड़ी में है इस बार पंजाब नैशनल बैंक का इतिहास।

पंजाब नैशनल बैंक, एक जीवंत बैंक जो अपनी कहानी स्वंय कहता है। इस आलेख के लिए हम आभारी हैं पंजाब नैशनल बैंक के श्री श्रीलाल प्रसाद एवं सुश्री नीरा कटारिया के जिन्होंने अपनी अथक मेहनत से हमें यह सामग्री उपलब्ध करायी। उनके हम ऋणी हैं । आशा है, पंजाब नैशनल बैंक की यह कहानी आपको सूचनापरक और रोचक प्रतीत होगी।

116 वर्षों का सफर इतिहास के पन्नों पर कोई बहुत लम्बा रास्ता तय करने का अफसाना तो नहीं होता, परन्तु जीवन की चुनौती भरी पगडंडियों पर मंजिल की ओर निरन्तर बढ़ते रहने के साहस भरे अद्‌भुत अभियान का आह्लादकारी आख्यान अवश्य होता है। मेरी जीवन-यात्रा भी ऐसे ही आख्यानों से भरी पड़ी है। इस अहर्निश यात्रा की कुछ सुखद यादों को मैं आपके साथ बाँटना चाहता हूँ।

मैं इस सफर में भारतीय बैंकिंग व्यवस्था और आर्थिक विकास का चश्मदीद गवाह तो रहा ही हूँ, कुछ हद तक भागीदार भी रहा हूँ। मेरी आपबीती शताधिक वर्षों के कालखंड की दास्ताँ भी सुनाएगी और काल-जनित परिस्थितियों में मेरी कार्यशैली की झलकियाँ भी दिखाएगी, क्योंकि एक छोटी-सी ज्वाइंट स्टॉक कंपनी के रूप में यात्रा शुरू कर भारत जैसे महान देश का एक महत्वपूर्ण सार्वजनिक क्षेत्र का बैंक बन जाने और वैश्विक बैंक होने की ओर दमदार कदम बढ़ाने की कथा कोई आम किस्सागोई नहीं, बल्कि देश और समाज के क्रमिक विकास तथा अर्थतंत्र के सुदृढ़ीकरण का इतिहास है। इसलिए यादों के झरोखे में आपको बिठाकर इतिहास के उन पन्नों की सैर कराने की मेरी ख्वाहिश है।

सन् सत्तावन के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में हार से उपजी हताशा के गर्भ से भारतीय नवजागरण और राष्ट्रीय पुनर्जागरण का सूर्य शनै:शनै: उसी प्रकार निकलने लगा था जिस प्रकार अमावस की काल-रात्रि के घुप्प अंधेरे की कोख से सुबह की सुनहरी किरणें धीरे-धीरे पूर्वी क्षितिज पर फैलने लगती हैं और फिर जल-थल-नभ को आलोकित कर देती हैं। उस वक्त, जब सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि हर तंत्र ब्रिटिश हुक्मरानों के अधीन था और उनसे होने वाले फायदे ब्रितानियों के भोग-विलास के संसाधन जुटाने के जरिया मात्र थे, भारतीयता और राष्ट्रीयता का अलख जगाने वाले महान देशप्रेमियों ने ऐसे बैंक की आवश्यकता महसूस की जो भारतीय पूंजी से भारतीयों द्वारा स्थापित भारतीयों के आर्थिक विकास का माध्यम हो तथा जिससे होने वाला मुनाफा देशवासियों की खुशहाली का साधन बने। इसी सोच के साथ लाला लाजपत राय और राय मूलराज जी की प्रेरणा से मात्र दो लाख रुपये की प्राधिकृत पूंजी से पंजाब नैशनल बैंक लिमिटेड के रूप में 19 मई, 1894 को अनारकली, लाहौर में मेरा जन्म हुआ। मेरा प्रोस्पेक्टस ट्रिब्यून, अखबारे आम और पैसा जैसे समाचार-पत्रों में छपा।

19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में औद्योगिक क्रांति और राष्ट्रीय पुनर्जागरण से प्रेरित पंजाब का तत्कालीन नवोदित प्रभावशाली वर्ग स्वदेशी आंदोलन को आर्थिक समर्थन देने के ख्याल से अखबारों, स्कूल-कॉलेजों-पुस्तकालयों, बैंक व बीमा कंपनियों तथा कल-कारखानों में निवेश कर रहा था। मुझे उनका भरपूर स्नेह तो मिला ही, ब्रिटिश भारत में पश्चिम से आए तकनीकी संसाधन भी मुझे प्राप्त हुए। इस प्रकार पुरानी स्वदेशी व्यापारिक और बैंकिंग परम्पराएं मुझे विरासत में मिलीं तो नवीन ब्रिटिश बैंकों का भी मुझ पर प्रभाव पड़ा।

पंजाब केसरी लाला लाजपत राय
(हमारे संस्थापक)

गुलाम भारत में पैदा होने वाला मैं ऐसा बैंक था जिसका नामकरण नैशनल शब्द यानी राष्ट्रीय भाव-बोध के साथ हुआ। प्रारंभ में मेरे प्रतीक चिह्न में पंजाब की पाँच प्रसिद्ध नदियां थीं किन्तु अब ''प'' मेरा प्रतीक चिह्न है। ''प'' देवनागरी लिपि के इक्कीसवें व्यंजन वर्ण 'प' से बना है। 'प' से बनता है, पनाह, 'प' से परवरिश, 'प' से पहचान, 'प' से पहुंच और 'प' से परम्परा। कुछ ऐसा ही है मेरा प्रतीक।

मेरे संस्थापक निदेशक-मंडल में दयाल सिंह कॉलेज और ट्रिब्यून के संस्थापक सरदार दयाल सिंह मजीठिया; विख्यात बंगाली वकील काली प्रसन्न रॉय जो वर्ष 1900 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लाहौर सत्र में उसकी स्वागत समिति के अध्यक्ष भी रहे; अमृतसर के सुप्रसिद्ध बैंकर, व्यापारी और रईस लाला ढोलन दास; डी.ए.वी. कॉलेज के संस्थापकों में शामिल और उसकी प्रबंध-समिति के अध्यक्ष लाला लाल

चंद; सुप्रसिद्ध पारसी व्यापारी और जमशेदजी एंड कं., लाहौर के साझीदार ई सी जस्सावाला; मुलतान के जाने-माने रईस, व्यापारी और परोपकारी लाला प्रभु दयाल और पंजाब के पहले उद्योगपति के तौर पर प्रसिद्ध हुए लाला हरकृष्ण लाल जी आदि सात निदेशक थे। इस प्रकार वह बोर्ड व्यापक आधार वाला था और सभी सातों महानुभाव भारत के विभिन्न हिस्सों से और अलग-अलग धर्मों के थे लेकिन उनका उद्देश्य एक था - देश के आर्थिक विकास को गति देने वाले स्वदेशी बैंक की स्थापना करना।

पंजाब में गेहूं की फसल की कटाई की शुरुआत बैसाखी के दिन हर्षोल्लास से की जाती है और बैसाखी वहां का एक प्रसिद्ध त्योहार है। मेरा पंजीकरण 19 मई, 1894 को हुआ था किन्तु कारोबार के लिए 12 अप्रैल, 1895 को यानि बैसाखी से एक दिन पहले मुझे खोला गया।

मई, 1895 में बोर्ड ने श्री बिशन दास, अधीक्षक, प्रबंधक कार्यालय, उत्तर -पश्चिम रेलवे, लाहौर को मेरा लेखा-परीक्षक नियुक्त किया ताकि शेयर-धारकों को मेरी प्रगति से समय-समय पर ईमानदारी से अवगत करवाया जा सके। उल्लेखनीय है कि ऐसा इस अपेक्षा को कानूनन आवश्यक करने से बहुत पहले किया गया था। निदेशकों ने 12 मई से 31 दिसम्बर, 1895 तक के संबंधित खाते और अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

संभवत: पंजाब में वह ऐसी पहली ही कारपोरेट रिपोर्ट रही होगी। लगभग सात माह की अवधि में ही मैंने 1555 रुपये का लाभ कमा लिया और 4% की दर से अपना पहला लाभांश भी घोषित कर दिया। अपने जन्म के पांच साल बाद ही मैं 1900 में अपने जन्म स्थान से रावलपिंडी चला गया। 1903 तक मैंने पांच शहरों का दौरा कर लिया और उनमें मेरी 5 शाखाएं हो गई, मेरा शुद्ध लाभ 21.43 लाख रुपये तक पहुंच गया और 7% की दर से मैंने लाभांश घोषित किया।

दिसम्बर, 1896 में मैंने 3.75 प्रतिशत की ब्याज दर पर ऐसे व्यक्तियों के लिए बचत खाता खोलने की सुविधा आरंभ की जो अपने खाते में बड़ी धन राशि नहीं रख सकते थे लेकिन अपनी थोड़ी-बहुत आमदनी का निवेश लाभप्रद तरीके से इस प्रकार करना चाहते थे कि जरूरत पड़ने पर वे अपने पैसे निकाल सकें। चालू, बचत और सावधि जमा जैसे विभिन्न प्रकार के जमा खातों के लिए ध्यानपूर्वक नियम तैयार किए गए। उनमें से अधिकांश मूलभूत नियम थोड़े-बहुत परिवर्तनों के साथ आज भी प्रभावी हैं। अपने ग्राहकों के इस विश्वास को कायम रखते हुए मैं वर्ष 1906 में अनारकली, लाहौर की उसी सड़क पर बने अपने नए भवन में स्थानान्तरित हो गया।

लाला हरकृष्ण लाल जी द्वारा स्थापित पीपल्स बैंक ऑफ इंडिया के फेल हो जाने से वर्ष 1913 में भारतीय बैंकिंग उद्योग में भारी संकट उत्पन्न हो गया। इस अवधि के दौरान 78 बैंक फेल हो गए। यह विकट स्थिति अचानक ही आई लेकिन इस अपरिचित स्थिति में भी मैं अपनी मजबूती के कारण शांत और विश्वस्त रहा। पंजाब के तत्कालीन वित्तीय आयुक्त श्री जे.एच. मेनार्ड ने कहा....''**आपका बैंक अस्तित्व में रहा ...नि:संदेह अच्छे प्रबंधन की वजह से**''। ये शब्द मेरे प्रबंधन में जनता के विश्वास को अभिव्यक्त करते हैं। वर्ष 1913 का बैंकिंग संकट वर्ष 1914 में भी जारी रहा और युद्ध छिड़ जाने से स्थिति और भी बिगड़ गई। नवम्बर 1914 में मेरे शेयर-धारकों ने एकमत होकर मेरे पूंजी आधार को 50 लाख रुपये तक बढाने हेतु अनुमोदन प्रदान किया। वर्ष 1920 में मैं पच्चीस वर्ष का हो गया।

अप्रैल 1923 में एलायंस बैंक ऑफ शिमला लिमिटेड बंद हो गया तो मैंने तुरंत पूरे आत्म विश्वास के साथ पेशावर और शिमला में शाखाएं खोल दीं ताकि एलायंस बैंक ऑफ शिमला लिमिटेड के कारोबार को प्राप्त किया जा सके। तत्पश्चात लाहौर की प्रसिद्ध माल रोड पर आधुनिक सुविधाओं वाली एक बड़ी बिल्डिंग 7.5 लाख रुपये में खरीदी गई और मुझे उसमें स्थानान्तरित कर दिया गया। वर्ष 1926 से 1936 तक की अवधि संसार भर में बैंकिंग उद्योग के लिए उठा-पटक वाली और नुकसानदेह रही। वर्ष 1929 में वाल स्ट्रीट में आई भारी गिरावट से दुनिया जबरदस्त आर्थिक संकट में आ गई। इसी अवधि के दौरान जलियांवाला बाग समिति द्वारा मेरे यहां खाता खोला गया जिसका परिचालन आने वाले दशक में महात्मा गांधी और पंडित जवाहर लाल नेहरू ने भी किया।

जनवरी, 1940 में मैंने **भगवान दास बैंक लिमिटेड** का स्वामित्व अपने हाथों में लिया। मेरे द्वारा किया गया वह पहला अधिग्रहण था। वर्ष 1941 से 1946 तक की पांच वर्ष की अवधि के दौरान अत्यधिक विकास हुआ। आरंभ में मेरी मात्र 71 शाखाएं थीं जो बढ़कर 278 हो गईं। जमाराशियां 10 करोड़ रुपये से बढ़कर 62 करोड़ रुपये तक पहुंच गईं। 31 मार्च 1947 को मैंने अपने जन्म स्थान लाहौर को छोड़ दिया और मेरा पंजीकृत कार्यालय दिल्ली स्थानान्तरित हुआ जिसके लिए लाहौर उच्च न्यायालय से 20 जून, 1947 को अनुमति ले ली गई। यह फैसला इसलिए लिया गया ताकि मैं अपना कार्य और अधिक किफायत, कुशलतापूर्वक तथा सुविधाजनक ढंग से कर सकूं। बावन वर्षों में यह मेरा चौथा कार्य-स्थल था। पांचवी बार मैं नवम्बर, 1947 में 8, अंडर हिल रोड, सिविल लाइन्स, तथा दिल्ली में छठी बार वर्ष 1958 में मेरा प्रधान कार्यालय संसद मार्ग, दिल्ली में स्थानान्तरित हुआ जहां से मुझे सातवीं बार 1987 में भीखाजी कामा प्लेस, नई दिल्ली स्थानान्तरित किया गया। सच कहूं, बार-बार होने वाले स्थानान्तरण पंजाबियों की भ्रमणकारी प्रवृत्ति से मेल खाते हैं।

देश के विभाजन के दौरान मुझे अनेक कठिन स्थितियों का सामना करना पड़ा। मेरी जमाराशियां 1949 में घटकर 43 करोड़ रुपये रह गई थीं जो जुलाई,1969 तक बढ़कर 355 करोड़ रुपये तक पहुंच गईं। बैंक के कार्यालयों की संख्या बढ़कर 569 हो गई और अग्रिम जोकि 1949 में 19 करोड़ रुपये थे, जुलाई, 1969 तक बढ़कर 243 करोड़ रुपये हो

गए। यह सब मेरे परिश्रमी और लगन से कार्य करने वाले कर्मचारियों के प्रयासों से ही संभव हो सका।

आप भलीभांति अवगत हैं कि 19 जुलाई, 1969 भारतीय बैंकिंग के इतिहास की एक महत्वपूर्ण तारीख है क्योंकि इस दिन 14 बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण हुआ था जिनमें मैं भी शामिल था। उस समय मैंने अपने अस्तित्व के पचहत्तर वर्ष पूरे कर लिए थे। इस प्रकार मैं एक ऐसा अग्रणी बैंक हूं जिसका जन्म तो एक बड़े परिवार में हुआ लेकिन कालांतर में देश के एकल स्वामित्व में पहुंच गया। ग्रामीण क्षेत्रों में सुगमतापूर्वक ऋण उपलब्ध करवाने की प्रणाली को सुदृढ़ करने के प्रयोजन से मैंने कुछ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को भी प्रायोजित किया।

1970-80 का दशक भी महत्वपूर्ण रहा जिसके दौरान भारतीय बैंकिंग उद्योग में बुनियादी परिवर्तन किए गए। मेरे प्रबंधन ने राष्ट्रीयकरण की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए बड़े उत्साह के साथ प्रयास किए। 31 दिसम्बर, 1980 को बैंक की जमाराशियां 2765 करोड़ रुपये हो गईं और उनमें उस वर्ष की 27.1% वृद्धि दर्ज़ हुई थी। अग्रिम बढ़कर 1535 करोड़ रुपये हो गए थे और शाखाओं की संख्या 1680 तक पहुंच गई। रिज़र्वों के पूंजीकरण के बाद प्रदत्त पूंजी 2 करोड़ से बढ़कर 5 करोड़ रुपये हो गई। मैं तेजी से प्रगति करता रहा। 1985 आते-आते जमाराशियां बढ़कर 6313 करोड़ रुपये तथा अग्रिम बढ़कर 3359 करोड़ रुपये हो गए। शाखाओं की संख्या बढ़कर 2266 तक जा पहुंची।

1990 के दशक के अंत में उदारीकरण का आरंभिक दौर आया और मैंने विविधीकरण करना शुरू किया; 2002 में अत्यधिक सफल रहे आईपीओ के जरिए सरकार की 20% हिस्सेदारी जन-साधारण को बेची गई। बासल-II मानदंड के अनुपालन हेतु पूंजी की भावी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए मार्च, 2005 में मेरा बुक बिल्डिंग के जरिए एफपीओ लाया गया जिसके परिणामस्वरूप मुझमें सरकार की हिस्सेदारी 57.8% ही रह गई। आपने देखा होगा कि इस वर्ष - 2010 में मैंने 220 प्रतिशत लाभांश की घोषणा की है।

कारोबार के नए प्रकार के कार्यों के लिए मैंने अलग अनुषंगी कंपनियों की स्थापना की जैसे पीएनबी कैपिटल सर्विसेज़ लिमिटेड (जिसे बाद में बंद कर दिया गया), वर्ष 1988 में पीएनबी हाउसिंग फाइनेंस प्रा. लिमिटेड, वर्ष 1996 में पीएनबी गिल्ट्स, वर्ष 2006 में यूके में निगमित पंजाब नैशनल बैंक (इंटरनेशनल) लिमिटेड और वर्ष 2009 में पीएनबी इंवेस्टमेंट सर्विसेज़ लिमिटेड। बैंक- उत्पाद मुहैया करवाने के साथ-साथ मैं क्रेडिट कार्ड, डेबिट कार्ड, बुलियन व्यवसाय जीवन और गैर जीवन बीमा, सोने के सिक्के और आस्ति प्रबंधन जैसे कारोबार भी करने लगा हूं।

यह देखकर कि ग्राहकों की आवश्यकताएं कई गुना बढ़ गई हैं मैंने जमाराशियों और अग्रिमों की अनेक नई योजनाएं लागू कीं जिनमें उपभोक्ता ड्यूरेबल्स के लिए ऋण से संबद्ध आवर्ती जमा योजनाएं, कैपिटल गेन्स एकाउंट्स योजना, वर्ष 1988 में पेंशनर्स मेडिकल बेनिफिट योजना, वर्ष 2002 में जन-साधारण के लिए वैयक्तिक ऋण योजना, 2004 में पीएनबी बागवाँ योजना, 2005 में पेशनभोगियों के लिए वैयक्तिक ऋण योजना आदि प्रमुख हैं। आपको यह बताते हुए मुझे बहुत खुशी हो रही है कि मैंने ही पहली बार वर्ष 1988 में मुख्य कार्यपालक द्वारा ग्राहकों की शिकायतों को व्यक्तिगत तौर पर सुनने की प्रणाली शुरू की थी जिसे बाद में बैंकिंग प्रणाली द्वारा भी अपना लिया गया। वर्ष 1895 में मेरे जन्म के समय से ही मुझे लोगों के बैंक के रूप में जाना जाता है और मैं देशभर में लाखों लोगों की सेवा करता रहा हूं। मेरे लिए यह गर्व की बात रही है कि मुझे अन्य ग्राहकों के साथ-साथ सर्वश्री जवाहर लाल नेहरू, गोविन्द वल्लभ पंत, लाल बहादुर शास्त्री, रफी अहमद किदवई, श्रीमती इंदिरा गांधी जैसे महान् राष्ट्रीय नेताओं की भी सेवा करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

इन 116 वर्षों के दौरान सात बैंक मुझ में समाविष्ट हुए :- भगवान दास बैंक (1940), भारत बैंक (1951), यूनिवर्सल बैंक (1961), इंडो कर्मशियल बैंक (1961), हिंदुस्तान कर्मशियल बैंक (1986), न्यू बैंक ऑफ इंण्डिया (1993) तथा नेडुनाडी बैंक (2003)। मैं ही एकमात्र ऐसा बैंक हूं जिसमें किसी राष्ट्रीयकृत बैंक यानि न्यू बैंक ऑफ इंण्डिया का 1993 में विलय हुआ है। अतीत के झरोखे से झाँकते हुए आज मैं अत्यधिक संतोष से यह कह सकता हूं कि इन सभी विलयों का प्रबंधन अच्छी तरह किया गया और उनकी प्रक्रिया बाधा रहित और कारगर रही। यह भी उल्लेखनीय है कि किसी अन्य राष्ट्रीयकृत बैंक में कभी इतने विलय नहीं

हुए। इससे मेरी फ्रेंचाइज़ वैल्यु भी बढ़ी है।

समय व्यतीत होने के साथ-साथ मेरा क्रमिक विकास हुआ और आज मेरे सभी बुनियादी पक्ष सुदृढ़ हैं, विस्तृत फ्रेंचाइज़ वैल्यु और अच्छी ब्रांड छवि है। मैंने नई पीढ़ी के प्रौद्योगिकी पसंद ग्राहकों को प्रौद्योगिकी पर आधारित विभिन्न प्रकार की सुविधाएं काफी तेजी से उपलब्ध करवाई हैं और इस प्रकार उनके साथ चलने का भी प्रयास किया है। आज मेरे 10 लाख से भी अधिक इंटरनेट बैंकिंग (रिटेल और कारपोरेट दोनों ही प्रकार के) ग्राहक हैं। पीएनबी इंटरनेट चैनलों से ज्ञात होता है कि ग्राहक अब शाखाओं में जाने के बजाय धीरे-धीरे इनका ही प्रयोग करने लगे हैं। मैं ग्राहकों की सुविधा के लिए एसएमएस सेवा सहित मोबाइल बैंकिंग सुविधाएं, एटीएम एक्सेस और एटीएम डेबिट कार्ड सेवा भी प्रदान कर रहा हूं जिससे लोगों को उनके कार्यों में आसानी रहे।

मैंने वित्तीय समावेशन के लिए व्यापक अभियान चलाया है। मुझे आबंटित 2000 से अधिक की जनसंख्या वाले 4000 गांवों में, जिनमें अभी तक बैंकिंग सुविधाएं नहीं हैं, मैं कम लागत वाली प्रौद्योगिकी की सहायता से बैंकिंग सुविधाएं उपलब्ध करवाऊंगा। आईडीआरबीटी ने मुझे वर्ष 2009 का वित्तीय समावेशन हेतु प्रौद्योगिकी का सर्वश्रेष्ठ प्रयोग पुरस्कार प्रदान किया है।

मुझे याद है कि ग्राहकोन्मुख सेवाओं को विस्तार देने के लिए मैंने 1944 में टेलर सिस्टम की शुरुआत की थी, जबकि देश में लघु उद्योगों के विकास को गति देने के लिए 1964 में विशेष लघु उद्योग कक्ष तथा कृषि प्रधान देश में कृषि को उन्नत बनाने हेतु वित्तपोषण के लिए 1967 में कृषि कक्ष की स्थापना की, 22.09.2000 को पीएनबी किसान कल्याण ट्रस्ट की स्थापना तथा 16.11.2003 को पी.एन.बी. किसान प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना भी की। आज मेरे 8 किसान प्रशिक्षण केन्द्र हैं।

मेरे 56 मिलियन से अधिक संतुष्ट ग्राहक और (विदेश स्थित 5 शाखाओं सहित) 5000 से भी अधिक कार्यालय हैं एवं शत-प्रतिशत व्यवसाय और कार्यालय सीबीएस यानी कोर बैंकिंग से जुड़े हुए हैं। कोर बैंकिंग सिस्टम में द्विभाषिक (हिन्दी एवं अंग्रेजी) सुविधाएं उपलब्ध हैं तथा हिन्दी पत्राचार आदि के लिए यूनीकोड फॉन्ट का प्रयोग किया जाता है।

राष्ट्रीयकृत बैंकों में मैंने अपना नेतृत्व वाला स्थान कायम रखा है। फोर्बस द्वारा जारी विश्व की 2000 अत्यधिक बड़ी कंपनियों की सूची में से राष्ट्रीयकृत बैंकों में मैं प्रथम रहा और वर्ष 2010 में मेरा विश्व में 695वां स्थान रहा जोकि गत वर्ष 946वां था और इस प्रकार इसमें काफी सुधार हुआ। फाइनेंशियल एक्सप्रेस एवं अर्नस्ट एंड यंग द्वारा करवाए गए सर्वेक्षण के अनुसार मुझे ''भारत का सर्वश्रेष्ठ सार्वजनिक क्षेत्र का बैंक'' भी घोषित किया गया। इसके अतिरिक्त, उत्कृष्ट सेवाएं प्रदान करने, सीएसआर (कॉरपोरेट सामाजिक दायित्वों) पद्धतियों, पारदर्शी प्रशासनिक संरचनाओं, प्रौद्योगिकी के उत्तम प्रयोग और अच्छी मानव संसाधन प्रबंधन पद्धतियों के लिए भी मुझे अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। कारोबार और लाभ के मामले में रही आंकड़ों की बात तो आप सभी जानते हैं, ये सारे इंटरनेट पर उपलब्ध है हीं।

इस महत्वपूर्ण यात्रा में मेरे सभी ग्राहकों, शेयर-धारकों और निवेशकों ने मुझे मज़बूती और साहस प्रदान किया और मुझ पर अपना विश्वास बनाए रखा जिससे मैं हर वर्ष नई-नई बुलंदियों को प्राप्त कर सका। अथक परिश्रम करने वाले अपने कर्मचारियों का उल्लेख किए बिना मेरी कहानी कैसे पूरी हो सकती है। ये सभी आपकी निरंतर बढ़ती मांगों और उम्मीदों को पूरा करने में मेरे साथ पूरी क्षमता और उत्साह से कार्यरत रहे।

मेरा गौरवशाली अतीत मेरे वर्तमान का आईना है, मेरा सम्मानजनक वर्तमान मेरे उज्ज्वल भविष्य की खिड़कियाँ हैं जिनसे मैं देख रहा हूं कि अपने आश्वस्त-विश्वस्त संरक्षक ग्राहकों और निष्ठावान परिजनों की बदौलत मेरा भविष्य बेहतर, उज्ज्वलतर होते हुए स्वर्णिम शिखर की ओर अग्रसर है।

शेष फिर कभी।

आपका अपना

पंजाब नैशनल बैंक
...भरोसे का प्रतीक !

प्रस्तुतीकरण- डॉ. पुष्प कुमार शर्मा

सहकारिता के विविध आयाम और सैद्धांतिक पक्ष

● डॉ. रमाकांत शर्मा*

सहकारिता परस्पर सहयोग के माध्यम से सामूहिक और व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने की मूल भावना पर आधारित है। कोई भी कार्य जो पारस्परिक लाभ के लिए मिलजुल कर किया जाए, सहकारिता की परिधि में रखा जा सकता है। उत्पादन, क्रय, विक्रय या वितरण आदि के लिए व्यक्तियों का मिलजुल कर कार्य करना ताकि वे संयुक्त रूप से लाभान्वित हो सकें, सहकारिता की मूल भावना को प्रतिबिंबित करता है। अंतरराष्ट्रीय सहकारिता संघ (इंटरनेशनल को ऑपरेटिव एलायंस) ने सहकारिता को निम्नानुसार परिभाषित किया है :-

''सहकारिता एक ऐसा स्वशासी संगठन है जिसमें व्यक्ति अपने समान आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उद्देश्यों, आवश्यकताओं और अपेक्षाओं को संयुक्त स्वामित्व और प्रजातांत्रिक तरीके से नियंत्रित संस्था के माध्यम से पूरा करने के लिए स्वैच्छिक रूप से एकत्रित होते हैं।''

''सहकारिता एक ऐसा स्वशासी संगठन है जिसमें व्यक्ति अपने समान आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उद्देश्यों, आवश्यकताओं और अपेक्षाओं को संयुक्त स्वामित्व और प्रजातांत्रिक तरीके से नियंत्रित संस्था के माध्यम से पूरा करने के लिए स्वैच्छिक रूप से एकत्रित होते हैं।''

उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार ''सहकारिता'' की निम्नलिखित विशेषताएं उभर कर सामने आती हैं :-

(1) यह व्यक्तियों का संगठन है जिसमें व्यक्ति तथा विधिक व्यक्ति दोनों को ही शामिल किया जा सकता है।

(2) सहकारिता एक स्वशासी संगठन है जिसका स्वरूप सरकारी संस्थाओं, कंपनियों और फर्मों से भिन्न है।

(3) इसमें व्यक्ति स्वैच्छिक रूप से शामिल होते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि सहकारिता के अंतर्गत सदस्यता अनिवार्य नहीं होती। इसके सदस्य अपनी इच्छा से शामिल होते हैं और अपनी इच्छा से सदस्यता छोड़ने के लिए स्वतंत्र होते हैं।

(4) सहकारिता के आधार पर गठित संस्था के सदस्य अपने समान आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उद्देश्यों तथा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए मिलजुल कर कार्य करने की दृष्टि से एकत्रित होते हैं।

(5) सहकारी संस्था संयुक्त स्वामित्व वाली ऐसी संस्था होती है जिस पर सदस्यों का प्रजातांत्रिक रूप से नियंत्रण रहता है। सहकारिता की यह एक ऐसी प्रमुख और महत्वपूर्ण विशेषता है जो इसे अन्य प्रकार की संस्थाओं से अलग करती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सहकारिता के आधार पर गठित संस्थाएं ऐसी स्वशासी और प्रजातांत्रिक रूप से नियंत्रित संस्थाएं होती हैं जिनमें व्यक्ति स्वेच्छा से शामिल होकर परस्पर सहायता और सहयोग के जरिए संयुक्त रूप से और व्यक्तिगत रूप से लाभान्वित होते हैं।

सहकारिता आंदोलन

सहकारिता की उपर्युक्त आधारभूत विशेषताओं के कारण इसने 19वीं शताब्दी की शुरुआत में ग्रेट ब्रिटेन में एक आंदोलन का रूप ले लिया। राबर्ट ओवेन जैसे आर्थिक-सामाजिक सुधारकों ने सहकारिता के विचार को ठोस शक्ल देने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। शुरुआती असफलता के बाद सहकारिता का विचार तब परवान चढ़ा जब 'रोशडेल सोसायटी ऑफ इक्विटेबिल पायोनियर्स' ने सहकारिता के सिद्धांतों पर अमल करते हुए इसे सामान्य व्यावसायिक कंपनियों से अलग

* सेवानिवृत्त महाप्रबंधक, भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

स्वरूप प्रदान किया। इस हेतु मेनचेस्टर के पास रोशडेल में बुनकरों के एक समूह ने अपना स्वयं का एक ग्रोसरी स्टोर स्थापित किया ताकि वे उसके जरिये प्राप्त लाभ को आपस में बाँट सके। उन्होंने मिलकर रोशडेल सोसायटी का गठन किया जिसमें प्रत्येक सदस्य ने समान राशि का अंशदान किया। वर्ष 1844 में रोशडेल सोसायटी द्वारा शुरू किए इस ग्रोसरी स्टोर ने ही वास्तव में सहकारिता के मार्गदर्शी सिद्धांत तय किए जिनमें शामिल हैं :-

- ''एक सदस्य एक वोट'' चाहे सोसायटी में उसके कितने ही शेयर क्यों न हों
- सदस्यता के लिए जाति-आदि का कोई बंधन नहीं
- वस्तुओं की बिक्री से प्राप्त राशि में से कारोबारी व्यय घटा कर बचे लाभ को सदस्यों के बीच उनकी शेयरधारिता के आधार पर न बांट कर उनके द्वारा की गई खरीद के अनुपात में बांटना
- शेयरों के रूप में निवेशित पूंजी पर सीमित ब्याज
- उधार-जोखिम से बचने के लिए नकद बिक्री

अपनी स्थापना के 25 वर्षों के भीतर ही रोशडेल सोसायटी ने आटा मिल, भवन-निर्माण तथा वस्त्र-निर्माण जैसे क्षेत्र में सहकारिता के आधार पर सहभागिता की तथा कोऑपरेटिव होलसेल सोसायटी और कोऑपरेटिव इंश्योरेंस कंपनी की स्थापना में प्रमुख भूमिका निभाई।

सहकारिता आंदोलन में समय के साथ-साथ परिवर्तन आते रहे हैं और आगे भी आते रहेंगे। लेकिन, सहकारिता के कुछ मूलभूत सिद्धांतों में परिवर्तन की कोई भी गुंजाइश नहीं है क्योंकि ये व्यक्तियों के सम्मान पर आधारित हैं और इस बात में यकीन रखते हैं कि उनमें अपनी आर्थिक और सामाजिक दशा को परस्पर सहायता के जरिए सुधारने की अदम्य क्षमता मौजूद है। साथ ही, सहकारिता आंदोलन इस बात में भी विश्वास रखता है कि आर्थिक गतिविधियों में प्रजातांत्रिक तरीकों को अपनाया जा सकता है और उन्हें व्यवहार्य तथा कार्यकुशल तरीके से अंजाम दिया जा सकता है। इसी विश्वास के चलते आज निम्नलिखित आर्थिक गतिविधियों को सहकारिता के आधार पर आसानी से और दक्षतापूर्वक चलाया जा रहा है:-

- उपभोक्ता सहकारिता
- ऋण सहकारिता
- कृषि सहकारिता
- सेवा सहकारिता
- कर्मकार सहकारिता

सहकारिता के आधारभूत मूल्य

अंतरराष्ट्रीय सहकारिता संघ ने अपने शताब्दी वर्ष में मेनचेस्टर में 1995 में आयोजित कांग्रेस और साधारण सभा में जिस वक्तव्य को स्वीकार किया उसमें सहकारिता के आधारभूत मूल्यों के बारे में कहा गया है :-

''सहकारिता स्वयं सहायता, स्व-उत्तरदायित्व, प्रजातंत्र, समानता, साम्यता और एकता के मूल्यों पर आधारित है। सहकारिता की नींव रखने वालों की परंपरा में सहकारी संस्थाओं के सदस्य ईमानदारी, खुलेपन, सामाजिक जिम्मेदारी और अन्य लोगों का ध्यान रखने जैसे नैतिक मूल्यों में विश्वास रखते हैं।''

उपर्युक्त के आधार पर हम कह सकते हैं कि सहकारिता की अवधारणा के साथ जहां कुछ आधारभूत मूल्य जुड़े हैं, वहीं इसमें कुछ नैतिक मूल्य भी निहित हैं, जिन्हें हम संक्षेप में निम्नानुसार प्रस्तुत कर सकते हैं :

(i.) सहकारिता के आधारभूत मूल्य
- स्वयं सहायता
- स्व-उत्तरदायित्व
- प्रजातंत्र
- समानता
- साम्यता
- एकता

(ii.) सहकारिता के नैतिक मूल्य
- ईमानदारी
- खुलापन

- सामाजिक जिम्मेदारी
- दूसरों का ध्यान रखना

''पार्टिसिपेशन मैनेजमेंट डेवलपमेंट एडवाइजरी नेटवर्क'' के निदेशक दमन-प्रकाश ने अपने लेख ''दि प्रिंसिपल्स ऑफ को ऑपरेशन - ए लुक एट दि आइसीए कोऑपरेटिव आईडेंटिटी स्टेटमेंट'' में इस बात को रेखांकित किया है कि सहकारी आंदोलन का गहन और विशिष्ट बौद्धिक इतिहास रहा है। मानव इतिहास के विगत प्रत्येक दस वर्ष के दौरान विश्व के विभिन्न भागों में विभिन्न विद्वानों ने सहकारिता की विचारधारा को पुष्ट करने में अपनी-अपनी तरह से योगदान दिया है और इन विचारों में अधिकांशत: सहकारिता के मूल्यों को प्रमुखता दी है।

आइये, सहकारिता के उक्त आधारभूत मूल्यों पर एक नजर डालें :-

स्वयं सहायता - यह सहकारिता का प्रमुख सिद्धांत है और इस विश्वास पर आधारित है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपना भाग्य-विधाता है और वह स्वयं अपनी सहायता करने में समर्थ है। अपनी स्वयं की सहायता करने के लिए उसे एक ऐसे मंच की आवश्यकता होती है जहां वह अपना स्वयं का विकास कर सके, कुशलता और दक्षता अर्जित कर सके। इसके लिए उसे अन्य लोगों से कुछ सीखने और उनसे सहयोग लेने की आवश्यकता होती है। सहकारिता इस बात में विश्वास रखती है कि किसी व्यक्ति का पूर्ण विकास अन्य लोगों का साथ पाकर ही हो सकता है। वे जिस सहकारी संस्था से जुड़ते हैं, उसके विकास के साथ-साथ वे भी अनुभव और शिक्षा ग्रहण करते हैं, जिससे उनमें आत्मविश्वास पनपता है और वे परस्पर सहायता के माध्यम से वास्तव में स्वयं की ही सहायता करते हैं। सहकारी संस्थाएं अपने सदस्यों को आर्थिक लाभ भी दिलाती हैं जो उनमें जीवन को बेहतर तरीके से जीने की इच्छा और सामर्थ्य दोनों ही उत्पन्न करता है।

स्व-उत्तरदायित्व - सहकारी संस्थाएं अपने सदस्यों द्वारा ही संचालित और नियंत्रित की जाती हैं। ऐसी संस्थाओं की स्थापना से लेकर उसके सफल संचालन का उत्तरदायित्व सदस्यों का ही होता है। अत: सहकारिता का प्रत्येक सदस्य जिम्मेदारी उठाने के लिए प्रवृत्त होता है। उसे यह पता होता है कि यह संस्था उसकी अपनी संस्था है, यदि इसे किसी भी रूप में कोई हानि होती है तो अंतत: आनुपातिक रूप से उसे ही वह हानि वहन करनी होगी। सहकारी संस्थाओं में बेहतर कार्यनिष्पादन के लिए सदस्यों के बीच परस्पर दबाव भी बना रहता है। यह कहा जा सकता है कि संस्था को आगे बढ़ाने, उसे लाभप्रद बनाने तथा उसकी स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए प्रत्येक सदस्य को जिम्मेदारी उठानी पड़ती है और वास्तव में यह स्व-उत्तरदायित्व यानि अपने प्रति जिम्मेदारी निभाने की भावना को प्रोत्साहित करती है।

समानता - सहकारी संस्था के सभी सदस्य समान होते हैं। जात-पांत या अन्य किसी वजह से उन्हें कोई अलग स्तर प्राप्त नहीं होता और न ही उन्हें किसी भेदभाव का सामना करना पड़ता है। इसके अलावा प्रत्येक सदस्य का एक ही वोट होता है चाहे उसकी शेयरधारिता कुछ भी क्यों न हो। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि सदस्यों की सदस्यता उनके सामाजिक और आर्थिक स्तर से किसी भी तरह प्रभावित नहीं होती।

साम्यता - सहकारिता का यह सिद्धांत सभी सदस्यों को समान दर्जा देता है। सभी सदस्यों के साथ एक समान व्यवहार किया जाता है और किसी को भी विशिष्ट दर्जा नहीं दिया जाता। समानता और साम्यता के सिद्धांत में यदि अंतर को स्पष्ट किया जाए तो जहां समानता सदस्य बनाने के लिए सभी पात्र व्यक्तियों के बीच कोई भेदभाव नहीं बरतती, वहीं साम्यता सभी सदस्यों के साथ एक सा बर्ताव सुनिश्चित करती हैं, फिर चाहे वह लाभांश के वितरण का मामला हो या सदस्यों के नाम में आरक्षित पूंजी का आबंटन हो या फिर अन्य नियमों और उपनियमों को लागू करने का मामला हो।

एकता - सभी सदस्य परस्पर सहायता के जरिए अपनी स्वयं की सहायता के उद्देश्य से सहकारी संस्था से जुड़ते हैं। अत: यह आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य भी है कि वे एक साथ खड़े हों। किसी एक भी सदस्य द्वारा यदि अपने स्वार्थ को ही ध्यान में रख कर कार्यों को अंजाम दिया जाएगा तो उससे अन्य सदस्यों के हितों पर विपरीत प्रभाव पड़ना अवश्यंभावी होगा। अत: यदि यह कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी कि सहकारिता केवल सदस्यों का एकत्रित होना ही नहीं है, बल्कि यह सामूहिक प्रयासों को बल देने का काम करती है। सामूहिक

प्रयासों की सफलता एकता में निहित होती है। व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठ कर संस्था के हित में काम करना परोक्ष रूप से स्व-सहायता का ही दूसरा नाम है। संस्था के हित में सभी सदस्यों का व्यक्तिगत हित भी शामिल रहता है। इसका एक अर्थ यह भी है कि सहकारी संस्थाओं पर यह जिम्मेदारी भी आती है कि वे अपने सदस्यों के सामूहिक हित को सर्वोपरि रखें। सहकारिता का यही दर्शन उसे अन्य आर्थिक संगठनों से अलग करता है।

प्रजातांत्रिक कार्यप्रणाली और क्रियाविधियां - सहकारी संस्था को स्थापित करने से लेकर उसके संचालन से संबंधित समस्त क्रियाविधियां निर्धारित करने के लिए सभी सदस्यों की राय ली जाती है और वे इसके गठन में सक्रिय भागीदारी निभाते हैं। यह उल्लेखनीय है कि सहकारी संस्थाएं ऐसी प्रजातांत्रिक संस्थाएं होती हैं जिनका नियंत्रण सदस्यों के हाथ में होता है। संस्था की नीतियां और क्रियाविधियां निर्धारित करने में ही नहीं, बल्कि संस्था के सभी निर्णयों में सदस्य सहभागी होते हैं। जिन लोगों को संस्था के कामकाज के लिए प्रतिनिधि के रूप में चुना जाता है, वे संस्था के सदस्यों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। सहकारी समितियों में सदस्यों को प्रति सदस्य एक वोट देने का समान अधिकार हासिल है। संस्था के निर्णय या तो सर्वसम्मति से या फिर बहुमत के आधार पर लिये जाते हैं और इस प्रकार सहकारी संस्थाएं प्रजातांत्रिक माहौल में काम करती हैं।

सदस्यों की आर्थिक सहभागिता - सहकारी संस्थाओं के सदस्य अपनी संस्था की पूंजी में समान रूप से अंशदान करते हैं। इस पूंजी का कुछ हिस्सा सामान्यत: संस्था की साझा संपत्ति के रूप में प्रयुक्त होता है। सदस्यता के रूप में सदस्यगण अभिदत्त पूंजी पर सामान्यत: सीमित क्षतिपूर्ति (लाभ) प्राप्त करते हैं। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि वे अपने पूंजी अंशदान पर सीमित लाभ प्राप्त करते हैं क्योंकि संस्था को हुए लाभ का बड़ा हिस्सा वे आरक्षित निधियों के तौर पर रखते हैं ताकि अपनी संस्था को और आगे बढ़ा सकें। इसके अलावा सदस्यों को संस्था के साथ किए गए उनके लेनदेनों के अनुपात के रूप में लाभ दिया जाता है। साथ ही, संस्था द्वारा अनुमोदित गतिविधियों को चलाने के लिए भी अधिशेषों का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार, यह देखा जा सकता है कि प्रत्येक सदस्य संस्था की आर्थिक गतिविधियों में सहभागी होता है।

स्वायत्तता और स्वतंत्रता - सहकारी संस्थाएं स्वशासी संस्थाएं होती हैं। ये यथा संभव सरकार और निजी फर्मों से अलग होती हैं। अर्थात् ये सरकारी कार्यालय या निजी फर्म की तरह नहीं चलाई जाती। सरकार का जो कुछ भी नियंत्रण सहकारी संस्थाओं पर होता है, वह सिर्फ यह सुनिश्चित करने के लिए होता है कि इन संस्थाओं का कोई दुरुपयोग न हो तथा वे कानूनी तौर पर चलाई जाएं। संस्था के आंतरिक कार्यकलापों में सरकारें तब तक कोई हस्तक्षेप नहीं करती जब तक कि ये संस्थाएं कानून के विरुद्ध या फिर जनहित के विरुद्ध कोई काम नहीं करती। जैसाकि पहले उल्लेख किया जा चुका है, सहकारी संस्थाएं अपने सदस्यों के संयुक्त स्वामित्व में काम करती हैं और अपने कार्यकलापों को अंजाम देने के लिए वे स्वतंत्र होती हैं, उनमें कोई बाहरी हस्तक्षेप नहीं होता। यदि वे सरकार सहित किसी अन्य संस्था/संस्थाओं के साथ कोई करार करती हैं या बाहरी स्रोतों से पूंजी जुटाती हैं तो वे अपने सदस्यों द्वारा प्रजातांत्रिक पद्धति से तय की गई शर्तों पर ही ऐसा कर सकती हैं और इस प्रकार अपनी स्वायत्तता बनाए रखती हैं।

शिक्षण-प्रशिक्षण और सूचना - सहकारी संस्थाएं अपने सदस्यों, चुने गए प्रतिनिधियों, प्रबंधकों और कर्मचारियों के लिए शिक्षण और प्रशिक्षण की व्यवस्था करती हैं ताकि वे अपनी संस्था के विकास और प्रगति में कारगर तरीके से योगदान कर सकें। उसके अलावा, वे सामान्य जनता, विशेष तौर पर युवाओं तथा जनमत बनाने में निपुण व्यक्तियों को सहकारिता के स्वरूप और लाभों की जानकारी देने का काम भी करती हैं।

सहकारी संस्थाओं के बीच सहयोग - सहकारी संस्थाएं सिद्धांत रूप में परस्पर सहयोग की नीतियां अपनाती हैं और एक-दूसरे के बीच लेनदेन को प्रमुखता देती हैं ताकि परस्पर लेनदेन के जरिए उन्हें लाभ मिल सके। साथ ही, वे स्थानीय, राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय सहकारी संस्थाओं के साथ कदम से कदम मिला कर जहां सहकारिता आंदोलन को बल प्रदान करती हैं, वहीं अपने सदस्यों की बेहतर तरीके से सेवा सुनिश्चित

करते हुए संस्था की प्रगति की ओर कारगर ढंग से कदम बढ़ाती हैं।

सामाजिक उत्तरदायित्व - सहकारी संस्थाएं अपने सामाजिक उत्तरदायित्व को बखूबी समझती हैं। सामाजिक उत्तरदायित्व के सिद्धांतों पर चलते हुए उनका यह प्रयास रहता है कि वे समाज की प्रगति में भी अपना योगदान दें। अपने सदस्यों द्वारा अनुमोदित नीतियों के जरिए वे अपने-अपने समाज के निरंतर विकास के लिए कार्य करती हैं।

उपर्युक्त के अलावा जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, सहकारी संस्थाएं ईमानदारी, खुलेपन, दूसरों का ध्यान रखने जैसे नैतिक मूल्यों का भी पालन करती हैं। वास्तव में, सहकारी आंदोलन की शुरूआत से ही इन नैतिक मूल्यों को अपनाने पर बल दिया गया है। सहकारिता की प्रवर्तक रोशडेल सोसायटी ने ईमानदारी, उचित लेनदेन, सही माप-तौल, उच्च गुणवत्ता तथा उचित मूल्य की नीति अपनाई और भावी सहकारी संस्थाओं के लिए सही दिशा निर्धारित की।

सिद्धांतों की परस्पर निर्भरता - सहकारिता के आधारभूत सिद्धांतों और मूल्यों के संदर्भ में यह बात उल्लेखनीय है कि ये सभी सिद्धांत एक दूसरे से पूरी तरह जुड़े हुए हैं। यदि इनमें से किसी एक सिद्धांत मूल्य को भी नजरअंदाज किया गया तो अन्य सिद्धांतों का पालन करना आसान नहीं रहेगा। इस परिप्रेक्ष्य में सहकारिता का आकलन या मूल्यांकन इनमें से किसी एक सिद्धांत के आधार पर करना ठीक नहीं होगा। वास्तव में, किसी भी सहकारी संस्था का मूल्यांकन इस आधार पर किया जाना होगा कि वह सहकारिता के उक्त सभी सिद्धांतों का किस सीमा तक और कितने अच्छे तरीके से पालन कर रही है। इस बात को गहराई से समझा जाना होगा कि ये सिद्धांत सहकारी संस्थाओं की आंतरिक गतिशीलता, सुचारु कार्यकलाप और सदस्यों तथा समाज के लिए तो अनिवार्य हैं ही, बाहरी संस्थाओं से सम्पर्क और व्यवहार्य के लिए भी उतने ही जरूरी हैं।

सहकारिता के सिद्धांत और सहकारी संस्थाओं का ढांचा - सहकारिता के उक्त सिद्धांतों को ध्यान में रख कर ही सहकारी संस्थाओं का ढांचा तैयार किया जाता है। जहां इस संबंध में कानून बने हैं और जहां कानून नहीं हैं, वहां राष्ट्रीय सहमति से संस्थाएं ऐसा तर्कयुक्त ढांचा अपनाती हैं जिससे सहकारिता के सिद्धांतों का पालन करते हुए वे कार्य कर सकें। इसके लिए व्यावसायिक जरूरतों और प्रजातांत्रिक तौर-तरीकों का ध्यान रखा जाना आवश्यक है। चूंकि सभी सहकारी संस्थाएं उपर्युक्त आधारभूत सिद्धांतों और मूल्यों के अनुसार ही अपने कार्यकलापों को अंजाम देना चाहती हैं, अत: अधिकांश सहकारी संस्थाओं का संगठनात्मक ढांचा निम्नानुसार दिखाई देता है :-

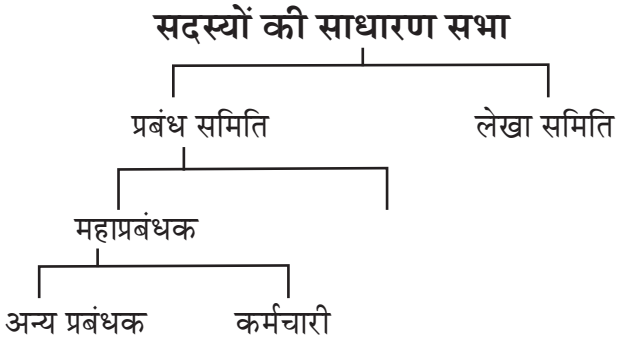

सदस्यों की साधारण सभा सर्वोच्च अधिकार प्राप्त होती है और नीति-निर्धारक का काम करती हैं। यही प्रबंध समिति और लेखा समिति का चयन करती है और ये समितियां इसके प्रति उत्तरदायी होती हैं। संस्था का सामान्य कामकाज महाप्रबंधक या इसी स्तर का कोई अधिकारी देखता है जो प्रबंध समिति को रिपोर्ट करता है। महाप्रबंधक के अंतर्गत संस्था के विभिन्न कार्यकलापों को देखने के लिए प्रबंधक और कर्मचारी नियुक्त किए जाते हैं। इस प्रकार, सहकारी संस्थाओं का संगठनात्मक ढांचा इसके सिद्धांतों के अनुरूप ही बनाया गया है जो संयुक्त स्वामित्व, प्रजातांत्रिक क्रियाविधियों तथा अन्य सिद्धांतों को कार्यरूप में परिणत करता है।

सहकारिता के मुख्य स्तंभ

सहकारिता के सिद्धांतों और मूल्यों को ध्यान में रखते हुए जो संगठनात्मक ढांचा बनाया गया है, वह थोड़े-बहुत फेरबदल के साथ वैश्विक तौर पर समान रूप से अपनाया जाता है। जहां तक सहकारी संस्थाओं की कार्यप्रणाली का संबंध है, इसके निम्नलिखित चार मुख्य स्तंभ हैं :-

(1) सदस्य - सदस्य ही मिलकर किसी सहकारी संस्था का गठन करते हैं, चाहे वह उपभोक्ताओं से संबंधित हो,

कर्मकारों से संबंधित हो, ऋण से संबंधित हो, कृषि से संबंधित हो या फिर सेवा सहकारिता हो। सदस्यगण ही अपनी संस्था के स्वामी, प्रबंधक और नियंत्रक होते हैं। वास्तव में, ये सदस्य ही तो होते हैं जिन्होंने अपनी सेवा/लाभ के लिए सहकारी संस्था को आकार दिया होता है।

(2) **ढांचा** - सहकारी संस्थाओं के संबंध में अमूमन दो प्रकार के संगठनात्मक ढांचे दिखाई देते हैं। इनमें से पहला है सरकारी ढांचा जो सहकारी संस्थाओं को एक वैधानिक दर्जा प्रदान करता है और दूसरा है विशुद्ध सहकारी संगठनात्मक ढांचा। यह सच है कि सहकारी संस्थाएं स्वशासी संस्थाएं होती हैं, लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि उन्हें सरकारी कानूनों के संरक्षण की जरूरत नहीं होती। सरकारी कानूनों से जहां सरकारी संस्थाओं को विधिक मान्यता मिलती है, वहीं वे अपने आधारभूत सिद्धांतों और मूल्यों का पालन करते हुए अपने सदस्यों को बेहतर सेवाएं प्रदान करने की दिशा में ठोस कदम बढ़ा सकती हैं।

(3) **समाज** - सहकारी संस्थाएं समाज के बहुत निकट होती हैं। यह कहा जा सकता है वे सामाजिक ढांचे से पूरी तरह संबंधित होती हैं क्योंकि यहीं से उन्हें सदस्य तथा सहकारी नेतृत्व मिलता है। वास्तव में, सामाजिक और आर्थिक अपेक्षाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही सहकारी संस्थाओं का गठन किया जाता है। अत: समाज और सहकारी संस्थाएं दोनों ही सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति में अहम भूमिका निभाते हैं।

(4) **प्रबंधन** - सहकारी संस्थाओं को कार्यकुशल और कारगर बनाने के लिए प्रबंधन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसमें बोर्ड के सदस्य, विभिन्न कार्यकलापों को सुचारू रूप से चलाने के लिए प्रबंधकगण तथा संस्था के अन्य कर्मचारी शामिल होते हैं।

सहकारिता का महत्त्व

- अन्य व्यावसायिक संस्थाएं सिर्फ अपने 'लाभ' को सामने रख कर अपने कार्यकलापों का संचालन करती हैं, लेकिन सहकारी संस्थाएं 'व्यक्तियों' को सर्वोपरि महत्व देती हैं। उनके सदस्य ही इनके स्वामी होते हैं तथा अपने कार्यकलापों का प्रजातांत्रिक ढंग से संचालन करते हैं। चूंकि संस्था के हित से सभी सदस्यों का हित जुड़ा होता है, अत: वे अपनी पूरी क्षमता से उसकी प्रगति में योगदान देते हैं और अन्य व्यावसायिक संस्थाओं की तरह ही अपनी पूंजी और संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग सुनिश्चित करने में पीछे नहीं रहते।

- सहकारिता का एक बड़ा लाभ इसका लचीलापन है। ये उपभोक्ता वस्तुओं से लेकर, ऋण लेने-देने, कृषि क्षेत्र, सेवा क्षेत्र या फिर वर्कर्स के लिए गठित की जा सकती हैं। इनका क्षेत्र दिनों-दिन व्यापक होता जा रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी, शिक्षा और समाज सेवा जैसे क्षेत्रों में भी सहकारिता का प्रवेश हो चुका है। आवासीय क्षेत्र में सहकारिता ने नए कीर्तिमान स्थापित किए हैं। इस प्रकार, सहकारिता का वह ढांचा जो मूल्यों, सिद्धांतों, नैतिकता और व्यावसायिक दक्षता पर आधारित है,किसी भी क्षेत्र के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है।

- सहकारी संस्थाओं का महत्व इस बात से भी रेखांकित होता है कि इसके लाभ सदस्यों तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि इसके कार्यक्षेत्र के समुदाय तक भी पहुंचते हैं।

- सहकारी संस्थाएं गठित करना आसान है और इससे समाज के उपेक्षित और गरीबतम व्यक्ति भी लाभान्वित हो रहे हैं।

सहकारी संस्थाओं के उद्देश्यों, सिद्धांतों और ढांचे में कोई निहित त्रुटियां नहीं दिखाई देतीं। सहकारी संस्थाओं की असफलता इसके आधारभूत ढांचे के कारण नहीं, बल्कि प्रबंधन से जुड़े व्यक्तियों में निष्ठा के अभाव के कारण ही हो सकती है। यदि सभी सदस्यों से बनी साधारण सभा सतर्क हो तो कोई कारण नहीं कि कोई भी सहकारी संस्था सफल सिद्ध न हो।

भारत में सहकारी आंदोलन का इतिहास एवं विकास

● कुमार परिमलेन्दु सिन्हा*

सहकारिता के विचारों तथा उसकी आधुनिक अवधारणा का जन्म जहाँ ब्रिटेन, अमेरिका और जर्मनी में माना जाता है, वहीं औद्योगिक क्रान्ति के दौरान तथा उसके बाद के समय में सहकारिता को एक सांगठनिक स्वरूप मिला। भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखें तो यहाँ सहकारिता आन्दोलन जीवन के एक सिद्धांत और व्यवसाय की एक प्रणाली दोनों रूपों में विकसित हुआ है। यहाँ इसकी भूमिका सामाजिक-आर्थिक विकास में एक स्वैच्छिक साहचर्य के उस मंच के रूप में ज्यादा रही है जहाँ लोग साम्यता और सबकी भलाई के सिद्धांतों के आधार पर धन के उत्पादन तथा वितरण में पारस्परिक सहयोग के लिए एकत्र होते हैं। इस दृष्टि से भारत में सामाजिक-आर्थिक विकास की धारा में पीछे रह गए, हाशिये पर खड़े गरीब और वंचित वर्ग के सामान्य जन के उन्नयन में सहकारिता आन्दोलन की एक निश्चित सामाजिक भूमिका रही है, एक निश्चित सामाजिक उद्देश्य रहा है। देश की भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी जब देश के विकास में सहकारिता आन्दोलन के योगदानों की चर्चा करते हुए इस आन्दोलन की संभावनाओं को रेखांकित करती हैं : "I know of no other instrument so potentially powerful and full of social purpose as the co-operative movement." तो उनका संकेत भारत में सहकारिता आन्दोलन के उन्हीं सामाजिक उद्देश्यों की ओर होता है। इस रूप में भारत में सहकारिता आंदोलन का इतिहास एक सामाजिक-आर्थिक आन्दोलन का इतिहास ज्यादा प्रतीत होता है।

भारत में सहयोग आधारित आर्थिक तथा व्यावसायिक गतिविधियों की शुरुआत वैदिक काल में ही हो चुकी थी, महाकाव्य काल में उनका विस्तार हुआ। उत्तर वैदिक काल तथा बौद्ध काल में वे देश की अर्थव्यवस्था का मुख्य स्तंभ बन चुकी थीं। भारतीय सहकारिता की अवधारणा के बीज की तलाश इन आर्थिक तथा व्यावसायिक गतिविधियों में आसानी से की जा सकती है।

''संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।। (ऋग्वेद 12/191.4)", ''ओम् सह नानवतु, सह नौ भुनक्तु, सह वीर्यम करवावहे" तथा ''सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत।" के संदेशों की गूँज वाली भारतीय संस्कृति में सहकारिता की आधुनिक अवधारणा के बीज सहज ही देखे जा सकते हैं। सभ्यता के आरंभिक चरण में मनुष्य की निरंतर बढ़ती आवश्यकताओं, व्यापार तथा विभिन्न शिल्पकलाओं के उद्भव और विकास के बीच सिंधु घाटी सभ्यता, वैदिक सभ्यता तथा महाकाव्य युग के लोगों के समूहबद्ध होकर व्यापार तथा अन्य आर्थिक गतिविधियाँ करने के संकेत मिलते हैं। व्यापार के सिलसिले में नये बाजारों तक आने-जाने तथा रास्ते के खतरों से निपटने के लिए व्यापारियों ने समूहबद्ध होकर यात्रा करना प्रारंभ किया, जो आगे चलकर सामूहिक उद्यमिता का रूप लेता चला गया। आर्थिक विकास के इसी क्रम में विपणन प्रणाली के साथ-साथ सहकारिता का भी जन्म हुआ।

चाणक्य रचित 'अर्थशास्त्र' आदि पुस्तकों में उस समय के व्यापार तथा राजनीति के संबंधों की गहन विवेचना की गई है। इनमें यह संकेत मिलता है कि भारत में सहयोग आधारित आर्थिक तथा व्यावसायिक गतिविधियों की शुरुआत वैदिक काल में ही हो चुकी थी, महाकाव्य काल में उनका विस्तार हुआ। उत्तर वैदिक काल तथा बौद्ध काल में वे देश की अर्थव्यवस्था का मुख्य स्तंभ बन चुकी थीं। भारतीय सहकारिता की अवधारणा के बीज की तलाश इन आर्थिक तथा व्यावसायिक गतिविधियों में आसानी से की जा सकती है। वेदों-उपनिषदों से लेकर स्मृतियों, पुराणों आदि ग्रंथों में सामूहिक उद्यमों तथा सहकार जैसी व्यवस्था की

* प्रबंधक, निरीक्षण विभाग, भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

चर्चाएं मिलती हैं।

आधुनिक भारत में सहकारिता आंदोलन के सफर में अनेक उतार-चढ़ाव रहे। ब्रिटिश सरकार के प्रयासों से शुरू हुए सहकारिता के छोटे-छोटे कदमों ने धीरे-धीरे एक सामाजिक-आर्थिक आन्दोलन का रूप ले लिया जिसने भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में अपना योगदान देने के साथ ही तथा भारत के सामाजिक-आर्थिक विकास में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। भारत में सहकारिता आंदोलन की अपनी कुछ कमजोरियाँ और कुछ खूबियाँ रही हैं। इन कमजोरियों और खूबियों के बीच सहकारिता आंदोलन ने भारत के आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में एक नये परिवेश का निर्माण किया। कृषि क्षेत्र से शुरू हुए इस सहकारिता आंदोलन के दायरे का समय बीतने के साथ विस्तार हुआ और इसमें धीरे-धीरे छोटे-छोटे किसान, मजदूर, उद्यमी, कारीगर और कामगार शामिल होते गए।

ऐतिहासिक परिदृश्य : पृष्ठभूमि, विकास और विस्तार

भारत में सहकारिता आंदोलन के इतिहास को उसके विभिन्न पड़ावों के अवलोकन के माध्यम से बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। आधुनिक काल में 1904 से 1912 तक की अवधि भारत में सहकारिता आन्दोलन की शुरुआत की अवधि मानी जा सकती है। इसी अवधि में भारत में सहकारिता आंदोलन के क्षेत्र में प्रारंभिक कदम 1904 के को-ऑपरेटिव सोसायटी एक्ट के रूप में उठाया गया। सामान्यत: यह माना जाता है कि भारत में को-ऑपरेटिव सोसायटियों को शुरू करने का विचार सबसे पहले मद्रास सरकार के एक अधिकारी फ्रेडरिक निकोलसन (Fredrick Nicholson) द्वारा 1885 में दिया गया था, जिन्हें ग्रामीण ऋणग्रस्तता को दूर करने तथा सस्ते दर पर ग्रामीण ऋण मुहैया कराये जाने के उद्देश्य से राज्य में एक भूमि बैंक प्रणाली शुरू किए जाने की संभावनाओं की जाँच करने के लिए 1892 में नियुक्त किया गया था। निकोलसन ने अपनी रिपोर्ट 1897 में प्रस्तुत की जिसमें ग्रामीण ऋणग्रस्तता के निदान के लिए उन्होंने जर्मन एग्रिकल्चरल क्रेडिट को-ऑपरेटिव्स के रेफर्सन मॉडल (Raiffersen Model) के आधार पर भारत में सहकारी ऋण सोसायटियों की शुरुआत किए जाने की जोरदार वकालत की। हालाँकि, इसके पहले जर्मनी के ग्रामीण बैंकों से प्रभावित होकर विलियम वेडर बर्न तथा श्री जी.एम.रानडे द्वारा भी 1882 में इसी तरह के बैंकों की स्थापना के लिए ब्रिटिश सरकार के समक्ष एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया था। बाद में इसी तरह के विचारों की वकालत ब्रिटिश सरकार में उत्तर प्रदेश के एक बड़े अधिकारी डुपरनेक्स (Dupernex) ने अपनी पुस्तक 'People's Bank for Northern India' (1900) में की। 1898 में आई अकाल आयोग (Famine Commission) की रिपोर्ट ने भी भारतीय कृषकों के लिए सहकारिता के विचारों पर बल दिया। इस कमीशन की रिपोर्ट के अनुसरण में लॉर्ड कर्जन द्वारा एडवर्ड लॉ की अध्यक्षता में 1901 में एक समिति गठित की गई। इस समिति की सिफारिशों के आधार पर 1904 में प्रथम को-ऑपरेटिव सोसायटी एक्ट पारित किया गया। इस एक्ट में केवल क्रेडिट सोसायटियों के गठन का प्रावधान किया गया था। इस अधिनियम ने भारत के गाँवों में सरकार द्वारा प्रायोजित कृषि ऋण सहकारी संस्थाओं के गठन का मार्ग खोला। इस अधिनियम के आने से सहकारी संस्थाओं को एक कानूनी पहचान मिली क्योंकि प्रत्येक सहकारी संस्था को इस अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत कराया जाना जरूरी था। इस अधिनियम में वैसे सहकारिता के अन्य सभी रूपों को स्थान नहीं दिया गया था क्योंकि इसमें यह माना गया था कि भारतीय जनता के पिछड़ेपन के कारण गैर साख सोसायटियों के गठन में बहुत सारी कठिनाइयाँ थीं। इस अधिनियम के कुछ महत्वपूर्ण प्रावधान निम्नांकित थे :

1) एक ही ग्राम या नगर के दस व्यक्तियों का कोई भी संघ को-ऑपरेटिव क्रेडिट सोसायटी की स्थापना करके उसे पंजीकृत कराने के लिए आवेदन कर सकता है। इन सोसायटियों का काम सदस्यों को ऋण देना था। ऋण देने के लिए धन सदस्यों, सरकार तथा विभिन्न संस्थाओं से उगाहा जाना था। सदस्य उचित जमानत देकर ऋण ले सकते थे।

2) क्रेडिट सोसायटियों को उनमें शामिल सदस्यों के कृषक अथवा गैर-कृषक होने के आधार पर ग्रामीण और शहरी दो श्रेणियों में बाँट दिया गया था। ग्रामों की सोसायटियों में ग्रामीण और शहरों की सोसायटियों में शहरी लोगों की नियुक्ति हो सकती थी।

3) ग्रामीण सोसायटियों के मामले में असीमित देयता ग्रामीण

थी वहीं शहरी सोसायटियों के मामले में विकल्प दिया गया था।

4) एक ग्रामीण सोसायटी के समस्त लाभों को एक रिज़र्व फंड में डाला जाना था और शहरी सोसायटी होने पर लाभों का केवल एक चौथाई भाग रिज़र्व फंड में डाला जाना था।

5) कोई भी सदस्य शेयरों के 1/5 वें भाग तथा 100/- रुपये की अधिकतम सीमा से अधिक अपने पास नहीं रख सकेगा।

6) सोसायटियों की देख-रेख के लिए, उनका हिसाब-किताब रखने के लिए सभी प्रांतों में संगठन के पर्यवेक्षण के लिए तथा सहकारिता आंदोलन पर नियंत्रण रखने के लिए रजिस्ट्रारों की नियुक्ति का प्रावधान किया गया था।

7) सभी सोसायटियों की अनिवार्य रूप से लेखा-परीक्षा की जानी थी।

इस अवधि में सरकार ने सहकारिता आंदोलन को प्रोत्साहित करने के लिए सोसायटियों को कुछ छूट और सुविधाएँ प्रदान की जैसे, आयकर, स्टांप ड्यूटी और रजिस्ट्रेशन शुल्क से छूट तथा एक निश्चित अवधि के लिए ब्याज रहित ऋण प्रदान किया जाना आदि।

1905 से 1911 के बीच सहकारी समितियों की संख्या और उनकी गतिविधियों में तेजी से विस्तार हुआ। 1906-07 में जहाँ सोसायटियों की संख्या 843 थी वहीं 1911-12 में यह संख्या बढ़कर 8177 हो गयी। सदस्यों की संख्या भी जहाँ 1906 में 70.8 हजार थी वहीं 1912 में बढ़कर 407.3 हजार हो गयी। लेकिन सहकारिता आन्दोलन की लगातार बढ़ती जरूरतों को पूरा करने में 1904 के अधिनियम को अपर्याप्त महसूस किया जाने लगा। प्रथमत:, यह अधिनियम उन सोसायटियों को कानूनी मान्यता नहीं देता था जिनका गठन ऋण दिए जाने के अलावा अन्य उद्देश्यों से किया गया था। द्वितीयत:, स्थानीय स्तर पर पूँजी एकत्र करने में कठिनाई का अनुभव किया जा रहा था। अधिनियम में महाजनों के चंगुल से ऋणग्रस्त श्रमिकों और कृषकों को मुक्त करने के लिए भी किसी तरह का प्रावधान नहीं किया गया था। इसलिए ऋण की समस्या यथावत बनी रही। अधिनियम की इन कमियों को दूर किए जाने के लिए 1912 में द्वितीय को-ऑपरेटिव सोसायटी एक्ट पारित किया गया, जिसने उत्पादकों और वितरक सोसायटियों तथा मध्यवर्ती संगठनों के विभिन्न रूपों अर्थात सहकारी यूनियनों, मध्यवर्ती बैंकों तथा प्रांतीय बैंकों को कानूनी मान्यता प्रदान की। सोसायटियों का वैधानिक वर्गीकरण किया गया। ग्रामीण और शहरी सोसायटियों के बीच का अंतर समाप्त हो गया तथा इसका स्थान असीमित और सीमित देयता के वर्गीकरण ने ले लिया।

नये अधिनियम ने सहकारिता आन्दोलन को एक नयी गति प्रदान की। इसके प्रावधानों के आधार पर उत्पाद-बिक्री, उर्वरक तथा अन्य कृषि साधनों की खरीद, सामान्य जरूरत की वस्तुओं की खुदरा बिक्री, आवास निर्माण तथा बीमा से संबंधित नये प्रकार की सोसायटियों को पंजीकृत किया गया। पंजीकृत सोसायटी को लाभ का 1/2 भाग आरक्षित कोष में तथा 10 प्रतिशत दान के लिए रखकर शेष लाभांश को सदस्यों के बीच बाँट देना था। इस अधिनियम में गैर-साख सोसायटियों की स्थापना का प्रावधान होने से देश के कई भागों में बड़ी संख्या में गैर-साख सोसायटियों की स्थापना होने लगी। कई सहकारी बैंक खुल गए, जिनमें जिलों और प्रान्तों के बैंक उल्लेखनीय हैं। पंजाब, बम्बई एवं मद्रास में सोसायटियों की अधिक संख्या में स्थापना हुई क्योंकि वहाँ के कृषक भू-स्वामी थे। अब सहकारी सोसायटियों के माध्यम से वस्तुओं का क्रय-विक्रय होने लगा, जानवरों का बीमा कराया जाने लगा,कई उपभोक्ता भंडार खोले गए और आवश्यक माल की खरीद की जाने लगी। 1914 तक देश में सहकारी सोसायटियों की संख्या 15000 तक पहुँच गयी जिसमें सदस्यों की संख्या लगभग 7 लाख थी।

चूँकि इस आन्दोलन में बड़ी मात्रा में राशि शामिल थी, इसलिए सरकार ने इस आन्दोलन को पोषण और समर्थन देने से पहले यह सुनिश्चित कर लेना चाहा कि आन्दोलन सही दिशा में जा रहा है कि नहीं और इसलिए सहकारिता आन्दोलन के विकास के रास्ते में आने वाली बाधाओं, इसकी कमियों तथा इस आन्दोलन में निहित संभावनाओं की पड़ताल करने के लिए 1914 में मैकाल्गन समिति (Macalgan Committee) की नियुक्ति की गई। इस समिति का गठन सहकारिता आन्दोलन

के आगे के विकास के लिए खासकर लेखापरीक्षा की बेहतर प्रक्रिया, प्रांतीय बैंकों की स्थापना, सदस्यों के शिक्षण पर बल देने तथा आन्दोलन की सतत प्रगति के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए किया गया था। समिति ने अपनी सिफारिशों में यह सुझाव दिया कि सोसायटी के सदस्यों के चुनाव में उनके औचित्य पर ध्यान दिया जाना चाहिए तथा अच्छे चरित्र और योग्यता वाले व्यक्तियों को ही सदस्य के रूप में निर्वाचित करना चाहिए। समिति ने समाज के निम्न और मध्यम आय वर्ग की आर्थिक जरूरतों को पूरा करने में सहकारी संस्थानों की महत्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित किया। समिति ने यह भी महसूस किया कि शहरी सहकारी आन्दोलन कृषि साख सोसायटियों की तुलना में अधिक अर्थक्षम है।

1919 के प्रशासनिक सुधार अधिनियम (Administrative Reform Act, 1919) के अंतर्गत सहकारिता को एक प्रांतीय विषय बना दिया गया तथा सरकार में एक मंत्री को इसका प्रभार दिया गया। विभिन्न राज्यों ने अपनी जरूरतों के अनुरूप अपना को-ऑपरेटिव सोसायटी एक्ट पारित किया। उदाहरणार्थ, 1912 के दूसरे को-ऑपरेटिव सोसायटी एक्ट की तर्ज पर उसमें कुछ सुधारों के साथ 1925 में को-ऑपरेटिव सोसायटी एक्ट ऑफ बॉम्बे, 1932 में को-ऑपरेटिव सोसायटी एक्ट ऑफ मद्रास तथा 1935 में को-ऑपरेटिव सोसायटी एक्ट ऑफ उड़ीसा पारित किए गए। मैकाल्गन समिति द्वारा दी गयी चेतावनी के बावजूद आने वाले वर्षों में सोसायटियों की संख्या का तेजी से बढ़ना जारी रहा। सन् 1919 तक सहकारिता की जड़ें और भी मजबूत होने लगी थीं।

सहकारिता आन्दोलन के अब तक चले आ रहे तीव्र विस्तार को 1929 की विश्वव्यापी महामंदी ने एकाएक रोक दिया। आन्दोलन को कृषि उत्पादों की कीमतों में आई गिरावट से गहरा धक्का लगा जिसका परिणाम किसानों की आय में गिरावट के रूप में सामने आया। क्रेडिट सोसायटियों की 1930 में दर्ज की गई 89 हजार की संख्या 1935 में कम होकर 84 हजार रह गई।

1934-1946 के दौरान सहकारिता आन्दोलन के विस्तार की अपेक्षा इसके समेकन (Consolidation), सुधार (Rectification) और पुनरुद्धार (Rehabilitation) पर जोर दिया गया, जिससे इस आन्दोलन के विकास के साथ-साथ उसके कार्यालयीन नियंत्रण में भी वृद्धि हुई। इसी समय जब रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया एक्ट, 1934 के अंतर्गत 1 अप्रैल 1935 को रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया की स्थापना हुई तो यह आशा की जाने लगी कि यह बैंक सहकारी आन्दोलन की प्रगति में सहायक होगा। रिज़र्व बैंक में इसके लिए कृषि साख विभाग (Agricultural Credit Department) खोला गया। इस विभाग के मुख्य कार्य थे- (क) कृषि साख से संबंधित सभी प्रश्नों का अध्ययन करने और केंद्र सरकार, राज्य सरकारों,राज्य सहकारी बैंकों तथा अन्य बैंकिंग संगठनों के परामर्श के लिए उपलब्ध विशेषज्ञ स्टाफ रखना, (ख) कृषि साख संबंधी बैंक के परिचालनों तथा राज्य सहकारी बैंकों और कृषि साख के कारोबार में लगे बैंकों तथा अन्य संगठनों से बैंक के संबंधों का समन्वयन करना। उक्त अधिनियम की अपेक्षानुसार कृषि साख विभाग ने कृषि साख की समस्याओं का अध्ययन करके कृषि साख के संबंध में 1937 में भारत सरकार के समक्ष एक रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसके अलावा विभाग ने अनेक अनुदेशात्मक बुलेटिन जारी किए जैसे, "Banking Union at Kodinar (1937)" तथा "Co-operative Village Banks (1937)" आदि। कालान्तर में इसी विभाग का विकास और विस्तार नाबार्ड तथा ग्रामीण आयोजना और ऋण विभाग के रूप में हुआ। रिज़र्व बैंक ने समय-समय पर अपनी रिपोर्टें प्रकाशित की जिनमें सहकारिता आन्दोलन के विकास की समीक्षा करते हुए आन्दोलन के वर्तमान स्वरूप, इसकी प्रवृत्तियों तथा प्रगति और आन्दोलन को गति देने के लिए अपेक्षित सुधारों के बारे में विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया, जिसके फलस्वरूप सहकारिता आन्दोलन के पुनर्गठन तथा पुनरुद्धार में मदद मिली।

1935 के बाद के वर्षों में खासकर 1940 के बाद कृषिजन्य वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि होने से परिस्थितियाँ आसान हो गईं। इसलिए कृषकों तथा सोसायटियों के अन्य सदस्यों में अपने ऋणों की चुकौती की एक सामान्य प्रवृत्ति देखने को मिली। इससे सहकारी बैंकों की जमाराशियों में वृद्धि हुई जबकि नये ऋणों की माँगों में कमी आई। युद्ध के दौरान आर्थिक नियंत्रणों और खाद्यान्नों की राशनिंग की शुरुआत तथा अन्य

आवश्यकताओं ने गैर ऋण स्वरूप की सोसायटियों खासकर उपभोक्ता भंडारों, विपणन तथा औद्योगिक सोसायटियों की वृद्धि को गति प्रदान की। इस दौरान उपभोक्ता सहकारिता, विपणन सहकारिता और सहकारी खेती का अच्छा विकास हुआ। इसी समय बहु-उद्देश्यीय सहकारी सोसायटियों के महत्व और उद्देश्य पर भी बल दिया गया। 1938-39 में सहकारिता आन्दोलन का प्रसार जहाँ 6 प्रतिशत जनसंख्या तक था वहीं 1945 में इसकी पहुँच 16 प्रतिशत जनसंख्या तक हो गयी।

1942 में ब्रिटिश सरकार द्वारा मल्टी यूनिट को-ऑपरेटिव सोसायटीज एक्ट,1942 लाया गया। इस अधिनियम का उद्देश्य वैसी सहकारी संस्थाओं को नये कानून के दायरे में शामिल किया जाना था, जिनके परिचालन का विस्तार एक से अधिक राज्यों में किया जा रहा था। 42 वर्षों के बाद इसी अधिनियम को एक विस्तृत स्वरूप प्रदान करते हुए भारत सरकार ने 1984 में एक अधिनियम मल्टी स्टेट को-ऑपरेटिव सोसायटीज एक्ट, 1984 बनाया जिसके माध्यम से एक से अधिक राज्यों में अपना परिचालन करने वाली सहकारी संस्थाओं के लिए कानून बनाए गए।

युद्ध के बाद देश में अनेक योजनाओं की रूपरेखा तैयार की गई और इन सभी योजनाओं में देश के विकास में सहकारी आन्दोलन की बढ़ती भूमिका को प्रमुखता से रेखांकित किया गया। भारत सरकार द्वारा गठित पुनर्निर्माण समिति (रिकन्सट्रक्शन कमिटी) द्वारा पुनर्निर्माण तथा आयोजना पर जारी द्वितीय रिपोर्ट में लोकतांत्रिक योजनाएँ सफलतापूर्वक बनाए जाने के लिए सहकारी आन्दोलन की भूमिका को महत्वपूर्ण जगह दी गई। सहकारी आन्दोलन की इस भूमिका को मूर्त्त रूप दिए जाने तथा देश के विकास में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका तय करने के लिए 1945 में नियुक्त की गई आयोजना समिति (Planning Committee) की निम्नांकित सिफारिशों का महत्वपूर्ण योगदान रहा :

1) संवर्धित कृषि उपकरण, बीज, राशनीकृत वस्तुओं आदि का वितरण को-ऑपरेटिव सोसायटियों के माध्यम से किया जाना चाहिए।
2) ऋण सोसायटी का संबंध कृषक- जीवन के केवल एक पक्ष से होता है, इसलिए सभी ग्रामीण साख सोसायटियों को बहुउद्देशीय स्वरूप की सोसायटियों में परिवर्तित किया जाना चाहिए ताकि उनमें सभी पक्षों को शामिल किया जा सके और उन्हें विपणन सोसायटियों के साथ समुचित रूप से समन्वित किया जाना चाहिए।
3) 50 प्रतिशत गाँवों तथा 30 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या को दस वर्षों के भीतर सहकारिता के दायरे में लाया जाना चाहिए तथा पर्याप्त कारोबार कर पाने के लिए एक सोसायटी में कम से कम 50 सदस्य रहने चाहिए।
4) गैर ऋण सोसायटियों के सभी महत्वपूर्ण प्रकारों जैसे, फल-उत्पादन सोसायटी, सहकारी कृषि सोसायटी, औद्योगिक सोसायटी, श्रमिक सोसायटी आदि को उचित केंद्रीय संगठनों के साथ जहाँ आवश्यक हो प्रोत्साहित किया जाना चाहिए तथा पहले पाँच वर्षों के दौरान प्रबंधन की 50 प्रतिशत लागत का वहन सरकार द्वारा किया जाना चाहिए।

समिति ने सहकारिता आन्दोलन को रिज़र्व बैंक द्वारा अधिक से अधिक सहायता दिए जाने की सिफारिश भी की गयी थी।

1949 में को-ऑपरेटिव सोसायटी रजिस्ट्रारों तथा देश के सहकारी संस्थानों का एक संयुक्त सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में सहकारी आन्दोलन के विकास के लिए कई निर्णय लिए गए। सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया कि अधिक से अधिक बहु-उद्देशीय सोसायटियों का गठन किया जाए, कृषि उत्पादनों का क्रय-विक्रय सहकारी सोसायटियों के सुपुर्द कर दिया जाए, प्रत्येक जिले में निश्चित रूप से दो सहकारी सोसायटियों का गठन किया जाए तथा अधिक से अधिक आर्थिक मदों के लिए सहकारी सोसायटियों की स्थापना की जाए। इस दौरान तीन प्रांतों अर्थात पश्चिम बंगाल, पूर्वी पंजाब और असम में सहकारी आन्दोलन को गहरा धक्का लगा, जहाँ सोसायटियों के अधिकांश सदस्य अपना बकाया दिए बिना ही सोसायटी छोड़कर चले गये। इसके साथ ही देश के कुछ स्थानों का पाकिस्तान का अंश बन जाने से सोसायटियों की संख्या में भी कमी आयी।

युद्ध के बाद की अवधि में देश के अनेक क्षेत्रों में विशेष रूप से बॉम्बे, मद्रास और यू.पी जैसे राज्यों में दुग्ध आपूर्ति

करने वाली, आवास निर्माण करने वाली तथा बहुउद्देशीय सोसायटियों की संख्या में वृद्धि हुई जबकि विस्थापित लोगों के बीच भी उनके पुनर्वसन हेतु विभिन्न प्रकार की सोसायटियों का गठन किया गया। गैर ऋण सोसायटियाँ जैसे औद्योगिक सोसायटियाँ, उपभोक्ता भंडार तथा बहुउद्देशीय सोसायटियाँ 1951 तक अच्छी तरह कार्य करने लगी थीं।

भारतीय रिज़र्व बैंक ने 1951 में अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण (All India Rural Credit Survey) को निर्देशित करने के लिए एक निर्देशन समिति (Committee of Direction) नियुक्त की। समिति ने ग्रामीण ऋण व्यवस्था का विस्तृत अध्ययन किया तथा अपनी रिपोर्ट (1954) में सहकारी सोसायटियों द्वारा उपलब्ध कराए जाने वाले ऋण को ग्रामीण आर्थिक संरचना के सुदृढ़ीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण बताते हुए इसमें सरकार की भागीदारी की सिफारिश की। समिति ने निम्नलिखित प्रमुख सिफारिशें कीं :

1) सहकारी साख समितियों, केंद्रीय बैंकों, राज्य के बैंकों, सहकारी विपणन, भंडारण, माल गोदामों में सामान रखने (वेयरहाउसिंग) तथा अन्य सभी महत्वपूर्ण सोसायटियों जैसे डेयरी, दुग्ध आपूर्ति, परिवहन, औद्योगिक सोसायटी जैसी सभी महत्वपूर्ण संस्थाओं में राज्य की भी साझेदारी होनी चाहिए।

2) सहकारिता के प्रशिक्षण के लिए एक केंद्रीय समिति गठित की जाए ताकि सोसायटियों की कार्यप्रणाली और उनके प्रबंधन में उत्तमता लायी जा सके।

3) साख की एकीकृत योजना तैयार की जानी चाहिए और साख समितियों का तालमेल बिक्री, निर्माण कार्य, उत्पादन तथा वितरण आदि के साथ बैठाया जाना चाहिए।

4) बैंकों का, चाहे वे भूमि से संबद्ध हों या सहकारी बैंक हों, पुनर्गठन होना चाहिए। रिज़र्व बैंक लंबी अवधि के लिए कोष का प्रबंध करे ताकि कृषि साख को लाभ हो तथा कृषकों को ऋण मिल सके।

5) इन कार्यक्रमों को कार्यान्वित किए जाने के लिए सीधे राज्य सरकारें उत्तरदायी होंगी। दो अन्य प्रमुख एजेंसियाँ होंगी - भारत सरकार का कृषि मंत्रालय तथा भारतीय रिज़र्व बैंक।

6) सहकारी संस्थाओं के वित्तीय पुनर्विन्यास तथा विकास के लिए प्रमुख निधियाँ होंगी :

क) भारतीय रिज़र्व बैंक के अंतर्गत

i) राष्ट्रीय कृषि साख (दीर्घावधि परिचालन) निधि [National Agricultural Credit (Long Term Operation) Fund]

ii) राष्ट्रीय कृषि साख (स्थिरीकरण) निधि [National Agricultural Credit (Stabilization) Fund]

ख) खाद्य और कृषि मंत्रालय के अंतर्गत

i) राष्ट्रीय कृषि साख (राहत और गारंटी) निधि

[National Agricultural Credit (Relief and Guarantee) Fund]

ii) मंत्रालय से संबद्ध एक राष्ट्रीय सहकारिता विकास और वेयरहाउसिंग बोर्ड होगा। इस बोर्ड के अंतर्गत दो निधियाँ होंगी - पहली, राष्ट्रीय सहकारिता विकास निधि तथा दूसरी, वेयरहाउसिंग परिचालन को वित्तीय पोषण देने के लिए राष्ट्रीय वेयरहाउसिंग विकास निधि

ग) प्रत्येक राज्य सरकार के अंतर्गत

i) राज्य कृषि साख राहत और गारंटी [Relief and Guarantee] निधि

ii) राज्य सहकारिता विकास निधि [State Co-operative Development Fund]

घ) प्रत्येक राज्य सहकारी बैंक और मध्यवर्ती सहकारी बैंक के अंतर्गत कृषि साख स्थिरीकरण [Stabilization] निधि

7) प्राथमिक, द्वितीयक और शीर्ष स्तर पर साख संस्थाओं को पुनर्गठित किया जाए और शीर्ष संस्थाओं के कम से कम 51 प्रतिशत शेयरों को राज्य सरकारों के पास

रखा जाए। शीर्ष संस्थाएँ मध्यवर्ती संगठनों तथा मध्यवर्ती संस्थाओं के 51 प्रतिशत शेयरों को प्राथमिक संगठनों की अपनी बारी के अनुसार खरीदेंगी।

8) प्रत्येक राज्य में एक मध्यवर्ती भूमि बंधक बैंक (Central Land Mortgage Bank) तथा नीचे के स्तर पर प्राथमिक भूमि बंधक बैंक (Primary Land Mortgage Bank) होने चाहिए।

9) प्राथमिक ग्रामीण साख समितियों को पुनर्गठित किया जाए ताकि उनकी सदस्यता 500 के लगभग की जा सके और इनको विपणन केंद्रों में विपणन सोसायटियों से युक्त किया जाए। प्रोसेसिंग का कार्य, विशेष रूप से चीनी उत्पादन, कपास ओटने, तेल पेरने तथा जूट का गट्ठर बनाने के कार्य मजबूती के साथ विकसित किए जाएँ।

10) भारत के इम्पीरियल बैंक तथा बड़े राज्य सहवर्ती बैंकों (State Associated Banks) जैसे बैंक ऑफ बीकानेर, बैंक ऑफ जयपुर आदि के साथ सांविधिक समामेलन के माध्यम से एक स्टेट बैंक ऑफ इंडिया की स्थापना की जाए। नये बैंक को चाहिए कि वह ग्रामीण क्षेत्रों में शाखा विस्तार के और बड़े कार्यक्रम शुरू करे। इसे साख और खासकर विपणन और प्रोसेसिंग साख से जुड़ी सहकारी संस्थाओं के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए।

समिति की सिफारिश के अनुसार 1956 में राष्ट्रीय सहकारिता विकास तथा वेयरहाउसिंग बोर्ड का गठन किया गया जो भारत सरकार के खाद्य और कृषि मंत्रालय से संबद्ध था। इस बोर्ड के अंतर्गत दो निधियाँ थीं। सहकारी विपणन तथा प्रोसेसिंग के विकास के लिए गठित सहकारी संस्थाओं को संस्थागत सहयोग देने के लिए राष्ट्रीय सहकारिता विकास निधि तथा दूसरी, वेयरहाउसिंग निगम को वित्तीय पोषण देने के लिए वेयरहाउसिंग विकास निधि।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में सहकारिता के विकास के लिए एक विस्तृत कार्यक्रम तैयार किया गया। इसमें गाँवों और ग्रामीणों के विकास के लिए विशेष कदम उठाए गए। इस योजना के अंतर्गत भारतीय रिज़र्व बैंक ने सहकारिता आन्दोलन के विकास के लिए कई काम किए। राष्ट्रीय कृषि साख कोष की स्थापना की गई। एक स्थायी परामर्शदात्री समिति की स्थापना की गई जिसका काम सहकारी साख के लिए रिज़र्व बैंक को समय-समय पर परामर्श देना था। इस दौरान कई सहकारी भवन और सहकारी गोदाम बनाए गए। इसी क्रम में 1966 में शहरी सहकारी बैंकों को बैंककारी विनियमन अधिनियम के दायरे में लाया गया।

दूसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान ही एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट आई। यह रिपोर्ट थी कोलंबो योजना के तहत प्राविधिक सहकारिता के कार्यक्रम के अंतर्गत 1957 में आमंत्रित किए गए माल्कम डार्लिंग की रिपोर्ट, जिन्होंने भारत में सहकारिता आन्दोलन के इतिहास का अध्ययन किया। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में तमिलनाडु, पंजाब, महाराष्ट्र और आन्ध्र प्रदेश की सहकारी समितियों का उल्लेख करते हुए बताया कि इन क्षेत्रों में समितियाँ अधिक काम कर सकती हैं। उनका मत था कि बड़े आकार की समितियों का गठन नहीं किया जाना चाहिए और न ही सीमित दायित्व वाली समितियाँ स्थापित की जानी चाहिए। उन्होंने समितियों के स्वतंत्र अस्तित्व का समर्थन किया और कहा कि इन्हें भारत सरकार की मदद नहीं लेनी चाहिए।

अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण की निर्देशन समिति (Committee of Direction) की सिफारिशों तथा दूसरी पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत सहकारिता विकास की योजनाओं के कार्यान्वयन के लिए उस समय विद्यमान कानूनों के सरलीकरण की जरूरत महसूस की गई। परिणामस्वरूप, भारत सरकार ने 1956 में श्री टी.एस.राजा की अध्यक्षता में सहकारिता कानून बनाए जाने के लिए एक समिति की नियुक्ति की। समिति ने मॉडल सहकारिता सोसायटीज बिल, विभिन्न प्रकार की सोसायटियों के लिए नियम तथा उप विधियों की रूपरेखा प्रस्तुत की तथा सभी राज्य सरकारों द्वारा मॉडल अधिनियम, नियम तथा उपविधियों को यथाशीघ्र अपनाने की जोरदार वकालत की।

राष्ट्रीय विकास परिषद ने नवंबर 1958 में कृषि उत्पादन बढ़ाए जाने, स्थानीय श्रमिकों तथा अन्य संसाधनों को संघटित करने और सामान्य रूप में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण में सहकारी आन्दोलन की भूमिका की समीक्षा की। अपने संकल्प में परिषद ने सिफारिश की कि ग्रामीण सहकारी

संस्थाओं को ग्रामीण समुदाय के आधार पर संगठित किया जाना चाहिए तथा देश भर में इनकी प्राथमिक इकाई होनी चाहिए और सेवा संबंधी सहकारी संस्थाओं का एक नेटवर्क होना चाहिए।

उक्त कार्यदल द्वारा दिए गए सुझावों तथा 1959 में मैसूर में आयोजित राज्यों के सहकारिता मंत्रियों के सम्मेलन की सिफारिशों के अनुसार सहकारी ऋण कार्यक्रम के कार्यान्वयन के लिए भारत सरकार ने श्री बैकुंठलाल मेहता की अध्यक्षता में सहकारी ऋण के संबंध में एक समिति की नियुक्ति की। इस समिति की निम्नांकित सिफारिशें थीं :

1) बढ़ाए गए ऋण का प्रावधान सभी जोतदार कृषक परिवारों के लिए किया जाए चाहे वे लघु जोतदार परिवार हों, मालिक या काश्तकार हों, ताकि कृषि उत्पादन पर्याप्त मात्रा में बढ़ाया जा सके।
2) उदारीकृत ऋण सुविधाओं का उपयोग कृषि उत्पादन बढ़ाए जाने के लिए किया जाए तथा उनको उपभोग (Consumption), सामाजिक व्यय आदि के लिए अलग कार्यों में नहीं लगाया जाना चाहिए। यह सुनिश्चित किए जाने के लिए कि इन निधियों का उपयोग कृषि उत्पादन के लिए ही किया जाए, ऋण के उपयोग पर निगरानी रखने के लिए सोसायटियों द्वारा स्वयं तथा उनके पर्यवेक्षण के लिए उत्तरदायी एजेंसियों द्वारा पर्याप्त व्यवस्था की जानी चाहिए।
3) बड़ी संख्या में मौजूद निष्क्रिय प्राथमिक साख सोसायटियों के सुधार, दृढ़ीकरण तथा पुनरुद्धार के लिए एक व्यवस्थित कार्यक्रम तैयार किया जाना चाहिए, इसके पहले कि ग्रामीण ऋण के प्रसार में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए उन पर भरोसा किया जाए।

नवंबर 1960 में श्री एस.डी.मिश्रा की अध्यक्षता में सहकारिता के प्रशिक्षण के लिए भारत सरकार द्वारा एक अध्ययन दल की स्थापना की गई। सहकारिता शिक्षण तथा प्रशिक्षण की मौजूदा व्यवस्थाओं की अपर्याप्तता को देखते हुए उक्त कार्यदल ने सिफारिश की कि सहकारिता प्रशिक्षण के कार्य को राष्ट्रीय सहकारी संघ (National Co-operative Union of India) तथा राज्य सहकारिता संघों को सौंप दिया जाए।

सहकारिता आन्दोलन तथा सहकारी ऋण वितरण प्रणाली को वित्तीय दृष्टि से मजबूत बनाने की दृष्टि से कृषि मंत्रालय ने 1990 में श्री जे.सी.पंत (अवर सचिव, कृषि और सहकारिता विभाग) की अध्यक्षता में एक अन्य समिति का गठन किया। इस समिति ने सुझाव दिया कि प्रत्येक प्राथमिक कृषि सोसायटी (PACS) को अर्थक्षम बनाये जाने के लिए कार्ययोजना तैयार किए जाने का पहला कदम यह होना चाहिए कि पैक्स के लिए कारोबार विकास योजनाओं (BDP) की तैयारी के सभी पक्षों के बारे में सहकारी बैंकों में कार्यरत कार्मिकों को प्रशिक्षित किया जाए। इस प्रशिक्षण में ऋण कारोबार को बढ़ाए जाने, लाभप्रद गतिविधियों के पैकेज का दायरा बढ़ाए जाने तथा जमाराशियों के संग्रहण के लिए आवश्यक समस्त गतिविधियों को शामिल किया जाए।

अक्तूबर 1990 में ही श्री एस.आर.शंकरन (सचिव, ग्रामीण विकास विभाग) की अध्यक्षता में ग्रामीण गरीबों के लिए सहकारी संस्थाओं के गठन हेतु एक अन्य समिति बनाई गई। इस समिति ने जून 1991 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। समिति ने पाया कि सहकारी संस्थाएँ, जो गरीबों को आर्थिक शोषण से बचाने के लिए बनाई गई थीं, उनकी उतनी सहायता नहीं कर पाईं जितनी करनी चाहिए थी तथा ग्रामीण गरीबों की बहुत बड़ी संख्या अभी भी अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए साहूकारों और महाजनों पर आश्रित है। समिति ने सामान्य ग्रामीण गरीबों, खासकर महिलाओं, ग्रामीण मजदूरों और आदिवासियों की सहायता के लिए ऋण मुहैया कराए जाने के अनेक उपाय सुझाए। ग्रामीण गरीबों को ऋण की आपूर्ति के बारे में यह सुझाव दिया गया था कि ग्रामीण गरीबों को ऋण मुहैया कराए जाने के लिए सहकारी संस्थाओं को एक सरल प्रणाली विकसित करनी चाहिए जो उनकी जमीन अथवा किसी अन्य जमानत के बजाय उनकी चुकौती क्षमता पर आधारित हो। गरीबों की बचत क्षमता के विकास के लिए सहकारी संस्थाओं को चाहिए कि वे उन्हें स्वयं सहायता समूह के रूप में संगठित होने में सहायता करें। इससे उनका कारोबार भी बढ़ेगा तथा समूह के सदस्यों के बीच एक सामाजिक सामंजस्य भी आएगा।

सहकारी आंदोलन को सरकारी समर्थन देने के लिए कृषि मंत्रालय के अंतर्गत एक सांविधिक निगम के रूप में 1963 में

'राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम' का गठन किया गया। निगम का उद्देश्य कृषि सहकारी समितियों को सुदृढ़ और विकसित करना था और उनकी आय को बढ़ाने के लिए फसलोपरांत सुविधाएं मुहैया करवानी थीं। निगम का मुख्य कार्य था कृषि उत्पादों, खाद्यान्नों, अन्य अधिसूचित वस्तुओं अर्थात उर्वरकों, कीटनाशकों, कृषि मशीनरी, तालों, साबुन, मिट्टी के तेल, वस्त्र, रबड़ आदि के उत्पादन, प्रसंस्करण, विपणन, भंडारण, निर्यात तथा आयात के कार्यक्रमों की योजना बनाना, उनका संवर्द्धन तथा वित्त पोषण करना।

राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (संशोधन) अधिनियम, 2002 के माध्यम से 'राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम' का कार्यक्षेत्र बढ़ाया गया, जिसके अंतर्गत निगम अब ग्रामीण औद्योगिक सहकारी क्षेत्रों तथा जल संरक्षण, सिंचाई तथा लघु सिंचाई, कृषि बीमा, कृषि ऋण, ग्रामीण स्वच्छता, पशु स्वास्थ्य, कुक्कुट और ग्रामीण उद्योग, हस्तशिल्प, ग्रामीण शिल्प आदि जैसी ग्रामीण क्षेत्रों की कुछेक अधिसूचित सेवाओं हेतु परियोजनाओं का वित्तपोषण कर सकता था। इस अधिनियम के तहत सहकारी समितियों को ज्यादा स्वायत्तता दी गई है। निगम द्वारा प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर की सहकारी समितियों का वित्तपोषण करने हेतु राज्य सरकारों को ऋण तथा अनुदान दिए जाते हैं तथा एक राज्य से बाहर कार्य व्यापार करने वाली राष्ट्रीय स्तर की तथा अन्य समितियों को सीधे ऋण तथा अनुदान दिए जाते हैं। निगम अब निर्धारित शर्तें पूरी करने पर अपनी विभिन्न सहायता योजनाओं के अंतर्गत परियोजनाओं का प्रत्यक्ष निधिपोषण भी कर सकता है।

इसी सिलसिले में भारतीय रिज़र्व बैंक ने बैंकिंग और वित्तीय सुविधाओं से वंचित लोगों तक बैंकिंग और अन्य वित्तीय सेवाएँ पहुँचाने तथा इस क्रम में शुरू किए गए वित्तीय समावेशन के अभियान में सहकारी संस्थाओं विशेषकर शहरी सहकारी बैंकों की भूमिका को महत्वपूर्ण मानते हुए 2005 में विज़न दस्तावेज का प्रारूप तैयार किया। सहकारिता क्षेत्र को नये सिरे से मजबूत करने तथा आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग को ऋण मुहैया कराने में सक्षम बनाने के लिए शहरी सहकारी बैंकों के वैधानिक तथा पर्यवेक्षी ढाँचे के सभी पहलुओं की समीक्षा करके इस विज़न दस्तावेज को तैयार किया गया। इसके आधार पर 24 राज्य सरकारों के साथ समझौता ज्ञापन (MoU) पर हस्ताक्षर किये जा चुके हैं तथा वहाँ एक परामर्शी एवं सहयोगात्मक मंच के रूप में टैफकब (राज्य स्तरीय कार्यदल) गठित किए गए हैं। बहुराज्यीय शहरी सहकारी बैंकों के मामले में केंद्र सरकार के साथ भी भारतीय रिज़र्व बैंक का समझौता ज्ञापन हो चुका है। इससे सहकारी बैंकिंग के विकास की एक बड़ी कठिनाई - ''दोहरे नियंत्रण" की समस्या का भी समाधान होने लगा है।

इसी तरह भारत सरकार ने ग्रामीण सहकारी ऋण संस्थाओं को मजबूती प्रदान करने के उद्देश्य से एक व्यावहारिक कार्ययोजना प्रस्तुत करने के लिए अगस्त 2004 में प्रो.ए.वैद्यनाथन की अध्यक्षता में एक कार्यदल का गठन किया। कार्यदल की सिफारिशों के अनुसार सहकारी बैंकिंग संस्थाओं की निगरानी बैंकिंग विनियामक द्वारा की जानी चाहिए। कार्यदल ने भारतीय रिज़र्व बैंक तथा राज्य सरकारों के बीच समझौता ज्ञापनों (MoUs) की उपयोगिता के महत्व को भी रेखांकित किया। कार्यदल ने सहकारी सोसायटियों की कार्यप्रणाली में गुणात्मक सुधार पर बल देते हुए उनके पुनरुद्धार के लिए उनकी वित्तीय पुनर्संरचना के साथ-साथ उनमें संस्थागत सुधारों की भी सिफारिश की। कार्यदल ने सहकारी सोसायटियों की वित्तीय पुनर्संरचना के लिए उनमें विनियामक, कानूनी और प्रशासनिक बदलावों को लाए जाने का सुझाव दिया तथा सहकारी सोसायटियों को सदस्य-केंद्रित, लोकतांत्रिक, स्वायत्त तथा आत्मनिर्भर बनाये जाने की वकालत की। इस प्रकार, कार्यदल की रिपोर्ट में सहकारिता आन्दोलन को सही मायने में सहकारी बनाये जाने की बात कही गयी। केंद्र सरकार ने वैद्यनाथन समिति की रिपोर्ट की सिफारिशों को मंजूर कर लिया है तथा इन पर कार्यान्वयन की प्रक्रिया जारी है।

विकासात्मक भूमिका : विकास के नये आयाम, नये सोपान

सहकारिता के मूल में जनता को पारस्परिक सहयोग के आधार पर स्वावलंबन एवं आत्मनिर्भर जीवन जीने के लिए तैयार करने का उद्देश्य समाया हुआ है। भारत में सहकारिता आन्दोलन की शुरुआत से लेकर आज तक इसके मूल में सहकार, सहयोग और सबको स्वावलंबी बनाने के लिए प्रेरित

करने की भावना मौजूद रही है। इसी भावना से प्रेरित होकर भारत में सहकारिता आन्दोलन ने भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ीकरण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। एक ओर जहाँ इस आन्दोलन से ग्रामीण और शहरी ऋणग्रस्तता तथा साहूकारों-महाजनों का वर्चस्व कम करने में मदद मिली है, कृषि और गैर कृषि क्षेत्र में पारस्परिक आर्थिक सहयोग, स्वरोजगार, आर्थिक स्वावलंबन का वातावरण बनाने में सहायता मिली है वहीं किसानों को आर्थिक दृष्टि से मजबूत बनाने, उनको उनकी उपज का लाभकारी मूल्य दिलवाने में भी इस आन्दोलन का बड़ा योगदान है। सहकारी संस्थाओं के विकास तथा इस क्रम में स्वयं-सहायता समूहों जैसी संस्थाओं के अभ्युदय ने भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में अपनी गहरी छाप छोड़ी है। सहकारी ऋण (नाबार्ड), सहकारी विपणन (नैफेड), उर्वरक एवं प्रसंस्करण सहकारिता (कृभको, इफको), दुग्ध सहकारिता (अमूल), महिला सहकारिता (एनएफआईसी), आदिवासी सहकारिता (ट्राइफेड), खाद्य सहकारिता (फिश काफेड), श्रमिक सहकारिता (नेशनल फेडरेशन आफ लेबर को-आपरेटिव) और सहकारिता संगठन (एनसीडीसी तथा एनसीयूआई) तथा 'आपरेशन फ्लड' जैसे विकासात्मक अभियान भारत में सहकारिता आन्दोलन की सफलता के साक्षात प्रमाण हैं। स्थिति यह है कि आज विशेषज्ञों द्वारा कृषि विकास दर सुधारने की राह में सहकारिता क्षेत्र को महत्वपूर्ण माना जाने लगा है। भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था के संदर्भ में सहकारिता, कृषि और ग्रामीण विकास तीनों में गहरा संबंध है। कृषि ऋण के विभिन्न आयामों मसलन-क्रेडिट, उत्पादन, प्रसंस्करण, मार्केटिंग, इन्पुट्स का वितरण, हाउसिंग, डेयरी और टेक्सटाईल इत्यादि में आज सहकारी संस्थानों की महत्वपूर्ण भागीदारी है। सहकारी समितियों द्वारा संचालित चीनी मिलों, कताई मिलों, सहकारी बैंकों एवं सुपर मार्केटों की एक लंबी श्रृंखला है। डेयरी, शहरी बैंकिंग एवं आवास निर्माण, चीनी, उर्वरक तथा हैण्डलूम इत्यादि क्षेत्रों में सहकारी संस्थानों की महत्वपूर्ण उपलब्धियां भारत के सहकारिता आन्दोलन की सफलता को रेखांकित करती हैं। इस प्रकार, 1904 में मद्रास प्रान्त के कांजीवरम में पंजीकृत करायी गयी कांजीवरम अर्बन को-ऑपरेटिव सोसायटी तथा 1911 में पंजाब के फिरोजपुर तहसील के खालची कादिम गाँव में पंजीकृत कृषि ऋण सोसायटी से शुरू हुआ सफर धीरे-धीरे आगे बढ़ता गया और 1.09 लाख प्राथमिक कृषि सोसायटी (PACS), 12,858 शाखाओं वाले 368 जिला मध्यवर्ती सहकारी बैंक (DCCB) तथा 953 शाखाओं व 122,590 सर्विस आउटलेट वाले 30 राज्य सहकारी बैंकों (SCB) [National Federation of State Co-operative Banks (NAFSCOB) के आँकड़ों के अनुसार मार्च 2005 तक] वाले सहकारिता परिवार जिनकी सदस्य संख्या आज लगभग 230 मिलियन सदस्यों तक पहुँच गयी है, ने कालान्तर में विशाल आकार ग्रहण कर लिया। भारतीय कृषि क्षेत्र को वाणिज्यिक बैंकों से ज्यादा ऋण मुहैया कराने वाली देश भर में व्यापक रूप से फैली सहकारिता सोसायटियाँ ऋण प्रदान करने के अलावा कृषि तथा उपभोक्ता क्षेत्र के विकास से संबंधित बुनियादी सुविधाओं के विकास में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए भंडारण के लिए स्टोरेज गोदामों के निर्माण, ग्रामीण सड़कों के निर्माण, सिंचाई साधनों के विकास, परिवहन, क्रय-विक्रय केंद्रों की स्थापना, लघु उद्योग को बढ़ावा देने के अतिरिक्त चीनी, कपास, दुग्ध, उर्वरक उद्योग आदि क्षेत्रों में अपने महत्वपूर्ण योगदान से भारतीय अर्थव्यवस्था तथा देश के विकास में महत्वपूर्ण विकासात्मक भूमिका निभा रही हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में सहकारिता -आन्दोलन की महत्वपूर्ण भूमिका को और विस्तृत स्वरूप प्रदान किया जा सकता है। इस क्षेत्र में निहित संभावनाओं का पूरा-पूरा दोहन देश के विकास को नये आयाम दे सकता है।

वैश्वीकरण के इस दौर में जब अधिकतर सार्वजनिक उपक्रम अपनी अतिशय प्रतिबद्धता के कारण उतने सफल सिद्ध नहीं हो रहे हैं तथा निजी उपक्रमों में सामाजिक दायित्वों और सामाजिक प्रतिबद्धताओं के प्रति उतनी मानसिक तत्परता का अभाव है, तब देश की जनसंख्या के बड़े भाग के सामाजिक-आर्थिक विकास की दिशा में सहकारिता से बहुत सारी उम्मीदें जगती हैं। भारत जैसे देश में सहकारिता एक ऐसा उपकरण सिद्ध हो सकता है जिसमें एक साथ गरीबी से लड़ने, खाद्य सुरक्षा देने और रोजगार सृजित करने की असीम क्षमता विद्यमान है। जरूरत बस इस बात की है कि सहकारी संस्थाओं के लोकतांत्रिक तथा समावेशी स्वरूप को बचाते हुए उन्हें उद्यम और कारोबार की आर्थिक गतिविधियों से जोड़ने में उनकी मदद की जाए।

सहकारिता के विकास के लिए किए गए सरकारी प्रयास

● डॉ. एस. एल. लोढ़ा*

हमारे देश में 1904 में 'कृषि सहकारी समितियाँ अधिनियम' लागू होने के साथ सहकारिता का विकास हुआ जो वर्तमान में 100 वर्ष पूरे कर चुका है। यद्यपि वाणिज्यिक बैंकों का विकास इससे पूर्व हो चुका था किन्तु वाणिज्यिक बैंकों ने कृषि क्षेत्र को ऋण सुविधाओं में रूचि नहीं दिखाई। अत: यह आवश्यक समझा गया कि कृषि क्षेत्र में ऋण सुविधाएं जुटाई जाएं। यह भी चिंतन किया गया कि कृषकों की आवश्यकताएं छितराई हुई और अल्पमात्रा में हैं अत: सहकारी समितियों की स्थापना वाणिज्यिक बैंकों के विकल्प के रूप में उभर कर सामने आई। इस दृष्टिकोण से सहकारी बैंकिंग समितियाँ ऐसी औपचारिक संस्थाएं थी जिनको ग्रामीण भारत की ऋण आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विकसित किया गया। दक्षिण भारत के कांजीवरम में सर्वप्रथम 1904 में कांजीवरम अरबन सहकारी बैंक की एवं राजस्थान के अजमेर जिले के भिनाय में सन् 1905 में सहकारी बैंक की स्थापना की गई। बाद में शहरी क्षेत्रों में सहकारिता की विकास की संभावनाओं के विकास हेतु 1914 में मेकलैगन समिति का गठन किया गया। इसी दौरान 1913 में देश की बैंकिंग संस्थाओं के सामने 57 वाणिज्यिक बैंकों के विफल होने से एक संकट पैदा हो गया। इस संकट का लाभ सहकारी बैंको को मिला। लोगों ने वाणिज्यिक बैंकों से मुँह मोड़ कर सहकारी संस्थाओं में अपना धन जमा करवा दिया।

भारतीय वित्तीय व्यवस्था में सहकारी बैंकिंग व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जहाँ व्यावसायिक बैंक शहरों एवं नगरों से जुड़े हुए हैं वहां सहकारी बैंकिंग व्यवस्था एवं ग्रामीण भारत एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। यही नहीं, सहकारी बैंकिंग व्यवस्था नगरीय लोगों के साथ भी जुड़ी हुई है। ग्रामीण साख की नगण्यता ने 1950 एवं 1960 के दशक में भारतीय रिज़र्व बैंक एवं भारत सरकार दोनों का ही ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है।'

भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 में ग्रामीण साख के बारे में विशेष ध्यान दिया गया है। अधिनियम की धारा 54 में यह प्रावधान किया गया है कि भारतीय रिज़र्व बैंक एक कृषि साख विभाग की स्थापना करे जो न केवल ग्रामीण ऋण की ही उपलब्धता सुनिश्चित करे अपितु दीर्घकालीन पुनर्वित्त की भी व्यवस्था करे। इसी अधिनियम की धारा 17 में यह प्रावधान भी किया गया है कि भारतीय रिज़र्व बैंक सहकारी बैंकों एवं कृषि ऋण में संलग्न अन्य बैंकों के माध्यम से कृषि ऋण भी उपलब्ध कराए। ग्रामीण ऋण की विस्तार से व्यवस्था करने का श्रेय अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण 1954 (All India Rural Credit Survey, 1954) को है जिसके अध्यक्ष ए. डी. गोरवाला थे। इस समिति का यह सुझाव था कि भारतीय रिजर्व बैंक राष्ट्रीय कृषि साख कोष (National Agricultural Credit Fund) की स्थापना करें। इसके बाद 1963 में भारतीय रिज़र्व बैंक ने कृषि पुनर्वित्त निगम की स्थापना की। यद्यपि ग्रामीण ऋण की उपलब्धता से सम्बन्धित यह सब प्रयास किए गए किन्तु सहकारी ऋण की उपलब्धता के संदर्भ में कोई विशेष काम नहीं हुआ। सहकारी ऋण संस्थाएं, जिनका अब तक राज्य सरकारों एवं रजिस्ट्रार सहकारी संस्थाओं के माध्यम से नियमन होता था, अब भारतीय रिज़र्व बैंक - बैंकिंग अधिनियम, (जो सहकारी साख संस्थाओं के लिए लागू होता है) जो पहली मार्च 1966 से लागू हुआ, के अन्तर्गत आ गई। यद्यपि भारतीय रिज़र्व बैंक को सहकारी साख संस्थाओं से सम्बन्धित नियमों में ज्यादा अधिकार नहीं दिए गए किन्तु बैंककारी विनियमन अधिनियम, 1949 के अन्तर्गत भारतीय रिज़र्व बैंक को शहरी सहकारी बैंकों से सम्बन्धित अधिक अधिकार प्राप्त हुए हैं। किन्तु यह अधिनियम प्राथमिक सहकारी बैंकों पर लागू नहीं होता। इसका तात्पर्य यह है कि प्राथमिक सहकारी बैंकों पर अब भी राज्य सरकारों एवं रजिस्ट्रार सहकारी समिति का नियंत्रण है।

* एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र (से.नि.), ई 161, शास्त्रीनगर, अजमेर

वर्तमान में भारत में सहकारी ऋण संस्थानों की संरचना निम्न प्रकार है -

भारत में सहकारी ऋण संस्थाओं की संरचना

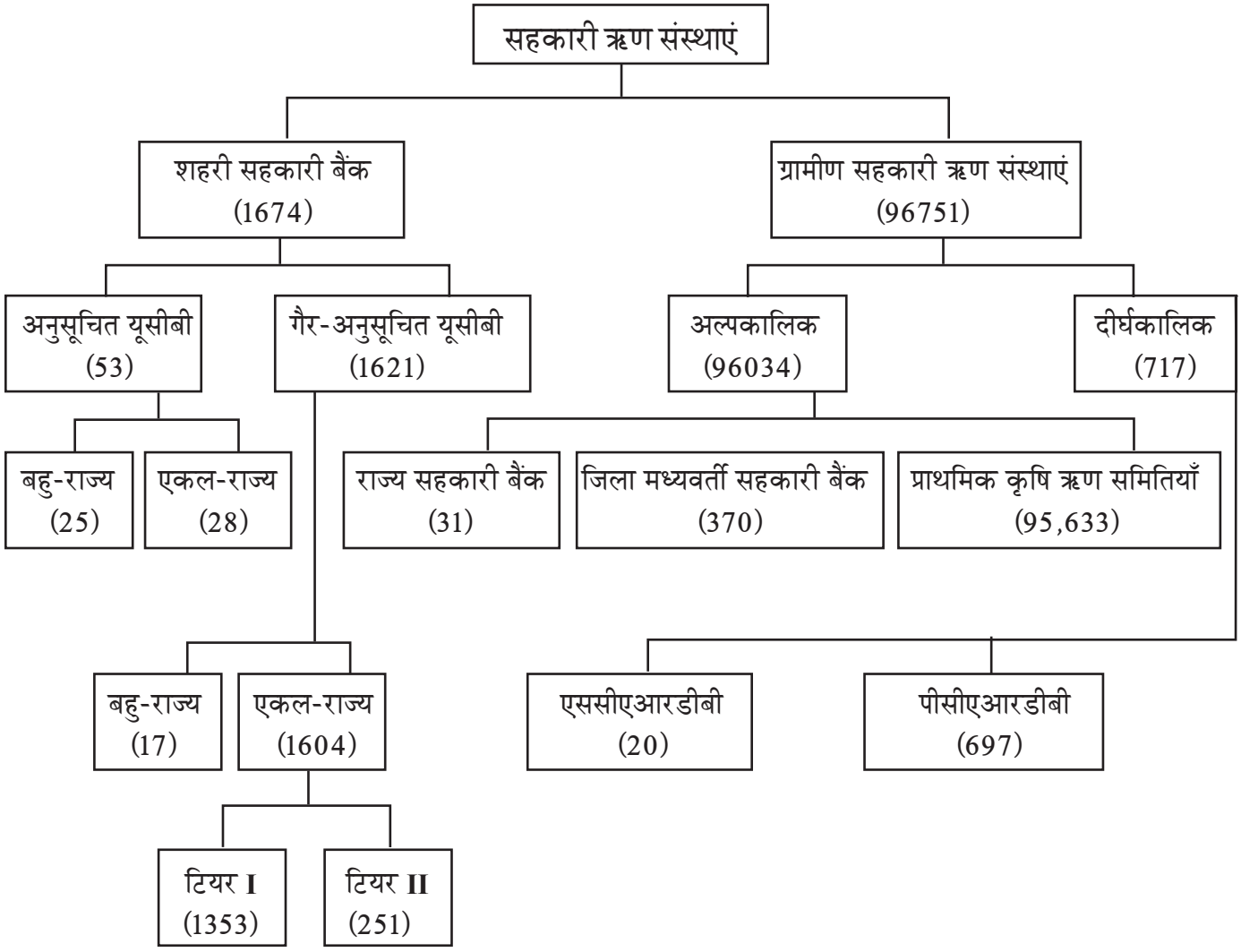

एससीएआरडीबी : राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक।

पीसीएआरडीबी : प्राथमिक सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक।

टिप्पणी : 1. कोष्ठक में दिए गए आंकड़े यूसीबी के लिए मार्च 2010 के अंत और ग्रामीण सहकारी ऋण संस्थाओं के लिए मार्च 2009 के अंत में संस्थाओं की संख्या दर्शाते हैं।

2. ग्रामीण सहकारी समितियों के लिए बैंकों की संख्या से तात्पर्य रिपोर्टिंग बैंकों से है।

स्रोत : भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति एवं प्रगति संबंधी रिपोर्ट 2009-10, भारतीय रिज़र्व बैंक

उपरोक्त संरचना से स्पष्ट होता है कि भारत में सहकारी बैंकिंग का ढाँचा थोड़ा जटिल है। इसके अन्तर्गत शहरी सहकारी बैंक तथा ग्रामीण सहकारी ऋण संस्थाएं दोनों ही आती हैं। यद्यपि हाल ही में शहरी सहकारी बैंकिंग क्षेत्र में आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। किन्तु शहरी सहकारी बैंकों की अनर्जक अस्तियों में वृद्धि इनकी वित्तीय मजबूती के लिए एक खतरा बनी हुई है। अल्प एवं दीर्घकालीन ग्रामीण ऋण सहकारी संस्थाएं भी कमजोर संसाधन, एवं संचित हानियों के उच्च स्तर से त्रस्त हैं। इसके अतिरिक्त वर्तमान में सहकारी संस्थाओं पर राज्य सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक का दोहरा नियंत्रण है। वित्तीय क्षेत्र मूल्यांकन समिति, 2009 ने सहकारी बैंकिंग क्षेत्र में दोहरे नियंत्रण को 'एकल सर्वाधिक महत्वपूर्ण विनियामक और पर्यवेक्षी कमजोरी के रूप में चित्रित किया है।' श्री जगदीश कपूर की अध्यक्षता में 1999 में एक टास्क फोर्स ऑन कोऑपरेटिव क्रेडिट सिस्टम की नियुक्ति की गई। इन्होंने सहकारी संस्थानों पर दोहरे नियंत्रण का जिक्र करते हुए सुझाव दिया कि सहकारी संस्थाओं पर से दोहरा नियंत्रण हटा लिया जाना चाहिए और इन्हें अपनी कार्यप्रणाली में स्वतंत्रता प्रदान की जानी चाहिए। इस समिति की यह राय रही कि राज्य सरकार भारतीय रिज़र्व बैंक, नाबार्ड एवं एपेक्स बैंक को नियंत्रण की व्यवस्थाएं निश्चित कर दी जानी चाहिए। शहरी सहकारी बैंकों पर भारतीय रिज़र्व बैंक एवं राज्य सरकारों के दोहरे नियंत्रण से निपटने के लिए, विजन दस्तावेज 2005 सबसे महत्वपूर्ण संस्थागत पहल है। इस दस्तावेज में की गई सिफारिशों के अनुकूल भारत सरकार तथा विभिन्न राज्य सरकारों ने भारतीय रिज़र्व बैंक के साथ समझौता ज्ञापन (MOU) पर हस्ताक्षर किए हैं।

इसके बाद अगस्त 2004 में वैद्यनाथन की अध्यक्षता में दूसरे टास्क फोर्स की नियुक्ति की गई। इसका काम सहकारी संस्थाओं के नियंत्रण हेतु उचित व्यवस्था का सुझाव देना था। समिति के सभी सुझावों को सरकार द्वारा अक्षरक्षः स्वीकार कर लिया गया है।

शहरी सहकारी बैंकों की कमजोर वित्तीय स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक ने कई उपाय अपनाए। मार्च 31, 1993 से शहरी सहकारी बैंकों पर विवेकपूर्ण मानदंड (Prudential Norms) लागू कर दिए गए जिसमें पूंजी पर्याप्तता अनुपात, आस्ति देयता प्रबन्धन, सांविधिक चलनिधि अनुपात में सरकारी प्रतिभूतियों में अधिक निवेश एवं कम्पनी के अंशों एवं ऋणपत्रों में निवेश और नियंत्रण एवं पूंजी बाजार में कम निवेश करना आदि प्रावधान प्रमुख हैं।

भारत में वित्तीय व्यवस्था की कार्य प्रणाली की चुनौतियों को देखते हुए श्री माधव राव की अध्यक्षता में 1999 में एक हाई पावर कमेटी गठित की गई जिसका कार्य शहरी सहकारी बैंकों के कार्य निष्पादन एवं इनके ढाँचे पर विचार प्रस्तुत करना था। इस समिति की सिफारिशों के आधार पर शहरी सहकारी बैंकिंग ढाँचे को सुदृढ़ बनाने के प्रयत्न किए गए।

समूचे शहरी सहकारी बैंकिंग क्षेत्र को सुदृढ़ बनाने की दृष्टि से 2005 से इस क्षेत्र में शहरी सहकारी बैंकों का विलय अथवा समामेलन चल रहा था। वर्तमान अनुदेशों के अनुसार अधिग्राहक बैंकों से यह प्रत्याशित है कि यह अपने स्तर पर अथवा राज्य सरकारों से प्राप्त प्रत्यक्ष वित्तीय समर्थन द्वारा अधिगृहीत बैंक की जमाराशियों को संरक्षित करे। तथापि जनवरी 2009 में यह निर्णय लिया गया कि 31 मार्च 2007 की स्थिति के अनुसार ऋणात्मक निवल मालियत रखने वाले शहरी सहकारी बैंकों से सम्बन्धित लेगैसी के मामलों में भारतीय रिज़र्व बैंक समामेलन की योजना पर भी विचार करे।

माधवपुरा मर्केन्टाईल सहकारी बैक के डूब जाने के कारण यह महसूस किया गया कि सहकारी बैंकों पर नियमन का कड़ा प्रावधान होना चाहिए। अत: भारतीय रिज़र्व बैंक ने निगरानी कार्यक्रम शुरू किया जिसके अन्तर्गत सभी गैर- अनुसूचित सहकारी बैंकों - जिनकी जमा 100 करोड़ रुपये है - उन्हें अपनी निगरानी में ले लिया। मार्च 2001 से अनुसूचित शहरी सहकारी बैंकों के लिए निरीक्षण रिपोर्ट व्यवस्था का प्रावधान किया गया। मार्च 2002 से सभी शहरी सहकारी बैंकों के लिए पूंजी पर्याप्तता सिद्धान्त को भी लागू कर दिया गया। अक्तूबर 2003 से सभी शहरी सहकारी बैंकों के लिए यह प्रतिबन्ध लगा दिया गया कि वे अपने संचालकों को अपने रिश्तेदारों एवं ऐसे संस्थानों को जिनमें इनका हित हो, उनको ऋण नहीं देंगे। भारतीय रिजर्व बैंक ने ये भी निर्देश दिए कि सभी शहरी सहकारी बैंक सांविधिक चलनिधि अनुपात को अतिरिक्त प्रतिभूतियों में निवेश करने में सावधानी बरतें।

भारतीय रिज़र्व बैंक ने अप्रैल 2003 में शहरी सहकारी बैंकों के श्रेणीकरण का नया तरीका लागू किया जिसमें पूंजी पर्याप्तता, विशुद्ध डूबंत आस्तियाँ, हानियों की निरन्तरता और इसमें कमी

के प्रयास सम्मिलित हैं। इनके निरीक्षण के लिए केमल्स माडल को भी लागू कर दिया गया है। यद्यपि प्रारंभ में ये सभी व्यवस्थाएं अनुसूचित शहरी सहकारी बैंकों के लिए लागू की गई थीं किन्तु बाद में उन्हें गैर अनुसूचित शहरी सहकारी बैंकों के लिए भी लागू कर दिया गया।

भारतीय रिज़र्व बैंक 2008-09 के वार्षिक नीति वक्तव्य में की गई घोषणा के अनुसरण में समझौता ज्ञापनों पर हस्ताक्षर करने वाले राज्यों में वित्तीय रूप से सुदृढ़ और कार्यरत शहरी सहकारी बैंकों के लिए शाखा खोलने की नीति को अधिक सरल और युक्तिसंगत बना दिया गया है। इसके अन्तर्गत वर्ष 2008-09 व 2009-10 के लिए शहरी सहकारी बैंकों द्वारा प्रस्तुत वार्षिक कारोबार के आधार पर 31 मार्च 2009 तक 275 बैंकों को 402 शाखाएं एवं 23 विस्तार पटल खोलने की अनुमति प्रदान की गई थी। शहरी सहकारी बैंक तथा वाणिज्यिक बैंकों के बीच समरूपता लाने के लिए 31 मार्च, 2009 से आरंभ रेटिंग मॉडलों में संशोधन भी कर दिया गया है। ग्रामीण ऋण सहकारी क्षेत्र में नीतिगत पहलुओं के अन्तर्गत लाइसेंस रहित संस्थानों को समाप्त कर तथा इन संस्थानों के पूंजी आधार को सुदृढ़ कर इस क्षेत्र को मजबूत बनाना है। इस नीति के अन्तर्गत 2008-09 में सहकारी बैंकों को कोई नया लाइसेंस स्वीकृत नहीं किया गया है। 30 जून, 2009 को लाइसेंस प्राप्त राज्य सहकारी बैंकों तथा जिला सहकारी बैंकों की कुल संख्या 89 पर अपरिवर्तित रही है। साथ ही वर्ष के दौरान किसी राज्य सहकारी बैंक को भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 42 के अन्तर्गत दूसरी अनुसूची में सम्मिलित करने के लिए अनुसूचित बैंक का दर्जा भी नहीं दिया गया है।

यद्यपि वाणिज्यिक बैंकों एवं सहकारी बैंकों में ढांचागत एवं कार्यों के निष्पादन में बहुत बड़ा अन्तर है किन्तु भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा शहरी सहकारी बैंकों हेतु लिए गए निर्णय यह स्पष्ट करते हैं कि रिजर्व बैंक सहकारी बैंकों को सुदृढ़ बनाने के लिए वे ही प्रावधान लागू कर रहा है जो वाणिज्यिक बैंकों के लिए लागू हैं। इन व्यवस्थाओं से सहकारी बैंकिंग क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन संभव है। यद्यपि सहकारी बैंकिंग क्षेत्र भारतीय बैंकिंग व्यवस्था का एक कमजोर खण्ड है किन्तु सहकारिता के विकास के लिए किए गए सरकारी व भारतीय रिज़र्व बैंक के प्रयास निश्चित ही इन्हे बैंकों की अच्छी श्रेणी में ला खड़ा करेंगे।

राज्य सहकारी बैंकों, राज्य सरकारों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को नाबार्ड का ऋण

(राशि करोड़ रुपए में)

मद	2008-09				2009-10			
	सीमा	आहरण	चुकौती	बकाया	सीमा	आहरण	चुकौती	बकाया
1	2	3	4	5	6	7	8	9
1. राज्य सहकारी बैंक (क + ख)	**20,133**	**17,778**	**17,858**	**15,704**	**18,287**	**18,680**	**17,215**	**17,169**
क. अल्पावधि	20,053	17,778	16,636	15,638	18,287	18,680	17,149	17,169
ख. मध्यावधि	80	-	1,222	66	66*	-	66	-
2. राज्य सरकारें								
क. दीर्घावधि	-	18	56	252	-	-	53	199
3. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (क + ख)	**4,829**	**4,061**	**3,914**	**3,803**	**7,374**	**7,091**	**3,969**	**6,924**
क. अल्पावधि	4,829	4,061	3,291	3,656	7,374	7,091	3,842	6,904
ख. मध्यावधि	-	-	623	147	-	-	127	20
कुल जोड़ (1 + 2 + 3)	**24,962**	**21,858**	**21,828**	**19,759**	**25,661**	**25,771**	**21,238**	**24,292**

* यह स्वीकृति बाद में वापस ले ली गयी है। '-' : शून्य।

टिप्पणी : 1) अल्पावधि में मौसमी कृषि कार्य (एसएओ) और मौसमी कृषि कार्यो से इतर अन्य कार्य (ओएसएओ) शामिल हैं। 2008-09 के लिए अल्पावधि में खरीफ और रबी के लिए चलनिधि सहायता योजना भी शामिल है।

2) राज्य सहकारी बैंकों और राज्य सरकारों के लिए ऋण की अवधि अप्रैल से मार्च है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के लिए जुलाई से जून है।

3) मध्यावधि में एमटी कनर्वशन और एमटी (एनएस) और एमटी चलनिधि सहायता योजना शामिल है।

4) 2009-10 के दौरान की गई चुकौतियों में एसटी (एसएओ) खाता III और रबी के लिए चलनिधि सहायता के अंतर्गत चुकौती शामिल है।

स्रोत : नाबार्ड।

आर्थिक विकास में सहकारी संस्थाओं का योगदान

● काज़ी मुहम्मद ईसा*

बैंकिंग और वित्तीय क्षेत्र को अर्थव्यवस्था के उत्थान का सबसे महत्वपूर्ण कारक माना जाता है। पिछली सदी में नब्बे के दशक से पूर्व की बैंकिंग व्यवस्था पर नज़र डालें तो कमोबेश यह पाया जाता है कि वाणिज्य बैंकों की उपस्थिति शहरी क्षेत्रों में बहुतायत से पाई जाती थी जबकि देश की सत्तर प्रतिशत जनसंख्या का आधार माना जाने वाला ग्रामीण क्षेत्र बड़े, राष्ट्रीयकृत बैंकों की सुविधाओं और सेवाओं से काफी हद तक वंचित था। ग्रामीण क्षेत्र की आवश्यकताएं शहरी क्षेत्र से कम नहीं थीं, क्योंकि जहां कृषि के विशाल क्षेत्र को देश की समस्त आबादी को खाद्यान्न उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी का निरंतर निर्वाह करना है, वहीं ग्रामीण क्षेत्र की गतिविधियों में उत्तरोत्तर वृद्धि से क्षेत्रीय विकास की गति को . कायम रखना भी ज़रूरी है। ग्रामीण क्षेत्र साहूकारों, सेठों और ज़मींदारों के चंगुल में था जहां शोषण के अलावा कुछ भी नहीं था। आर्थिक विकास में शहरी क्षेत्र के साथ-साथ ग्राम्य क्षेत्र का योगदान बहुत कम था, जबकि अधिकांश आबादी की निर्भरता ग्रामीण क्षेत्रों पर थी। सन् 1904 में भारत में नए सहकारिता आंदोलन का सूत्रपात हुआ और सहकारी साख अधिनियम पारित हुआ। दरअसल, देश के सर्वांगीण विकास के लिए यह आवश्यक था कि शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों को समानांतर रूप से विकसित किया जाए क्योंकि अनेक आवश्यकताओं के लिए दोनों क्षेत्रों की एक-दूसरे पर निर्भरता है। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य किसानों, कारीगरों तथा सीमित साधनों वाले व्यक्तियों में बचत, स्वयं-सहायता तथा सहकारिता की भावना को जागृत करना था जिससे वे गरीबी से उबर सकें।

सहकारी संरचना

आज सहकारी संस्थाएं देश में ग्रामीण ऋण मुहैया कराने का महत्वपूर्ण घटक बन गई हैं। सहकारी संस्थाओं ने न केवल कृषि क्षेत्र को क़र्ज उपलब्ध कराया है बल्कि ग्रामीण विकास में सुदृढ़ वित्तीय संस्था के रूप में प्रमुख भूमिका अदा की है। यही कारण है कि ग्रामीण ऋण बाज़ार में सहकारी संस्थाओं का वर्चस्व आज भी बरक़रार है। भारत में सहकारी संस्थाओं की संरचना इस प्रकार रही है:

1. प्राथमिक कृषि ऋण समितियां
2. ज़िला मध्यवर्ती सहकारी बैंक
3. राज्य सहकारी बैंक और
4. शहरी सहकारी बैंक

सहकारिता : सिद्धांत एवं उद्देश्य

सहकारी बैंकों की कार्यप्रणाली लाभरहित, हानिरहित सिद्धांत पर आधारित है। इसका उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना नहीं है। इसलिए ये बैंक बुनियादी बैंकिंग सेवाएं उपलब्ध कराने पर अधिक ध्यान देते हैं। इन बैंकों द्वारा ग्राहकों को बचत खाता, चालू खाता, सुरक्षित जमा लॉकर, ऋण तथा मार्गेज आदि सेवाएं प्रदान की जाती हैं। प्राय: छोटे उधारकर्ता या छोटे उद्योग को ऋण देने का कार्य किया जाता है। कृषि आधारित गतिविधियों जैसे खेती, पशुपालन, दुग्ध उत्पादन, हैचरी, वैयक्तिक ऋणों के साथ-साथ स्वरोज़गार योजनाओं का भी कार्यान्वयन सहकारी संस्थाओं का कार्य है। सहकारी बैंक, सहकारी समिति अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत होते हैं। सहकारी बैंकों का विनियमन भारतीय रिज़र्व बैंक तथा बैंककारी विनियमन अधिनियम, 1949 तथा बैंकिंग विधि(सहकारी समिति) अधिनियम, 1965 द्वारा होता है। आर्थिक विकास में सहकारी संस्थाओं की भूमिका अहम मानी जाती है। भारत के सहकारी क्षेत्र की गणना विश्व में सबसे बृहद् क्षेत्र के रूप में होती है। आर्थिक सुधार के लिए आवश्यक है कि उत्पादन गतिविधियां तेज़ हों, रोज़गार के अवसर पैदा हों और जीवन-स्तर में लगातार सुधार हो और यह तभी संभव है जब शहरी क्षेत्र के साथ-साथ ग्रामीण इलाक़ों में ज़रूरतमंदों को वित्त की सुविधा उपलब्ध हो।

* सहायक महाप्रबंधक, राजभाषा कक्ष, भारतीय रिज़र्व बैंक, कोलकाता

सहकारी संस्थाओं के निर्माण के पीछे सबसे बड़ा मंतव्य यही था कि ग्रामीण व्यक्तियों एवं कृषि क्षेत्र से जुड़े कृषकों को आसान एवं सस्ती ब्याज दर पर ऋण मिल सके ताकि वर्षों से साहूकारों के ऋणों के बोझ तले दबे हुए कमज़ोर और निर्धन वर्ग स्वयं को उससे मुक्त कर सकें, उनकी आय बढ़े, परिसंपत्तियों में वृद्धि हो तथा आर्थिक सुरक्षा मज़बूत हो। प्राय: यह पाया गया है कि ऋण की सुविधा का लाभ उन खेतिहर मज़दूरों, कृषकों एवं ग्रामीणों तक नहीं पहुंच पाता जिनके लिए उसकी व्यवस्था की गई है। आमतौर पर छोटे-छोटे किसानों और गरीब परिवारों को अल्प मात्रा में ऋण आसान किस्तों पर दिए जाने की ज़रूरत थी जिसे केवल सहकारी बैंक ही प्रदान कर सकते थे। इस प्रकार के अल्प ऋण बड़े पैमाने पर दिया जाना आर्थिक रूप से सहकारी बैंकों के लिए भी संभव नहीं था, किंतु, उनके निर्माण का एक मक़सद यह भी था कि वे ग्रामीण आर्थिक गतिविधियों को क्रियाशील करने में सहायक हो सकें और लंबे समय से उपेक्षित क्षेत्रों में विकास की लहर दौड़ सके। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में सहकारिता आंदोलन को पूरे विश्व में प्राथमिकता दी गई क्योंकि सहकारिता न केवल लोक सामर्थ्य का उपयोग उद्यमिता के विकास हेतु करने के लिए बेहतरीन विकल्प थी बल्कि बदलते आर्थिक परिवेश में राष्ट्र को विकास के पथ पर अग्रसर रखने में कामयाब हो सकती थी। यही कारण था कि सहकारिता को विश्व भर में समर्थन मिलता चला गया और वह समाज की संगठित ऊर्जा को सकारात्मक दिशा देकर उसे उपयोगी कार्यों में लगाने का जरिया बन गयी। आधुनिक सहकारिता का उद्भव स्वतंत्रता के बाद देखने को मिलता है। आज़ादी के बाद सहकारिता सिद्धांतों पर आधारित सामुदायिक विकास योजनाओं की शुरुआत की गई। गरीबी-उन्मूलन तथा सामाजिक, आर्थिक विकास में सहकारी क्षेत्र की भूमिका दिनोंदिन बढ़ती चली गई। इसलिए पंचवर्षीय योजनाओं में सहकारिता को काफी महत्व दिया गया। सन् 1954 में भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा स्थापित ''अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति'' की रिपोर्ट में सहकारी समितियों द्वारा उपलब्ध कराए जाने वाले ऋण को ग्रामीण आर्थिक संरचना के सुदृढ़ीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण बताते हुए इसमें सरकार की भागीदारी की सिफारिश की गई। समिति की राष्ट्र की सहकारिता के प्रति प्रतिबद्धता के संबंध में राय थी कि यद्यपि ''सहकारिता असफल रही, किंतु इसे सफल होना ही है''। देश में 1950-51 में सभी प्रकार की सहकारी संस्थाओं की संख्या 1.81 लाख थी, जो 1997-98 में 4.53 लाख हो गई। इसी कालखंड में इन संस्थाओं के सदस्यों की संख्या 1.55 करोड़ से बढ़कर 20.45 करोड़ हो गई।

सहकारी गतिविधियों का विस्तार

सहकारी आंदोलन को सरकारी समर्थन प्राप्त हो जाने से अनेक सहकारी विकास निगमों का भी गठन किया गया जिनका मुख्य कार्य सहकारी समितियों को सुदृढ़ करना और विकसित करना था। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि कार्यों, प्रसंस्करण, भंडारण और कृषि उत्पादों के विपणन तथा उपभोक्ता वस्तुओं के आपूर्ति संबंधी कार्यों को विस्तार देना था। हथकरघा उद्योग, कुक्कुट पालन, मछली पालन तथा कमज़ोर वर्गों के विकास पर भी विशेष ध्यान दिया जाना सहकारिता की प्राथमिकता है। राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम(संशोधन) अधिनियम, 2002 पारित हो जाने के बाद ये कार्यक्षेत्र पशुधन, ग्रामीण उद्योग, हस्तशिल्प तथा अधिसूचित सेवाओं तक बढ़ गए। सहकारिता ने चीनी मिलों, प्रशीतन गृह तथा इफको व कृभको के उर्वरक को भी विस्तार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। गुजरात के अमूल दुग्ध उत्पादन ने सहकारी क्षेत्र में अपनी अग्रणी भूमिका बना रखी है। किसानों को ऋण, बीज, खाद, कीटनाशक दवाइयां, कृषि उपकरणों का वितरण, उत्पादों का प्रसंस्करण, भंडारण और विपणन, बीमार इकाइयों का पुनर्वास आदि सहकारी संस्थाओं के प्रमुख क्रियाकलापों में शामिल हैं। आपरेशन फ्लड सहकारिता की देन है। सहकारी साख (नाबार्ड), सहकारी विपणन (नैफेड), खाद एवं प्रसंस्करण सहकारिता (कृभको और इफको), दुग्ध सहकारिता (अमूल), महिला सहकारिता (एनएफआईसी), आदिवासी सहकारिता (ट्राइफेड), खाद्य सहकारिता (फिश कापफेड), श्रमिक सहकारिता (नेशनल फेडरेशन आफ लेबर कोआपरेटिव) और सहकारिता संगठन (एनसीडीसी तथा एनसीयूआई) ने सहकारिता को नये आयाम प्रदान किए हैं।

सहकारिता की स्थापना का मूल था कि एकाधिकार के बढ़ते प्रभाव पर लगाम लगाई जाए और आर्थिक गतिविधियों में सभी की सहभागिता सुनिश्चित की जाए। सहकारिता ने अनेक क्षेत्रों में अपने पैर जमाए जैसे - दैनिक वस्तुओं के विपणन में (उपभोक्ता सहकारिता), भूमि सुधार (कृषि और ग्रामीण सहकारिता), शहरीकरण और पुनर्निर्माण (आवास

और निर्माण सहकारिता), औद्योगिकीकरण (औद्योगिक सहकारिता), अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण (ऋण सहकारिता और सहकारी बैंक), तृतीय (टर्शरी) क्षेत्र का विकास (सेवा सहकारिता), लोक सेवाओं का विकेंद्रीकरण (सामाजिक सहकारिता)। अर्थात् सहकारिता अर्थव्यवस्था को व्यापक पैमाने पर संबल प्रदान करती रही है। इसकी प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं:

- यह रोज़गार, उत्पादन, बुनियादी ज़रूरतों की चीज़ों, बचत एवं उधार, आवास आदि आवश्यकताओं पर आधारित है।
- यह स्थानीयता को अपने प्रभाव में लेती है और उसका केंद्रबिंदु स्थानीय समुदाय का विकास करना होता है।
- यह आम नागरिकों पर आधारित है और उन्हें एक-दूसरे से जोड़कर उनकी समस्याओं के निवारण का हल तलाश करती है।
- इसका कार्यस्वरूप लोकतांत्रिक है तथा छोटे-छोटे संसाधनों को एकजुटता का स्वरूप प्रदान करती है।

सहकारी ऋण प्रणाली - बढ़ते आयाम

देश में बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से लेकर 1920 तक की अवधि में कृषि ऋण प्रदान करने के लिए सहकारी ऋण प्रणाली प्रमुख संस्थागत एजेंसी के रूप में उभरी। 1935 में बाम्बे कोआपरेटिव सोसायटी अधिनियम, 1934 में मद्रास कोआपरेटिव सोसायटी अधिनियम, 1935 में बिहार और उड़ीसा कोआपरेटिव सोसायटी अधिनियम, 1940 में बंगाल कोआपरेटिव सोसायटी अधिनियम तथा 1949 में आसाम कोआपरेटिव सोसायटी अधिनियम पारित हुए, जिसने सहकारी ऋण संस्थाओं को क़ानूनी सुदृढ़ता प्रदान की और इससे पूरे देश में सहकारी ऋण प्रणाली को संगठित करने की दिशा में गति प्राप्त हुई। वस्तुत:, स्वतंत्रता पूर्व सहकारी ऋण संस्थाओं की ज़मीन उतनी उर्वर नहीं थी जितनी कि आज़ादी के बाद हुई। सहकारी संस्थाओं के महत्व को आंकते हुए सबसे बड़ा और प्रभावी क़दम भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा उठाया गया। जहां केंद्रीय बैंक, वाणिज्य बैंकों द्वारा ऋण मुहैया कराने के विभिन्न चैनलों में सहजता सुनिश्चित करता है वहीं उसकी दृष्टि देश के दूर-दराज़ इलाक़ों तक भी जाती है और उसकी कार्यसूची में देश का वह भू-भाग भी होता है जो अर्थव्यवस्था के लिए मायने रखता है। भारतीय रिज़र्व बैंक ने 1954 में अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति की स्थापना की जिसकी तीन प्रमुख सिफारिशें एकीकृत योजना सिद्धांत पर आधारित थीं : i) विभिन्न स्तरों पर सरकार की सहभागिता हो ii) ऋण और अन्य आर्थिक गतिविधियों के बीच समन्वय हो, विशेष रूप से विपणन और प्रसंस्करण के क्षेत्र में तथा iii) सहकारी संस्थाओं का प्रबंधन पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित तथा कुशल कार्मिकों द्वारा किया जाए जो ग्रामीण आबादी की आवश्यकताओं को बेहतर तरीके से समझ सकें और पूरा कर सकें। समिति की सिफारिश थी कि प्राथमिक सहकारी समितियों का पुनर्गठन किया जाए और उन्हें सुदृढ़ किया जाए ताकि वे न केवल ऋण बल्कि ग्रामीण औद्योगिक ऋण की भी आपूर्ति कर सकें जिसमें शामिल होगी कृषि, सिंचाई, कुटीर उद्योग, पशुपालन, मत्स्य उद्योग, दुग्ध आपूर्ति, भंडारण, हथकरघा, कृषि मज़दूर संबंधी गतिविधियां। रिज़र्व बैंक की उक्त समिति की रिपोर्ट सहकारी ऋण व्यवस्था के संबंध में अनेक धरातल से जुड़ी अनेक वास्तविकताओं का पर्दाफाश करती है, इसीलिए इसे आई-ओपेनर (eye-opener) कहा जाता है। 1963 में कृषि पुनर्वित्त निगम की स्थापना की गई जिसे 1975 में कृषि पुनर्वित्त विकास निगम के नाम से पुन: गठित किया गया जो भूमि विकास बैंकों तथा भूमि बंधक बैंकों को वित्तीय सहायता प्रदान करता है। 1969 में अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण समीक्षा समिति ने सिफारिश की थी कि सहकारी बैंकों के साथ-साथ वाणिज्य बैंक भी कृषि ऋण उपलब्ध कराने में सकारात्मक भूमिका अदा करें। 1969 में 14 वाणिज्य बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया और उनकी सुधार नीतियों को अर्थव्यवस्था के प्राथमिकता क्षेत्र की आवश्यकताओं को पूरा करने की ओर मोड़ दिया गया। 1970 में भारतीय रिज़र्व बैंक ने एक योजना प्रारंभ की जिसके अंतर्गत वाणिज्य बैंकों द्वारा प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों तथा ज़िला मध्यवर्ती सहकारी बैंकों को वित्तपोषण की अनुमति दी गई। 1976 में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की शुरुआत की गई। ग्रामीण और कृषि क्षेत्र के कैनवास को बृहद् बनाते हुए सहकारी एवं ग्रामीण क्षेत्र के उत्थान में एक ऐतिहासिक क़दम उठाते हुए 1982 में नाबार्ड(राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक) की स्थापना की गई। प्रमुख रूप से देखा जाए तो सहकारी ऋण संरचना 3-टियर प्रणाली है जो इस प्रकार है:

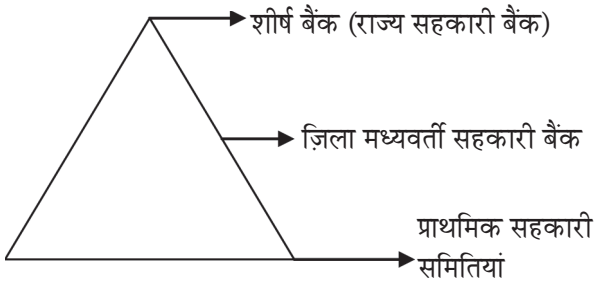

पंचवर्षीय योजनाओं के आईने में सहकारी संस्थाएं

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) में योजना आयोग ने सहकारी आंदोलन को ''जनतंत्र में सुनियोजित आर्थिक गतिविधियों का उपकरण'' से अभिहित किया। योजना में सस्ते, लचीले एवं तत्परता से दिए जाने वाले अल्पकालिक वित्त पर ज़ोर दिया गया। योजना में यह कहा गया कि सहकारी ऋण प्रणाली को और अधिक विकसित किया जाए ताकि पचास प्रतिशत ग्राम और तीस प्रतिशत ग्रामीण आबादी तीन वर्ष के भीतर प्राथमिक समितियों की परिधि में आ जाए। योजना में कृषि उत्पादन हेतु सहकारी संस्थाओं द्वारा 130 करोड़ रुपए के ऋण की आपूर्ति का लक्ष्य रखा गया। द्वितीय पंचवर्षीय योजना(1956-61) में एक ऐसे समाज की कल्पना की गई जो सामाजिकता के सिद्धातों पर आधारित हो। इस योजना में अखिल भारतीय ऋण सर्वेक्षण समिति की विशेष रूप से ऋण, विपणन और प्रसंस्करण संबंधी सिफारिशों को अमली जामा पहनाने का संकल्प किया गया। तृतीय पंचवर्षीय योजना(1961-66) में इस बात पर बल दिया गया कि कृषि ऋण आंदोलन को इतना तीव्र बनाया जाए कि योजना के अंत तक सभी ग्राम तथा साठ प्रतिशत कृषि आबादी इसके अंतर्गत आ जाए। योजना में 680 करोड़ रुपए के सहकारी ऋण का प्रावधान किया गया। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना(1969-74) में सहकारी संस्थाओं के स्थायित्वपूर्ण विकास को प्रमुखता दी गई और प्राथमिक ऋण समितियों को पुनर्गठित करने का प्रयास किया गया ताकि सहकारी समितियों और भूमि विकास बैंकों के वित्त लघु कृषकों तक पहुंच सकें। इसी दौरान भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा 1969 में अखिल भारतीय ऋण समीक्षा समिति की स्थापना की गई जिसका मकसद ग्रामीण क्षेत्र को ऋण की उपलब्धता पर गौर करना तथा कृषि वित्त संबंधी कर्यक्रमों को गहन बनाने के लिए उपाय सुझाने थे। पंचम पंचवर्षीय योजना(1974-79) में कृषि सहकारी संस्थाओं के नेटवर्क को सुदृढ़ता प्रदान करने का लक्ष्य था और उद्देश्य था कि ''सामाजिक न्याय के साथ विकास'' किया जाए। छठी पंचवर्षीय योजना(1980-85) में पुन: सहकारी संस्थाओं के समेकन पर तथा पेशेवराना रवैया विकसित करने को महत्व दिया गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना(1985-90) में यह उल्लेख किया गया कि यद्यपि सहकारी ऋण प्रदान करने में समग्र रूप से प्रगति हुई है किंतु ऋण की खराब वसूली और भारी मात्रा में बकाया राशियां चिंता का विषय बनी हुई हैं। योजना में यह सिफारिश की गई कि प्राथमिक कृषि ऋण समितियों को बहुविध अर्थक्षम इकाई के रूप में विकसित किया जाए, नीतियों और प्रक्रियाओं में सामंजस्य स्थापित किया जाए ताकि ऋण का प्रवाह कमज़ोर वर्गों को हो सके। आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) में सहकारिता आंदोलन को और अधिक स्वायत्तता प्रदान करने के उद्देश्य से इस बात पर बल दिया गया कि सहकारी संस्थाओं को स्वनियंत्रित, स्वविनियामक और आत्मनिर्भर बनाया जाए। योजना में इस बात पर भी ज़ोर दिया गया कि आर्थिक गतिविधियों को बढ़ाने एवं छोटे किसानों, श्रमिकों, कृषकों, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जन जाति तथा महिलाओं को रोज़गार के अवसर उपलब्ध कराने के प्रयोजन से सहकारी संस्थाओं की क्षमता में वृद्धि की जाए। नवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) में यह कहा गया कि सहकारी संस्थाओं के विकास का दायित्व राज्य सरकारों को सौंपा गया है और विभिन्न राज्यों ने चौधरी ब्रह्म प्रकाश समिति (1990) की सिफारिशों के आधार पर नौ राज्यों यथा आंध्र प्रदेश (1995), मध्य प्रदेश (1999), बिहार (1996), जम्मू और कश्मीर (1990), उड़ीसा (2001), कर्नाटक (1997), झारखंड (1996), छत्तीसगढ़ (1999) और उत्तराखंड (2003) ने सहकारिता अधिनियम पारित कर लिया है। दसवीं पंचवर्षीय योजना(2002-2007) में ग्रामीण क्षेत्र को संस्थागत स्रोतों के माध्यम से उत्पादन ऋण के रूप में वितरित करने के लिए 3,65,701 करोड़ रुपए और निवेश ऋण के लिए 3,75,869 करोड़ रुपए अर्थात् कुल मिलाकर 7,35,570 करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया था। सहकारी ऋण ढांचे को सुदृढ़ करने के लिए उचित नीतियां तैयार की जाएं। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-2012) में सहकारिता में सुधार लाने के लिए सहकारी संस्थाओं की सामान्य रूप से आर्थिक विकास में तथा विशेष रूप से कृषि अर्थव्यवस्था में स्थिति और भूमिका की समीक्षा की जाएगी। सहकारी संस्थाओं के असमान विकास के कारकों का पता लगाया जाएगा तथा कृषि सहकारिता में मानव संसाधन विकास

के उपाय सुझाए जाएंगे। प्राथमिक कृषि ऋण समितियों तथा भूमि विकास बैंकों के कर्ज़ की स्थिति एवं बकाया राशियों, वित्तीय स्थिति की मात्रा एवं वित्तीय हालत को प्रभावित करने वाले कारकों का पता लगाया जाएगा और सहकारी ऋण समितियों को अधिक कुशल बनाया जाएगा।

सहकारी बैंकिंग - विभिन्न स्तर

देश में सहकारी बैंकिंग के दो भाग हैं : पहला ग्रामीण सहकारी ऋण संस्थाएं और दूसरा शहरी सहकारी बैंक। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में 3-टियर प्रणाली की भूमिका इस प्रकार है:

1. प्राथमिक कृषि ऋण समितियां

प्राथमिक कृषि ऋण समितियां ऐसी सहकारी ऋण संस्थाएं हैं जो ग्रामीण क्षेत्रों में ज़मीनी स्तर से जुड़ी हुई हैं। इनका सीधा संपर्क व्यक्तियों तथा ग्राहकों से होता है। छोटे-छोटे गांवों, खेतिहर मज़दूरों, लघु कृषकों और गृहस्थों की पहुंच प्राथमिक कृषि ऋण समितियों तक ही सीमित होती है, इसलिए इन समितियों की सदस्यता अधिकांशत: कमज़ोर वर्ग से बनी होती है। ये समितियां छोटे-छोटे कर्ज देने के अलावा, सार्वजनिक खाद्यान्न वितरण प्रणाली तथा अन्य आवश्यक सामग्री की आपूर्ति में योगदान देती हैं। नैफ्सकॉब के अनुसार 62% प्राथमिक कृषि ऋण समितियां अर्थक्षम हैं जिसमें से 30% अत्यधिक अर्थक्षम हैं। नैफ्सकॉब के आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2008-09 में प्राथमिक कृषि ऋण समितियों की संख्या 95,633 थी और उनकी कुल सदस्यता 132,350 थी। देश की 70 करोड़ जनसंख्या लगभग 6 लाख से अधिक ग्रामों में निवास करती है। लगभग प्रत्येक 6 ग्रामों के लिए एक प्राथमिक कृषि ऋण समिति कार्य कर रही है। वाणिज्य बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की तुलना में इन समितियों में ग्राहकों की संख्या 50 प्रतिशत अधिक है। महाराष्ट्र तथा केरल राज्यों में इनकी संख्या अन्य राज्यों की तुलना में अधिक है। प्राथमिक कृषि ऋण समितियों के वित्तीय कार्यनिष्पादन को सारणी-I में देखा जा सकता है।

प्राथमिक कृषि ऋण समितियों की संख्या गत वर्षों की तुलना में वर्ष 2008-09(95,683) में कम हुई है किंतु कुल सदस्यता संख्या में वर्ष 2008-09 (1,32,350) में पिछले वर्षों की तुलना में वृद्धि हुई है।

वित्तीय गतिविधियां : प्राथमिक कृषि ऋण समितियों की कुल जमाराशि वर्ष 2000-01 में 13,481 करोड़ रुपए थी जो वर्ष 2008-09 में बढ़कर 26,245 करोड़ रुपए हो गई। वहीं कुल आरक्षित निधि वर्ष 2000-01 में 1710 करोड़ रुपए थी जो वर्ष 2008-09 में 4,901 करोड़ रुपए तक पहुंच गई। समितियों द्वारा कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र को दिया गया कुल

सारणी–I

प्राथमिक कृषि ऋण समितियों के वित्तीय निष्पादन से संबंधित ब्यौरे

ब्यौरा	प्राथमिक कृषि ऋण समितियां			
	1950-51	2000-01	2002-03	2008-09
कुल संख्या	1,81,000	98,843	1,12,309	95,633
सदस्यों की संख्या	1,37,000	99,918	1,23,552	1,32,350
उधारकर्ताओं की संख्या	–	46,533	63,880	46,219
कुल जमाराशियां (लाख रुपये में)	–	13,48,107	19,12,023	26,24,538
कुल उधार(लाख रुपये)	–	25,88,966	30,27,791	48,93,844
कार्यशील पूंजी(करोड़ रुपये)	275.35	5386.74	6114.24	9458.48
कुल प्रदत्त ऋण(लाख रुपये)	–	25,69,831	33,99,586	58,78,674
स्वाधिकृत निधि(लाख रुपये)	–	5,59,375	8,19,798	11,80,582
कुल कर्मचारी	–	2,07,453	2,61,463	2,22,173

स्रोत : नैफ्सकॉब

ऋण वर्ष 2000-01 में 25,698 करोड़ रुपए था जिसमें वर्ष 2008-09 तक दो गुने से अधिक वृद्धि दर्ज की गई और वह बढ़कर 58,786 करोड़ रुपए हो गया। समितियों की अधिकांश संख्या पूर्वी(20.97%) तथा पश्चिमी (30.66%) क्षेत्रों में पाई जाती है। समितियों के वित्तीय संकेतकों को सारणी-II में स्पष्ट किया गया है।

2. ज़िला मध्यवर्ती सहकारी बैंक

ज़िला मध्यवर्ती सहकारी बैंक एक फेडरल सोसायटी है जो ज़िले की सभी प्राथमिक समितियों की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करता है। यह राज्य सहकारी बैंक तथा प्राथमिक सहकारी समितियों के बीच संपर्क माध्यम का कार्य करता है। कृषि ऋण समितियों को उत्पादन, विपणन तथा आपूर्ति प्रयोजनों हेतु ऋण मुहैया कराना एवं समितियों के मध्य राशियों की कमी एवं बेशी के बीच संतुलन बनाए रखने का कार्य करता है। ज़िले में सहकारी गतिविधियों को सुदृढ़ता प्रदान करना एवं अपने अधिकार क्षेत्र में मार्गदर्शक के रूप में कार्य करना इसका प्रमुख उद्देश्य है। ज़िला मध्यवर्ती सहकारी बैंकों की

सारणी–II

प्राथमिक कृषि ऋण समितियां–वित्तीय संकेतक

(राशि करोड़ रुपये में)

सहकारिता वर्ष	कुल आरक्षित निधियां	कुल जमाराशियां	कुल जारी ऋण
1999-00	1,705	12,459	23,662
2000-01	1,710	13,481	25,698
2001-02	2,466	14,846	30,770
2002-03	3,245	19,120	33,996
2003-04	3,231	18,143	35,119
2004-05	3,626	18,976	39,212
2005-06	3,648	19,561	42,920
2006-07	4,900	23,484	49,613
2007-08	4,387	25,449	57,642
2008-09	4,901	26,243	58,686

प्रगति एवं आर्थिक विकास में योगदान की स्थिति सारणी–III से परिलक्षित होती है:

सारणी–III

ज़िला मध्यवर्ती सहकारी बैंकों की प्रगति एवं वित्तीय निष्पादन का ब्यौरा

ब्यौरा	1950-51	2000-01	2008-09
ज़िला मध्यवर्ती सहकारी बैंकों की संख्या	509	370	373
कुल सदस्य - सहकारी समितियां - व्यक्ति	1,12000	 5,65,672 14,20,698	 6,97,346 28,31,456
कुल जमाराशियां (लाख रुपये)	3,823	61,81,320	1,23,72,182
कुल उधार (लाख रुपये.)	1,207	16,56,668	28,47,764
कुल प्रदत्त ऋण(लाख रुपये)	9,868	55,78,039	88,02,869
कुल निवेश (लाख रुपये)	2,380	24,47,805	61,04,124
स्वाधिकृत निधि (लाख रुपये).	981	3,01,578	6,07,141
कुल कार्यालयों की संख्या	–	12,787	13,233
कुल कर्मचारियों की संख्या		1,13,012	89,259

स्रोत : नैफ्सकॉब

ज़िला मध्यवर्ती सहकारी बैंकों की प्रगति

यद्यपि ज़िला मध्यवर्ती सहकारी बैंकों की संख्या में वृद्धि निराशाजनक रही है किंतु समग्र कार्यनिष्पादन में सुधार हुआ है। कुल 20 राज्यों में ज़िला मध्यवर्ती सहकारी बैंकों की संख्या वर्ष 2008-09 में 13,233 थी जिनमें से 3,677 केवल महाराष्ट्र में हैं, 1,363 उत्तर प्रदेश में, 1,173 गुजरात में, 862 मध्यप्रदेश, 770 पंजाब, 732 तमिलनाडु, 662 केरल, 806 हरियाणा, 589 कर्नाटक, 565 आंध्र प्रदेश, 428 राजस्थान, 331 उड़ीसा, 311 बिहार, 274 पश्चिम बंगाल, 220 उतराखंड, 220 छत्तीसगढ़, 184 हिमाचल प्रदेश, 126 जम्मू और कश्मीर, 120 झारखंड और 18 असम में हैं। ज़िला मध्यवर्ती सहकारी बैंकों के ऋणों में पिछले दस वर्षों में जहां डेढ़ गुना वृद्धि हुई है वहीं निवेश लगभग ढाई गुना बढ़ा है। इन बैंकों के कुल 13,233 कार्यालयों में 89,259 लोगों को रोज़गार प्रदान किया गया है।

3. राज्य सहकारी बैंक

ये बैंक राज्य में सहकारिता के लीडर हैं। राज्य सहकारी बैंक, जिला मध्यवर्ती सहकारी बैंकों को वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं। 31 मार्च, 2009 के अंत तक राज्य सहकारी बैंकों की कुल संख्या 31 थी और उनके कुल कार्यालयों की संख्या एक दशक पूर्व 867 थी जो वर्ष 2008-09 में बढ़कर 992 हो गई। सामान्यतया राज्य सहकारी बैंक दीर्घकालीन ऋण आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। राज्य सहकारी बैंकों की वित्तीय स्थिति एवं प्रगति सारणी V में स्पष्टत: देखी जा सकती है:

सारणी–IV

ज़िला मध्यवर्ती सहकारी बैंक–वित्तीय संकेतक

(करोड़ रुपये में)

सहकारिता वर्ष	कुल जमाराशियां	कुल निवेश	कुल प्रदत्त ऋण
1999-00	53827	21750	41270
2000-01	62070	24478	45951
2001-02	66797	28320	51733
2002-03	72394	31139	49776
2003-04	76885	35677	48900
2004-05	80494	34783	55212
2005-06	86652	37127	60418
2006-07	92181	40791	76704
2007-08	105994	48247	87229
2008-09	14507	61041	88029

स्रोत : नैफ्सकॉब

सारणी–V

राज्य सहकारी बैंक - प्रगति एक नज़र में

ब्यौरा	1999-2000	2008-2009
राज्य सहकारी बैंकों की संख्या	29	31
कुल सदस्यता	1,36,856	2,00,772
कुल जमाराशियां (लाख रुपये)	29,27,892	71,31,507
कुल उधार (लाख रुपये)	10,93,544	21,58,221
कुल प्रदत्त ऋण (लाख रुपये)	39,89,345	51,86,621
कुल निवेश (लाख रुपये)	12,04,339	40,35,004
स्वाधिकृत निधि (लाख रुपये)	–	10,15,443
कार्यशील पूंजी (लाख रुपये)	46,41,047	1,05,90,620
कार्यालयों की कुल संख्या	867	992
कर्मचारियों की कुल संख्या	16,119	14,635

वर्ष 2008-09 के दौरान 601 शाखाओं ने लाभ कमाया और 263 शाखाओं ने हानि उठाई। वर्ष 2008-09 में संचित लाभ 3,28,675 लाख रुपये था जबकि हानि 29,705 लाख रुपए थी। निवेश में राज्य सहकारी बैंकों ने वृद्धि दर्शाई है। इनके निवेश सरकारी प्रतिभूतियों, भूमि विकास बैंकों के डिबेंचरों, अन्य न्यासी प्रतिभूतियों, मीयादी जमाराशियों तथा अन्य निवेश क्षेत्रों में किए गए हैं जो वर्ष 1999-2000 के 12,04,339 लाख रुपए की तुलना में वर्ष 2008-09 में

सारणी–VI
राज्य सहकारी बैंक - वित्तीय संकेतक

(करोड़ रुपये में)

सहकारिता वर्ष	कुल जमाराशियां	कुल उधार	कुल निवेश	कुल प्रदत्त ऋण
1999-00	2927892	10935	12043	39893
2000-01	3261295	11983	13040	33613
2001-02	3619027	11358	14344	34051
2002-03	3911178	11985	16485	35052
2003-04	4286301	13521	18477	34864
2004-05	4406765	14671	21328	44325
2005-06	4767221	16872	22750	48804
2006-07	4846961	22150	23970	47069
2007-08	5628692	21606	26885	53314
2008-09	7131507	21582	40350	51866

स्रोत : नैफ्सकॉब

40,35,004 लाख रुपए थे। लिए गए उधार में वर्ष 2007-08(21,60,638 लाख रु.) की तुलना में वर्ष 2008-09 में कमी हुई है जो 21,58,221 लाख रुपए था। बैंक की समग्र वसूली वर्ष 2007-08 में 26,33,473 लाख रुपए थी जो वर्ष 2008-09 में बढ़कर 36,17,093 लाख रुपए हो गई। राज्य सहकारी बैंकों के कार्यालयों की वर्ष 2008-09 में सर्वाधिक संख्या हिमाचल प्रदेश में 197 थी किंतु सदस्यता के हिसाब से सर्वाधिक सदस्यता असम राज्य में 72,475 थी, राज्य सहकारी बैंकों का वर्ष 2008-09 में कृषि क्षेत्र को कुल अल्पावधि ऋण 26,47,386 करोड़ रुपए था जबकि अल्पावधि कृषेतर ऋण 16,33,232 करोड़ रुपए था। वर्ष 2008-09 में कृषि क्षेत्र को दिया गया मध्यावधि कुल ऋण 85,182 लाख रुपए और कृषेतर मध्यावधि ऋण एवं अग्रिम 51,86,621 लाख रुपए था। राज्य सहकारी बैंकों ने वर्ष 2008-09 में कुल 81,22,629 किसान क्रेडिट कार्ड जारी किए और उन पर कुल 36,22,529.21 लाख रुपए का ऋण प्रदान किया।

4. शहरी सहकारी बैंक

शहरी सहकारी बैंक, शहरी क्षेत्र में कार्य करते हैं। शहरी सहकारी बैंकों की संरचना एकस्तरीय है जिसमें अनुसूचित एवं गैर-अनुसूचित शहरी सहकारी बैंक आते हैं। 1960 के आखिरी दौर में लघु उद्योगों के संवर्धन को लेकर काफी बहस चल रही थी और इस संदर्भ में शहरी सहकारी बैंकों को महत्वपूर्ण कारक पाया गया। 1979 में माधवदास समिति ने शहरी सहकारी बैंकों की भूमिका का विस्तार से मूल्यांकन किया और उसकी भावी भूमिका के लिए एक रोडमैप तैयार किया। हाटे समिति ने 1981 में इन बैंकों की अधिशेष राशियों के बेहतर इस्तेमाल के लिए सीआरआर और एसएलआर के रूप में उनकी दर को चरणबद्ध रूप से वाणिज्य बैंकों के समान लाने की सिफारिश की। मराठे समिति(1992) ने संभाव्यता नियमों को पुन: परिभाषित किया तथा माधवराव समिति(1999) ने समेकन प्रक्रिया, प्रोफेशनल मानक स्थापित करने पर ज़ोर दिया। देश में मार्च, 2009 के अंत तक शहरी सहकारी बैंकों की संख्या 1721 थी जिनमें से 53 अनुसूचित और 1668 अननुसूचित शहरी सहकारी बैंक थे। शहरी सहकारी बैंकों की वर्ष 2008-09 में कुल आस्तियों की वृद्धि दर में कमी हुई है जो वर्ष 2007-08 के 11.1 प्रतिशत से घटकर वर्ष 2008-09 में 9.5 प्रतिशत हो गई। वर्ष 2008-09 के दौरान ऋण और अग्रिम में 8.3 प्रतिशत

की वृद्धि हुई और निवेश 12.8 प्रतिशत की दर से बढ़ा है। जमाराशियों में 8 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है। प्राथमिक शहरी सहकारी बैंकों के पास जमाराशियों का लगभग 4.4 प्रतिशत तथा बैंकिंग प्रणाली के अग्रिमों का 3.9 प्रतिशत था और 7.1 मिलियन उधारकर्ता और 50 मिलियन से अधिक जमाकर्ता हैं। अधिकांश शहरी सहकारी बैंक छोटे से लेकर मध्यम आकार के हैं। मार्च, 2009 के अंत तक 1721 शहरी सहकारी बैंकों की कुल जमाराशियां 1,58,733 करोड़ रुपए थी। शहरी सहकारी बैंक से संबंधित प्रमुख वित्तीय संकेतकों की स्थिति इस प्रकार है:

पिछले कई वर्षों से वित्तीय समावेशन पर विशेष ज़ोर दिए जाने के फलस्वरूप सहकारी बैंकिंग ने नया महत्व प्राप्त कर लिया है। सहकारी संस्थाओं के संबंध में समितियों आदि की एक पूरी श्रृंखला है जो यह दर्शाती है कि सहकारी क्षेत्र के विकास के प्रति निरंतर प्रयास किए जा रहे हैं। हाल के वर्षों में ग्रामीण सहकारी समितियों की समस्याओं की समीक्षा करने के लिए वर्ष 2004 में वैद्यनाथन समिति (अध्यक्ष: प्रो.ए. वैद्यनाथन) का गठन किया गया और भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा मार्च, 2005 में शहरी सहकारी बैंकों के संबंध में विज़न दस्तावेज़ ने भारतीय सहकारी बैंकिंग ढांचे को पुन: नया

सारणी–VII

शहरी सहकारी बैंकों की वित्तीय स्थिति

(करोड़ रुपये)

	शहरी सहकारी बैंकों की संख्या	आस्तियां/देयताएं	जमाराशियां	निवेश	ऋण तथा अग्रिम	कुल आय	कुल व्यय
मार्च, 2007 के अंत में	1813	1,59,851	1,20,983	47,316	78,660	–	–
मार्च, 2009 के अंत में	1721	1,96,395	1,58,733	64,171	97,918	18,952	15,402

स्रोत: भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति और प्रगति संबंधी रिपोर्ट 2006-07,2008-09 भा.रि.बैंक

शहरी सहकारी बैंकों ने प्राथमिकता क्षेत्र को दिए गए कुल ऋण का 56.4 प्रतिशत(55,248 करोड़ रुपये) प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को तथा 14.9 प्रतिशत (14,573 करोड़ रुपये) कमजोर वर्गों को वितरित किया था। निवेश के अंतर्गत केंद्र सरकार की प्रतिभूतियों, राज्य सरकार की प्रतिभूतियों एवं अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों में वर्ष 2009 के अंत में क्रमश: 36,205 करोड़ रुपए, 4,564 करोड़ रुपए तथा 819 करोड़ रुपए निवेश किए गए थे। प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों में दिए गए ऋणों का विस्तार कृषि और उससे संबंधित गतिविधियों, कुटीर एवं लघु उद्योग, सड़क, परिवहन परिचालक, निजी खुदरा व्यापार, छोटे कारोबारी उद्यम, स्वनियोजित व्यक्तियों को ऋण, शैक्षिक, आवास, उपभोक्ता ऋण तक रहा है। शहरी सहकारी बैंकों का विकास राज्यों में समान रूप से नहीं हुआ है। अधिकांश बैंक पांच राज्यों यथा- आंध्र प्रदेश(114), गुजरात(260), कर्नाटक(273), महाराष्ट्र, गोवा सहित(583) तथा तमिलनाडु, पांडिचेरी सहित (130) एवं शेष अन्य 21 राज्यों में स्थित हैं। 28 राज्यों में 1721 शहरी सहकारी बैंकों की कुल 7,522 शाखाएं, 336 ज़िलों में कार्य कर रही थीं।

बनाने के लिए व्यवहार्य और कार्यान्वयन योग्य व्यवस्थाओं के साथ एक नई संरचना उपलब्ध कराई है। सहकारी संस्थाओं के संबंध में गठित पाटिल समिति (अध्यक्ष: शिवाजीराव जी. पाटिल) ने मई 2009 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी है। समिति ने उल्लेख किया है कि सहकारी संस्थाओं के पास अपार अवसर उपलब्ध हैं क्योंकि उनकी विशिष्ट पहचान है, उनके पास सामाजिक और आर्थिक दोनों उद्देश्य हैं, वे सामाजिक आदर्शों और समुदायों पर आधारित हैं, उनकी गतिविधियां जन-उन्मुख हैं और उनका सहकारिता आंदोलन में नेटवर्क लिंकेज व्यापक है। उत्कृष्ट कार्य प्रतिमानों के अनुसार, सहकारिता वह मार्ग प्रशस्त करती है जो हम स्वतंत्रता, समानता, सुरक्षा और मानवीय प्रतिष्ठा के रूप में चाहते हैं। सहकारिता, सामूहिकता एवं प्रजातांत्रिक भावना को क़ायम रखने का सर्वोत्तम चैनल है। हमारी अर्थव्यवस्था के भावी मार्ग को तय करने तथा वित्तीय समावेशन के स्वप्न को साकार करने में सहकारी संस्थाओं की भूमिका महत्वपूर्ण रहेगी।

आर्थिक विकास में प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों की भूमिका

● डॉ. भागचन्द्र जैन*

सहकारिता एक ऐसा विशाल जन आंदोलन है, जिसमें अपने सदस्यों के विकास तथा कल्याण के लिये समर्पण की भावना होती है। कृषि, दुग्ध, मत्स्य, सिंचाई, आवास, शक्कर और उर्वरक उत्पादन, हथकरघा, कुटीर उद्योगों में सहकारिता ने महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में विश्व का सबसे बड़ा सहकारी नेटवर्क बिछा हुआ है। इसे पंचवर्षीय योजनाओं में योजनाबद्ध आर्थिक विकास का अंग माना गया है। कृषि, उद्योग, व्यापार आदि के विकास का साधन सहकारिता मानी गई है। अन्तरराष्ट्रीय सहकारी सम्मेलन, मेनचेस्टर, (1995) में विश्वमान्य सहकारी सिद्धांतों पर सहमति व्यक्त की गई थी, ये सिद्धांत हैं :

- **स्वैच्छिक व खुली सदस्यता**
- **लोकतांत्रिक सदस्य नियंत्रण**
- **आर्थिक भागीदारी**
- **स्वायत्तता और स्वतंत्रता**
- **शिक्षा, प्रशिक्षण एवं सूचना**
- **परस्पर सहयोग और**
- **समुदाय के प्रति निष्ठा**

सामाजिक और आर्थिक विकास सहकारिता का मूल उद्देश्य है। सहयोग और स्वावलम्बन की पर्याय बन चुकी सहकारिता ऐसा शब्द है, जिसके पांच अक्षरों 'स' 'ह' 'का' 'रि' 'ता' का अर्थ इस प्रकार लगाया जा सकता है :

(स) - **सहयोग, सत्य, सदाचार**

(ह) - **हर सिद्धि**

(का) - **कार्य कुशलता, कामना रहित**

(रि) - **रिद्धि सिद्धि**

(ता) - **तारण**

सहकारी समिति नैतिक मूल्यों पर आधारित होती है, जो सहकारिता के सिद्धांतों पर आगे बढ़ती है। सहकारी साख समितियों के कारण ग्रामीणों-किसानों को साहूकारों के चंगुल से छुटकारा मिल पाया है। सहकारी समिति के नेटवर्क से सदस्यों और उनके परिवार को संरक्षण मिलता है।

सहकारी समिति नैतिक मूल्यों पर आधारित होती है, जो सहकारिता के सिद्धांतों पर आगे बढ़ती है। सहकारी साख समितियों के कारण ग्रामीणों-किसानों को साहूकारों के चंगुल से छुटकारा मिल पाया है। सहकारी समिति के नेटवर्क से सदस्यों और उनके परिवार को संरक्षण मिलता है।

सहकारिता देश का सबसे बड़ा आंदोलन बन गया है, यह विभिन्न क्षेत्रों में सफल हुई है जिसके अंतर्गत भारत के सभी गांव आ गये हैं। कृषि साख की पूर्ति में सहकारिता का योगदान 38 प्रतिशत आंका गया है। भारत में 5.80 लाख सहकारी समितियां कार्य कर रहीं है, जिनके 24.2 करोड़ सदस्य हैं। सहकारी साख की पूर्ति में 30 राज्य सहकारी बैंक, 19 राज्य सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक, 368 जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक और 1.60 लाख कृषि साख सहकारी समितियां योगदान दे रहीं है। सहकारिता से 12 लाख व्यक्तियों को सीधे रूप से रोजगार मिला हुआ है, जबकि 1.54 करोड़ व्यक्ति सहकारिता के माध्यम से स्वरोजगार से जुड़े हुये हैं। इसके अलावा विपणन व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिये 10,710 प्राथमिक विपणन सहकारी समितियां कार्यरत हैं, जिनके द्वारा 4391.2 करोड़ रुपये के कृषि उत्पादों का विपणन

* सह प्राध्यापक (कृषि अर्थशास्त्र), प्रचार अधिकारी, इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, कृषि महाविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)

किया गया है। किसान, कारीगर, पशुपालक, कुटीर उद्योग, व्यापारी, बेरोजगार और निर्धन व्यक्तियों के लिये सहकारिता ने सहयोग किया है। गुजरात में 'अमूल' घी, पिज्जा, पनीर और अमूल मिठाई ने धूम मचायी है। गुजरात सहकारी दुग्ध विपणन संघ के उत्पाद 'धारा हेल्थ रिफायण्ड आयल' और धारा रिफायण्ड वनस्पति भी काफी लोकप्रिय हैं। मध्यप्रदेश में 'स्नेह' महाराष्ट्र में 'गोकुल और विकास' दुग्ध उत्पादों की अपनी अलग पहचान है। महाराष्ट्र में शक्कर उत्पादन सहकारिता का आदर्श क्षेत्र माना जाता है।

अर्थव्यवस्था और सामाजिक विकास के लिये सहकारिता को तीसरे स्तम्भ के रूप में मान्यता मिली है। कृषि क्षेत्र में सहकारिता की सक्रिय भागीदारी रही है। हरित क्रांति और श्वेत क्रांति से हम न केवल खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्म निर्भर हुये हैं अपितु विश्व में दुग्ध उत्पादन में पहले क्रमांक पर पहुंचे हैं।

सहकारी समिति क्या है ?

राज्य सहकारी समिति नियम के अंतर्गत सहकारी समिति का गठन किया जाता है, जिसका कार्यक्षेत्र एक गांव या कुछ गांवों का समूह होता है। सामान्य आम सभा में उप नियमों पर सहमति व्यक्त कर सहकारी समिति की स्थापना की जाती है। सहकारी समिति का पंजीयन उप पंजीयक / सहायक पंजीयक, सहकारी संस्थाएं के यहां होता हैं। सहकारी समिति के प्रबंधन हेतु प्रबन्ध कारिणी समिति गठित / निर्वाचित होती है, जिसमें अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा विभिन्न सहकारी संस्थाओं जैसे जिला सहकारी संघ, जिला सहकारी विपणन संघ, जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक, जिला सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक आदि के लिये प्रतिनिधि मनोनीत / निर्वाचित होते हैं। समिति के अभिलेख तैयार करने के लिये एक प्रबंधक की नियुक्ति की जाती है।

सहकारी समिति मुख्यत: दो प्रकार की होती है :

(अ) सहकारी साख समिति

(ब) सहकारी गैर साख समिति

सहकारी समिति की सदस्यता

प्राथमिक कृषि सहकारी समिति की सदस्यता हेतु भारत का वह नागरिक पात्र व्यक्ति होता है, जिसकी उम्र 18 वर्ष या उससे अधिक हो, जिसका निवास समिति के कार्यक्षेत्र में हो। सदस्य बनने के लिये सदस्यता आवेदन के साथ प्रवेश शुल्क तथा अंशनिधि (Share Money) जमा करना अनिवार्य है। सहकारी समिति में 11 से अधिक सदस्यों का होना आवश्यक है।

ग्रामीण विकास के आधार स्तम्भ

↓	↓	↓
ग्राम पंचायत	सहकारी समिति	पाठशाला
↓	↓	↓
राजनैतिक	आर्थिक	शैक्षणिक
जरूरतों की पूर्ति	जरूरतों की पूर्ति	जरूरतों की पूर्ति

सदस्यों के दायित्व

- आम सभा में शामिल होना
- सहकारिता के माध्यम से विपणन व्यवसाय और लेन देन करना
- सहकारी समिति से प्राप्त रसीदों, वाउचरों को सुरक्षित रखना
- सभी प्रकार के भुगतान की रसीद प्राप्त करना
- प्रबंधकारिणी समिति में ईमानदार, समर्पित, कठिन परिश्रमी सदस्यों को चुनना

सहकारी समितियों के प्रकार

1. सहकारी साख समिति

- प्राथमिक कृषि सहकारी समिति Primary Agricultural Cooperative Society (PACS)
- बृहताकार आदिवासी बहुउद्देशीय समिति Large - sized Adivasi-Purpose Society (LAMPS)
- कृषक सेवा समिति Farmers Service Society (FSS)
- प्राथमिक सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक Primary Urban Cooperative Agricultural and Rural Development Bank
- प्राथमिक शहरी सहकारी बैंक Primary Urban Cooperative Bank
- कर्मचारी साख समिति Empoyees Credit Society

2. सहकारी गैर साख समिति

- विपणन सहकारिता
- उपभोक्ता सहकारिता
- छात्र सहकारिता
- कृषि प्रसंस्करण सहकारिता
- दुग्ध सहकारिता
- महिला सहकारिता
- गृह निर्माण सहकारिता
- कृषि सहकारिता
- सिंचाई सहकारिता
- विद्युत सहकारिता
- औद्योगिक सहकारिता
- बुनकर सहकारिता
- मत्स्य सहकारिता
- कुक्कुट सहकारिता
- श्रम सहकारिता
- वन श्रमिक सहकारिता
- परिवहन सहकारिता
- सहकारी शक्कर मिल
- वृक्ष उत्पादक सहकारिता
- औषधालय सहकारिता

सदस्यों के अधिकार

- सहकारी समिति द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं को प्राप्त करना
- सभी प्रकार के नियमों, प्रावधानों, उप नियमों का अध्ययन करना, उन्हें जानना
- सहकारी समिति के वार्षिक प्रतिवेदन और अंकेक्षण प्रतिवेदन का अवलोकन करना
- नियुक्त कर्मचारियों से प्रश्न पूछकर शंकाओं का समाधान करना
- प्रबंधकारिणी समिति में चूककर्ता सदस्य (Defaulter) को न चुनना
- सहकारी समिति से दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतियां निशुल्क प्राप्त करना
- निसंकोच विचार व्यक्त करना, सुझाव देना

सहकारी समिति के अभिलेख

- सदस्यता पंजी, रोकड़ बही, सहकारी पद मुद्रा
- नगद सुरक्षा पेटी, धनादेश / सदस्यों की पास बुक

- प्रत्येक सदस्य, जमाकर्ता, ऋणी का खाता
- सूचना पुस्तिका
- कार्यवाही पुस्तिका
- अंशधारियों की सूची की पंजी
- जमानतदारों की पूंजी
- अधिकतम साख सीमा (Maximum Credit Limit) की सदस्यता पंजी
- स्कंध पंजी
- रकम की रसीद (डुप्लीकेट प्रति के साथ)
- आगंतुक पंजी
- पंजीयक द्वारा निर्धारित या समिति की जरूरत के अनुसार अन्य कोई पंजी

सहकारी समिति में प्रभावी और पारदर्शी प्रबंधन होने से सदस्यों में वित्तीय सम्बन्धी आत्म विश्वास बना रहता है। इसलिये वित्तीय लेन-देन के सम्बन्ध में खाता पुस्तिका दिन-प्रतिदिन संधारित की जानी चाहिए।

ऋण प्राप्त करना

सहकारी समिति के सदस्यों को अल्पकालीन, मध्यकालीन, दीर्घकालीन ऋण की पात्रता होती है।

अल्पकालीन - सहकारी समिति के सदस्यों को साख सीमा के अंतर्गत निम्न औपचारिकताएं पूर्ण करने के बाद यह ऋण दिया जाता है :-

(1) सदस्य पर समिति या किसी भी बैंक का कालातीत ऋण शेष न हो

(2) सदस्य द्वारा उसके ऋण के अनुपात में समिति का अंश क्रय किया गया हो

- अल्पकालीन ऋण की अवधि 12 से 15 माह तक होती है, जिसे कृषि के अच्छे बीज, उर्वरक, सिंचाई, पौध संरक्षण आदि की व्यवस्था हेतु फसल प्रणाली के आधार पर दिया जाता है।
- सदस्य को ऋण उसकी वास्तविक जोत की भूमि के आधार पर दिया जाता है। कोई भी कृषक नियमानुसार एक ही सहकारी साख समिति का सदस्य हो सकता है, जहां वह स्थायी निवास करता है, परन्तु ऋण लेने की स्थिति में अन्य गांवों में उसकी स्वयं की जमीन का भी समावेश किया जायेगा अर्थात् उसके नाम पर कुल कृषि योग्य जमीन पर निर्धारित मान से एक ही समिति द्वारा भी ऋण वितरित किया जाता है।
- संयुक्त परिवार में रह रहे एक से अधिक खातेदारों को अपने स्वामित्व की भूमि पर ऋण लेने की पात्रता होती है। बशर्ते कि संयुक्त परिवार के सदस्य, एक दूसरे के हिस्सेदार न हों। संयुक्त परिवार में पिता, पुत्र, पत्नी, बहू, अविवाहित भाई और बहन को शामिल किया गया है।
- लघु कृषकों से आशय उन कृषकों से है जिनके पास स्वयं के नाम पर अधिकतम दो हेक्टेयर तक भूमि हो। भारतीय रिज़र्व बैंक के निर्देशों और पंजीयक के परिपत्रों के आधार पर लघु कृषकों को अधिकाधिक सदस्य बनाकर उन्हें ऋण देने का प्रावधान किया गया है।
- सहकारी साख समिति द्वारा किसानों को किसान क्रेडिट कार्ड के द्वारा भी ऋण वितरित किया जाता है।

मध्यकालीन

सहकारी साख समितियों द्वारा मध्यकालीन ऋण 3 से 7 वर्षों की अवधि के लिये सदस्यों को दिया जाता है, जिसमें बैल खरीदने, दुधारू पशु क्रय करने, तार फेंसिंग, कृषि उपकरण जैसे - थ्रेसर, विद्युत पम्प, डीजल पम्प खरीदने, कुआं निर्माण एवं कुआं मरम्मत हेतु ऋण दिया जाता है।

- कुआं एवं नलकूप आवेदन की स्वीकृति के लिये राष्ट्रीय

कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (NABARD) द्वारा निर्धारित दूरी से कम नहीं होना चाहिए।

(1) कुआं से कुआं के बीच की दूरी - 80 मीटर

(2) नलकूप से नलकूप के बीच की दूरी - 250 मीटर

(3) कुआं से नलकूप के बीच की दूरी - 225 मीटर

- कुआं निर्माण के साथ विद्युत / डीजल पम्प हेतु ऋण स्वीकृत किया जाता है, किन्तु कुआं निर्माण होने के बाद ही पम्प हेतु ऋण दिया जाता है।

- इसी प्रकार नलकूप के साथ सबमर्सिबल पम्प की स्वीकृति दी जा सकती है, किन्तु नलकूप सफल होने पर ही पम्प देने का प्रावधान किया गया है।

- कुआं निर्माण / मरम्मत / नलकूप हेतु ऋण पूर्ण दस्तावेज प्राप्त होने के बाद स्वीकृत किया जाता है, यह स्वीकृत ऋण किश्तों में दिया जाता है।

दीर्घकालीन

जनरेटर, पावर थ्रेसर, रीपर, ट्रैक्टर, पम्प, फुहारा (Sprinkler) छिड़काव सिंचाई (Drip Irrigation) आदि के लिये दीर्घकालीन ऋण दिया जाता है।

बढ़ते दायित्व

सहकारी साख समितियों के अधीन प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ पंचवर्षीय योजनाओं में सहकारी साख वितरण, उर्वरक-बीज वितरण जैसे सीमित कार्य थे, किन्तु पांचवी पंचवर्षीय योजना से सहकारी साख समितियों को नगद तथा वस्तु ऋण के अलावा सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public Distribution System), बचत बैंक (Saving Bank), कुटीर उद्योग (Cottage Industry), विद्युत बिल संग्रहण (Collection of Electricity bills) जैसे कार्य सौंपे गये हैं और साख तथा विपणन के सम्बन्ध (Linking) का स्वरूप भी व्यापक हुआ है, इन कार्यों को सम्पादित करने के लिये सहकारी साख समितियों के दायित्व और बढ़ गये हैं।

ऋणों की उपयोगिता - हमारे देश में ऋण की उपयोगिता पर ध्यान नहीं के बराबर दिया जा रहा है। कृषि का झुकाव बाजार की ओर हो गया है। विश्व व्यापीकरण के इस दौर में उन्नत कृषि तकनीक के साथ - साथ पूंजी की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। कृषि में पूंजी निवेश बढ़ाने के लिये सहकारिता की भूमिका महत्वपूर्ण होती जा रही है,क्योंकि -

- कृषि में साख एक इंजेक्शन का कार्य करती है।

- ऋण से कृषि विकास की गति तेज हो जाती है।

प्राथमिक कृषि सहकारी साख समितियों और जिला सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक की शाखाओं द्वारा किसानों को 'किसान क्रेडिट कार्ड' दिये जा रहे है, जिससे ऋण सुविधा अधिक प्रभावी होती जा रही है। सहकारी ऋण को अधिक उपयोगी बनाने के लिये अर्जित होने वाली आमदनी - खर्च की पहले से रूपरेखा बना लेनी चाहिये, जिसके आधार पर केवल लाभकारी फसलों की खेती की जाये तथा शुद्ध लाभ की गणना की जाये। ऋण का उपयोग निर्धारित उद्देश्य के लिये करना चाहिये। यदि उत्पादन बढ़ाने के उद्देश्य से ऋण लिया है तब उसका उपयोग उत्पादन कार्य में ही करना चाहिये, उपभोग में नही। ऋण की अदायगी समय पर होनी चाहिये। सही ढंग से ऋण का उपयोग करने पर विकास का सपना पूरा हो सकता है।

ग्रामीण विकास शहरी विकास के लिए नींव तो है ही परन्तु वह समग्र सामाजिक विकास का एक मुख्य आधार भी है।

आर्थिक विकास और सहकारी बैंक - एक पहलू

● डॉ. दामोदर खड़से*

आर्थिक रूप से पिछड़ेपन को दूर करने के प्रयास लंबे समय से चल रहे हैं। लेकिन, भारत में गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों की आर्थिक स्थिति में सुधार का संघर्ष अभी भी निरंतर जारी है। सरकारी और स्वयंसेवी संगठनों ने सहकारिता के आधार पर आर्थिक विकास को गति देने की कोशिश की है। देश की आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा अब भी गरीबी रेखा के नीचे जीने को मजबूर है। आज हम देखते हैं कि भारत का अन्नदाता किसान आत्महत्या करने पर मजबूर है। विदर्भ जैसे क्षेत्र में, जहाँ कपास के रूप में 'सफेद सोना' पैदा होता है, वहां के किसानों की आर्थिक स्थिति दयनीय है और वे गरीबी और ऋणग्रस्तता की विकराल समस्याओं में बुरी तरह घिर रहे हैं। ऐसे वंचित और उपेक्षित वर्ग को साहूकारों के चंगुल से छुड़ाकर बैंकों के करीब लाया जा सकता है। गांवों में सहकारी बैंक इन वंचित लोगों को आशा की नई किरण दिखा सकते हैं। साथ ही, शहरी क्षेत्र के जरूरतमंद लोगों तक भी सहकारी बैंक महत्त्वपूर्ण मदद पहुंचा सकते हैं।

विदर्भ जैसे क्षेत्र में, जहाँ कपास के रूप में 'सफेद सोना' पैदा होता है, वहां के किसानों की आर्थिक स्थिति दयनीय है और वे गरीबी और ऋणग्रस्तता की विकराल समस्याओं में बुरी तरह घिर रहे हैं। ऐसे वंचित और उपेक्षित वर्ग को साहूकारों के चंगुल से छुड़ाकर बैंकों के करीब लाया जा सकता है।

हमारे पड़ोसी देश बांग्लादेश के ग्रामीण बैंक ने यह जिम्मा लिया और जरूरतमंद लोगों के बीच सहकारिता के आधार पर नव-चेतना के साथ संभावना जगाई। नोबल पुरस्कार से सम्मानित डॉ. मोहम्मद युनूस ने गरीब, वंचित, उपेक्षित और विवश लोगों को बैंकों से जोड़कर, उन्हें स्वरोजगार से अवगत कराकर, आशा जगाकर एक चमत्कार किया है। भारत में भी सहकारी, ग्रामीण बैंकों के माध्यम से ऐसे प्रयास किये जा सकते हैं।

हमारे देश में पिछले सौ वर्षों से सहकारिता आंदोलन चल रहा है। ग्रामीण क्षेत्र में ऋण देने वाली यह सबसे पुरानी संस्था है। देश में बैंकों के राष्ट्रीयकरण से पहले सहकारिता के माध्यम से ही ग्रामीण क्षेत्र में ऋण-व्यवस्था की जाती रही। राष्ट्रीयकरण के बाद राष्ट्रीयकृत बैंकों की ग्रामीण शाखाएं खुली और ग्रामीण ऋण की व्यापकता के लिए क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक भी खोले गए। ग्रामीण रोजगार को विकसित करने में सहकारी बैंकौं ने भी विशेष भूमिका निभाई। किसानों और ग्रामीण कारीगरों को वित्तीय सहायता प्रदान करने में बैंकों की भूमिका उल्लेखनीय रही। ग्रामीण बैंकों की संख्या लगभग 15,400 तक पहुंच गई है। साथ ही, प्राथमिक कृषि ऋण समितियों की संख्या भी 95,000 तक पहुंच गई। ये समितियां किसानों को ऋण देने के साथ कृषि उत्पाद के संवितरण का कार्य भी करने लगीं।

ग्रामीण क्षेत्र के साथ ही शहरी सहकारी बैंकों की भूमिका भी आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण रही है। ग्रामीण और अर्धशहरी क्षेत्रों में ऋण आपूर्ति हेतु इन सहकारी बैंकों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। मध्यम और लघु आय वर्गों से जमा-संग्रहण कर छोटे उधारकर्ताओं तक वित्तीय सहायता भी सहजता से इन बैंकों ने पहुंचायी। 31 मार्च 2010 तक 1674 शहरी सहकारी बैंक थे। साथ ही देश में 82 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक और 401 ग्रामीण सहकारी बैंक थे। इनमें 31 राज्य सहकारी बैंक और 370 जिला सहकारी बैंकों का समावेश है।

शहरी सहकारी बैंकों की आस्तियाँ 2007-08 में 67,221 करोड़ रुपये थी, जो 2008-09 में बढ़कर 76,796 करोड़ रुपये हो गई। यह वृद्धि 14.2 प्रतिशत थी। जहां तक जमा-संग्रहण का प्रश्न है 2008-09 में यह राशि 58,617 करोड़ रुपये रही और इसमें पिछले वर्ष की तुलना में 16 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई। साथ ही, मार्च 2009 में अग्रिम की राशि

* बी 503-504, हाई ब्लिस, कैलास जीवन के पास, धायरी, पुणे

36,410 करोड़ रुपये तक पहुंच गई जो पिछले वर्ष की तुलना में 15.1 प्रतिशत अधिक रही। शुद्ध लाभ के रूप में इसी अवधि के दौरान बैंकों ने 894 करोड़ रुपये अर्जित किए और 36.1 प्रतिशत वृद्धि दर हासिल की। इस तरह शहरी सहकारी बैंकों ने इस अवधि के दौरान बेहतर कार्य निष्पादन किया। उल्लेखनीय है कि सभी बैंक लाभ में रहे। आंकड़े दर्शाते हैं कि सहकारी बैंकों ने अपनी प्रगति अवश्य दर्शायी है। 100 वर्षों की अपनी यात्रा में सहकारी संस्थाओं ने लगभग 70 प्रतिशत आबादी की आवश्यकताओं तक वित्तीय सहायता पहुंचाने की कोशिश की है। ऐसे लोगों तक यह सहायता बहाल की गई, जिन्हें दूसरी वित्तीय संस्थाओं ने बाहर रखा था। सामान्यजन और जरूरतमंद लोगों तक बुनियादी वित्तीय सहायता पहुंचाने में सहकारिता क्षेत्र ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। हमारी अर्थ-व्यवस्था ने गति पकड़ ली है, फिर भी बड़ी संख्या में लोग अभी भी वित्तीय समावेशन से वंचित है। पिछले 10 वर्षों में सरकार ने, गरीबों के लिए, कुल ऋण का 4 प्रतिशत लक्ष्य रखा था, जो केवल 1 प्रतिशत तक ही हासिल किया जा सका। आवश्यकता इस बात की है कि प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र को, छोटे उधारकर्ताओं और जरूरतमंदों को सहकारिता क्षेत्र की संस्थाओं द्वारा वित्तीय सहायता और तेजी से दी जाए।

विकसित देशों के साथ जब हम प्रति व्यक्ति आय की तुलना करते हैं, तब हमारे देश की गरीब जनसंख्या की आय की कल्पना भी कल्पनातीत लगती है।

विभिन्न देशों में प्रति व्यक्ति आय

देश	प्रति प्रति व्यक्ति आय
अमेरिका	43,740 डॉलर
इंग्लैड	37,600 डॉलर
स्विटजरलैंड	54,930 डॉलर
जापान	34,000 डॉलर
जर्मनी	22,000 डॉलर
इजरायल	12,500 डॉलर
भारत	470 डॉलर

दुनिया की तुलना में भारत गरीबी की जंजीरों में अब भी बुरी तरह जकड़ा हुआ है। इसमें भी ग्रामीण क्षेत्र और गरीबी रेखा के नीचे रह रहे लोगों की आय का क्या कहना! ऐसे में, विकास की गति को तेज करते समय यह ध्यान रखना बहुत आवश्यक है कि बैंकिंग सेवाओं से अब तक वंचित लोगों तक वित्तीय सेवाएं विशेष रूप से पहुंचाई जाएं। इसके लिए सहकारी बैंकों की भूमिका बहुत प्रभावी और विशिष्ट हो उठेगी। जिन्हें बैंकिंग की जानकारी नहीं है, उन तक योजनाएं पहुंचाकर, उन्हें साहूकारों के चंगुल से छुड़ाकर आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनाया जा सकता है। बैंकिंग सेवाओं तक जब वंचित व्यक्ति पहुंचेगा, तब हमारे देश के आर्थिक विकास को चहुंमुखी गति मिल सकेगी। इस दिशा में वित्तीय समावेशन एक महत्त्वपूर्ण मुहिम सिद्ध होगी।

हमारे देश की अर्थव्यवस्था ने गति पकड़ी है, यह उत्साहित करनेवाला समाचार है। कई क्षेत्रों में हमने दुनिया के विकसित देशों को टक्कर दी है। परंतु, यह भी सच है कि अमीर-गरीब, गांव-शहर के बीच खाई बढ़ती जा रही है। संतुलित और स्वस्थ समाज के विकास के लिए यह आवश्यक है कि इस खाई को पाट दिया जाए। भारतीय रिज़र्व बैंक के आंकड़ों के अनुसार शहरी क्षेत्र का 60 प्रतिशत हिस्सा बैंकिंग सेवाओं से युक्त है, वहीं गांवों का केवल 39 प्रतिशत भाग ही बैंकिंग सेवाओं का लाभ उठा सकता है। ग्रामीण क्षेत्र में 16,650 लोगों के लिए एक बैंक शाखा है जबकि शहरों में 13,619 लोगों के लिए एक शाखा है। हमारे देश में 100 वयस्क व्यक्तियों में 41 व्यक्तियों तक बैंकों की पहुंच नहीं है, जबकि इग्लैंड में केवल 6 प्रतिशत लोग ही बैंक-सेवाओं से वंचित हैं। अत: बैंकिंग सेवाओं को अधिकाधिक लोगों तक पहुंचने में अभी भी लंबी यात्रा करनी होगी। साथ ही, ग्रामीण क्षेत्रों और बैंकिंग सेवा से वंचितों तक पहुंचने के लिए विशेष प्रयास करने होंगे। चूंकि, सहकारिता क्षेत्र और बैंक, ग्रामीणों के बीच पहले से कार्यरत हैं, इसलिए उनकी भूमिका और महत्वपूर्ण हो उठती है।

सहकारिता से थाईलैंड ने हस्तकला, इंग्लैड ने आवास, माल्टा ने दुग्ध-क्षेत्र, साइप्रस ने फलों और न्यूजीलैंड ने कृषि क्षेत्र में जिस प्रकार उल्लेखनीय प्रगति हासिल की है, उसी तरह हमारे देश में सहकारिता पर आधारित प्रति व्यक्ति आय बढ़ाने के लिए प्रयास किए जाते हैं, तो आर्थिक-विकास चहुंमुखी हो सकेगा। छोटे किसानों, स्वरोजगार और फुटकर विक्रेता जैसे लोगों को सहकारी बैंकों से और अधिक सक्रियता से यदि वित्तीय सहायता दी जाती है, तो निश्चित ही आनेवाले समय में गरीबी रेखा से नीचे जानेवालों के जीवन-स्तर को बेहतर बनाया जा सकेगा। विकास संतुलित होने पर स्वस्थ समाज निरंतर स्वावलंबी होकर गतिशील रह सकता है।

कृषि एवं ग्रामीण विकास में सहकारी ऋण-संस्थाओं की भूमिका

● डॉ. राजीव कुमार सिन्हा*

वर्ष 1950-51 में ग्रामीण साख पर किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार - 'सहकारी साख संस्थाएं' उन दिनों कृषकों की आवश्यकताओं के मात्र 3.3 प्रतिशत भाग की पूर्ति कर सकती थी, जबकि साख की गैर-संस्थागत स्त्रोत (यानी मुख्य रूप से महाजन) किसानों की ऋण संबंधी आवश्यकताओं के 13 प्रतिशत भाग को पूरा करते थे। आज, लगभग 60 वर्षों के बाद सरकार एवम् भारतीय रिज़र्व बैंक (आर.बी.आई.) के कई महत्त्वाकांक्षी प्रयासों तथा सुदृढ़ीकरण के उपायों के फलस्वरूप कृषि तथा अन्य सम्बन्धित क्रिया-कलापों के लिए प्रदत्त कुल संस्थागत साख में 'सहकारी ऋणों का योगदान' (वर्ष 2008-09 के आँकड़ों के अनुसार) दूसरा (13.525प्रतिशत) है। ज्ञातव्य है कि भारत में (वर्ष 2009 की प्रथम तिमाही तक के उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार) कुल - 31 राज्य सहकारी बैंक, 369 जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक, 1,06,384 प्राथमिक कृषि साख सहकारी समितियाँ (पैक्स), 20 राज्य सहकारी कृषि तथा ग्रामीण विकास बैंक एवम् 696 प्राथमिक सहकारी कृषि तथा ग्रामीण विकास बैंक हैं। इतने बड़े पैमाने पर 'सहकारी साख-संस्थाओं' का जाल फैला होने के बावजूद 'कृषि साख' में इनकी अपेक्षाकृत निम्न भागीदारी निश्चय ही निराशाजनक है। परंतु, इसके लिए नि:संदेह रूप से इनके त्रि एवम् दो-स्तरीय साख-संरचनाओं के निदेशक मंडलों में शामिल सदस्यों में कुछ स्वलाभ हेतु प्रयासरत राजनैतिक प्रतिनिधियों की दमदार उपस्थिति एवम् सहकारिता के वास्तविक उद्देश्यों के प्रति कम समर्पित संचालन समिति के सदस्यों का रहना है। 'ग्रामीण सहकारी साख संस्थाओं' के अपेक्षाकृत कम कार्य परिणाम के अन्य आँकड़ाधारित विश्लेषणोपरान्त सटीक कारणों की भी समीक्षा की जा सकती है, परंतु; इसके पूर्व इनके 'आरम्भिक काल के परिस्थितिजन्य कार्य-परिणाम', 'ग्रामीण साख-संवितरण' में 'वाणिज्यिक बैंकों' द्वारा इन्हें मदद किये जाने की जरूरत तथा 'क्रमगत विकास' पर एक विहंगम अवलोकन विषय - वस्तु की माँग ही होगी। तेजी से हो रहे औद्योगीकरण, 'वैश्वीकरण' एवम् 'तकनीकी विकास' के इस दौर में भी भारत जैसे 'कृषि प्रधान' तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था वाले राष्ट्र में 'कृषि-क्षेत्र का विकास' तथा 'कृषि आधारित उद्योग-धंधों', 'प्रसंस्करण गतिविधियों' तथा 'ग्रामीण आधारसंरचनाओं' का सुदृढ़ीकरण एवम् विकास 'समग्र आर्थिक-सामाजिक तथा मानव-संसाधन विकास की पहली शर्त' होगी। इसके लिए वांछित साख-सुविधाओं की पूर्ति अकेले 'सहकारी संस्थाओं' द्वारा कदापि नहीं की जा सकती। इस महती जिम्मेदारी के निर्वहन में 'वाणिज्यिक बैंकों' तथा 'क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों' को भी आपस में बेहतर ताल-मेल स्थापित करते हुए उल्लेखनीय भागीदारी प्रदर्शित करनी होगी। इस परिप्रेक्ष्य में 'समग्र रूप में संस्थागत ग्रामीण साख' के 'उद्गम' तथा 'क्रमिक विकास' की संक्षिप्त चर्चा यहाँ प्रासंगिक ही होगी।

अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति (1954) के प्रतिवेदनानुसार 'सहकारिता असफल हो चुकी है, परंतु सहकारिता को अवश्य सफल होना चाहिए।' इस समिति की अनुशंसा के मद्देनजर, भारतीय रिज़र्व द्वारा 'सहकारी संस्थाओं' के सुदृढ़ीकरण के लिए विभिन्न उपाय किये गये।

'ग्रामीण साख : विकास परिदृश्य'

अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति (1954) के प्रतिवेदनानुसार 'सहकारिता असफल हो चुकी है, परंतु सहकारिता को अवश्य सफल होना चाहिए।' इस समिति की अनुशंसा के मद्देनजर, भारतीय रिज़र्व द्वारा 'सहकारी संस्थाओं' के सुदृढ़ीकरण के लिए विभिन्न उपाय किये गये। 'अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति (AIRCSC 1969)' ने ग्रामीण क्षेत्रों में वित्तीय सुविधाएँ उपलब्ध करवाने के लिए 'बहु-एजेंसी

* (रिसर्च एसोसिएट) एग्रो इकोनॉमिक रिसर्च सेंटर फॉर बिहार एण्ड झारखण्ड, भागलपुर

एप्रोच' की अनुशंसा की। भारत सरकार ने स्वीकार किया था कि सिर्फ 'सहकारी समितियों' द्वारा ग्रामीण साख की जरूरत पूरी नहीं की जा सकती। इसलिए, ग्रामीण एवम् कृषि-साख-संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु 'वाणिज्यिक बैंकों' को भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी होगी। 'ए. आई. आर. सी. एस. सी.' द्वारा 'बहु एजेंसी उपस्थिति (प्रवेश)' की अनुशंसा के परिणास्वरूप 'समग्र ग्रामीण साख परिदृश्य' में 'क्रमागत विकास' को निम्नानुसार देखा जा सकता है :

(1) वर्ष 1969 में 14 बैंकों का राष्ट्रीयकरण;

(2) वर्ष 1971 में 'क्रेडिट गारंटी कॉरपोरेशन' की स्थापना;

(3) वर्ष 1975 में 'क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों' की स्थापना;

(4) वर्ष 1980 में दूसरी बार 6 बैंकों का राष्ट्रीयकरण;

(5) वर्ष 1982 में 'नेशनल बैंक फॉर एग्रीकल्चर एण्ड रूरल डेवलपमेंट (नाबार्ड)' की स्थापना;

(6) 'नाबार्ड' द्वारा वर्ष 1992 में 'स्वयं सहायता समूह (एस.एच.जी.) बैंक लिंकेज कार्यक्रम' की शुरूआत

(7) वर्ष 1996-97 में 'स्थानीय क्षेत्र बैंक (लोकल एरिया बैंक)' की अवधारणा को अंगीकार करना;

(8) 'नाबार्ड' द्वारा वर्ष 1998 में 'किसान क्रेडिट कार्ड योजना' (के.सी.सी. स्कीम) लागू किया जाना; तथा

(9) 'ग्यारहवीं पँचवर्षीय योजनावधि' में 'वित्तीय समावेशन (फिनान्सियल इन्क्लुजन)' की संकल्पना को अंगीकार किया जाना।

'बहु - एजेंसी एप्रोच' के तहत ऊपरवर्णित क्रमागत विकास प्रक्रिया से 'संस्थागत साख के विस्तार' तथा सुदृढ़ीकरण में तो काफी बल मिला है, फिर भी 'सहकारी साख' के मार्ग की कुछ उल्लेखनीय बाधाएँ अभी तक दूर नहीं की जा सकी हैं।

सहकारी साख की बाधाएँ

विगत लगभग छ: दशकों में संस्थागत एजेंसियों तथा गैर-संस्थागत एजेंसियों द्वारा प्रदत्त 'ग्रामीण साख-संवितरण' में उल्लेखनीय वृद्धि तथा कमी की क्रमश: प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। फिर भी ऋण देने वाली संस्थाओं द्वारा बहुत सी समस्याओं का सामना किया जा रहा है। विशेष कर 'अतिदेयताओं' तथा 'भुगतान चूककर्ताओं' की बढ़ती संख्या के रूप मे 'सहकारी साख संस्थाओं' को विशेष परेशानी का सामना करना पड़ रहा है। 'सहकारी संस्थाओं' के संदर्भ में 'ठीक समय पर अदा न की गयी ऋण राशि' का 'ऋण-माँग' के विरुद्ध अनुपात 40 प्रतिशत तथा 'क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों' के संदर्भ में 47 प्रतिशत हैं। 'भारतीय योजना आयोग' ने भी इस पर चिंता जताते हुए कहा है कि - 'कर्ज भुगतान में जानबूझकर चूक तथा अतिदेयताएं 'महाराष्ट्र' तथा 'गुजरात' जैसे 'सहकारिता आंदोलन के अग्रणी राज्यों सहित' कई राज्यों में बढ़ रही हैं। दरअसल, 'कृषि वित्त' के लिए 'बहु एजेंसी एप्रोच' अपनाये जाने के बाद कठिनाईयाँ बढ़ी है, जिसकी चर्चा 'अगस्त, 1976' में 'श्री सी. ई. कामत' की अध्यक्षता में गठित 'कार्यकारी दल' के प्रतिवेदन में की गयी है। इसमें चिन्हित बाधाओं में (i) कृषि एवम् कृषि आधारित अन्य व्यवसायों से सम्बन्धित एक 'सामान्य क्षेत्र' में एक से अधिक स्त्रोतों द्वारा 'खुदरा साख' के असमन्वित रूप में वितरण से एक ही लाभार्थी को एक से अधिक स्त्रोतों द्वारा साख-सुविधा उपलब्ध करा दिया जाना, (ii) जरूरत से अधिक ऋण दे दिया जाना, (iii) आवश्यकता से कम साख की प्राप्ति, (iv) वित्तीय अनुशासनहीनता तथा (v) पहले से कमी की मार झेल रहे संसाधनों का अनुत्पादक कार्यों में प्रयोग (परिवर्तन) प्रमुख हैं।

स्पष्ट है कि 'सहकारी साख संस्थाओं' को 'भारतीय कृषि एवम् ग्रामीण अर्थव्यवस्था' को 'साख रूपी रक्त प्रवाह' द्वारा सतत रूप से रोजगारोन्मुखी तथा 'आय बढ़ाने वाले उद्यमों' के रूप में बनाये रखने के लिए ऊपरवर्णित कमजोरियों को दूर करने के ठोस उपाय करने होंगे।

बढ़ती परिमाणात्मक - घटती प्रतिशत भागीदारी

कृषि एवम् इससे संबंधित अन्य क्रिया-कलापों के विकास तथा सुदृढ़ीकरण में 'सहकारी साख संस्थाओं' द्वारा अदा की जा रही भूमिका (योगदान) के निर्धारण हेतु 'वर्तमान दशक' के 'वर्ष 2002-03' से '2008-09' तक की छ: वर्षीय

अवधि में 'कृषि क्षेत्र को तीनों संस्थागत एजेंसियों' द्वारा दी गयी साख-राशियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन आवश्यक होगा।

वर्ष 2008-09 के अद्यतन आँकड़ों का अवलोकन करें तो स्पष्ट होता है कि 'सहकारी बैंकों', 'क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों' एवं 'वाणिज्यिक बैंकों' द्वारा कृषि क्षेत्र को उपलब्ध करवायी गयी कुल 'साख राशि' 2,64,455 करोड़ रुपये थी। जिसमें कुल साख राशि का 76.71 प्रतिशत भाग वाणिज्यिक बैंकों का था। इसके बाद द्वितीय सर्वाधिक भागीदारी सहकारी बैंकों की 35,747 करोड़ रुपये (कुल साख का 13.52 प्रतिशत) थी। 25,859 करोड़ रुपयों (9.77 प्रतिशत) सहित 'क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक' तीसरे पायदान पर हैं। (तालिका सं-1) वर्षवार आँकड़ों के अवलोकन से पता चलता है कि; 'सहकारी बैंकों' द्वारा कृषि एवम् संबंधित क्षेत्रों को दी गयी साख-राशि 'वर्ष 2002-03' के 23,716 करोड़ रुपयों से लगातार बढ़ते हुए 'वर्ष 2008-09' में 35,747 करोड़ रुपये (1.51 गुना) हो गयी। निश्चय ही बढ़ती साख राशि 'सहकारी बैंकों' की 'भारतीय कृषि तथा ग्रामीण क्षेत्र' के विकास के प्रति घनात्मक चिन्ता को प्रदर्शित करता है। परंतु संस्थागत साख एजेंसियों द्वारा उपरोक्त वर्षों में कृषि-साख के रूप में दी गयी कुल राशियों में 'सहकारी बैंकों' के अंशदान पर नजर डालें, तो यह निराशाजनक रूप से लगातार 'घटती हुई प्रवृत्ति' को दर्शाता है। 'वर्ष 2002-03' कुल संस्थागत कृषि साख में 'सहकारी बैंकों' की भागीदारी 34.09 प्रतिशत थी, जो लगातार कम होते हुए वर्ष 2003-04, 2004-05, 2005-06, 2007-08 तथा 2008-09 में क्रमश: 30.99 प्रतिशत, 25.08 प्रतिशत, 22.04प्रतिशत, 18.52प्रतिशत, 18.95 प्रतिशत (0.43 प्रतिशत की मामूली वृद्धि को छोड़कर) तथा 13.52 प्रतिशत हो गयी (तालिका संख्या-1)

भारत के शत-प्रतिशत गाँवों तक 'प्राथमिक कृषि साख सहकारी समितियों (पैक्स)'/'कृषि सेवा समितियों (एफ.एस.एस.)'/'बृहद क्षेत्र बहुद्देशीय सहकारी साख समितियों (लैम्पस)' के माध्यम से अपना आच्छादन रखने वाले 'सहकारी बैंकों' की 'कुल संस्थागत कृषि-साख' में घटती भागीदारी की चिन्ताजनक स्थिति को दूर करने के लिए इनको 'भारतीय रिज़र्व बैंक' द्वारा विशेष निर्देश देकर 'नाबार्ड' के माध्यम से विशेष/'अतिरिक्त वित्त' देने की व्यवस्था करनी होगी ताकि ये 'ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए अपनी जानी-पहचानी भूमिका' में खरे उतर सकें।

तालिका संख्या - 1

'कृषि' तथा 'सम्बन्धित क्रिया-कलापों' के लिए 'संस्थागत साख-प्रवाह' (करोड़ रुपयों में)

संस्थागत साख के विभिन्न स्त्रोत	2002-03	2003-04	2004-05	2005-06	2006-07	2007-08	2008-09
1. सहकारी बैंक	23,716 (34.09%)	26,959 (30.99%)	31,424 (25.08%)	39,786 (22.04%)	42,480 (18.52%)	48,258 (18.95%)	35,747 (13.52%)
2. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक	6,070	7,581	12,404	15,223	20,435	25,312	25,852 (9.77%)
3. वाणिज्यिक बैंक	39,774	52,441	81,481	1,25,477	1,66,485	1,81,087	2,02,856 (76.11%)
कुल योग	69,560	86,981	1,25,309	1,80,486	2,29,400	2,54,657	2,64,455 (100.00%)

(स्त्रोत : नाबार्ड)

तालिका संख्या - 2

स्रोतवार वर्षवार कृषक परिवारों द्वारा ली गयी उधारों की सापेक्षिक हिस्सेदारी

साख के स्रोत	1951	1961	1971	1981	1991	2002	2004	2008
1) गैर-संस्थागत	92.7	81.3	68.3	36.8	30.6	38.9	33.3.	30.5
2) महाजन	69.7	49.2	36.1	16.1	17.5	26.8	19.5	22.5
3) संस्थागत	7.3	18.7	31.7	63.2	66.3	61.1	66.7	69.5
4) सहकारी समितियाँ/ बैंक	3.3	2.6	22.0	29.8	23.6	30.2	32.4	30.5
5) वाणिज्यिक बैंक	0.9	0.6	2.4	28.4	35.2	26.3	27.6	29.5
6) अन्य	-	-	-	-	3.1	-	-	-
कुल	100	100	100	100	100	100	100	100

(स्रोत : भारतीय रिज़र्व बैंक 'अखिल भारतीय साख सर्वेक्षण' तथा 'एन.एस.एस.ओ.' नई दिल्ली)

कृषक परिवार-ऋणों में सहकारी क्षेत्र की बढ़ती भागीदारी

भारत की कार्यशील जनसंख्या के 58 प्रतिशत भाग को 'जीविकोपार्जन का आधार प्रदान करने वाला' वर्ष 1947 के 350 मिलियन की तुलना में अब (वर्ष 2009 तक) 1,100 मिलियन लोगों को दो वक्त का भोजन उपलब्ध करवाने वाले तथा 'वर्ष 2007' के आँकड़ों के अनुसार 'समग्र घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) में 98.7 प्रतिशत की भागीदारी निभाने वाले 'भारत के कृषि क्षेत्र' के विकास एवम् सुदृढ़ीकरण में 'सहकारी बैंकों' की अहम भूमिका कृषक परिवारों द्वारा सहकारी साख समितियों से लिए गए ऋणों की संख्या में लगातार वृद्धि द्वारा भी परिलक्षित होती है। 'वर्ष 1951 से 2008 तक के 58 वर्षों के आँकड़ों पर नजर डालने से यह ज्ञात होता हैं कि 'कृषक परिवारों' द्वारा 'सहकारी साख समितियों/सहकारी बैंकों' से लिए गए ऋण (जो वर्ष 1951 में उनकी सिर्फ़ 3.3 प्रतिशत साख जरूरत को पूरा करते थे) वे वर्ष 1991 एवम् वर्ष 2008 की पूर्वापेक्षा क्रमशः 6.2 प्रतिशत तथा 1.9 प्रतिशत की गिरावटों को छोड़कर लगातार रूप से बढ़ते हुए वर्ष 2008 में 30.5 प्रतिशत हो गये। इसी अवधि में 'गैर-संस्थागत एजेंसियों' द्वारा 'कृषक परिवारों की कुल साख-आवश्यकता' की पूर्ति का परिणाम 92.7 प्रतिशत से 62.2 प्रतिशत घटकर वर्ष 2008 में 'सहकारी साख' के बराबर (30.5प्रतिशत) रह गयी (तालिका सं. - 2)। इसी अवधि में 'महाजनों द्वारा की जानेवाली' 'कृषक परिवारों की साख सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के परिमाण में भी 47.2 प्रतिशत की कमी (69.7 प्रतिशत से 22.5प्रतिशत) 'सहकारी संस्थाओं' के कृषि विकास की दिशा में इनके बढ़ते योगदान/भागीदारी की ओर इशारा करती है। 'कृषक परिवारों' की जरूरतों को पूरा करने के मामले में 'वाणिज्यिक बैंकों' ने भी 'वर्ष 1951' से 2008 की 58 वर्षीय अवधि में 32.78 गुना की वृद्धि सहित उल्लेखनीय भागीदारी निभायी है। वर्ष 1951 में इनके द्वारा 'कृषक परिवारों' की मात्र 0.9 प्रतिशत जरूरतों को पूरा किया जा रहा था, जो बढ़कर वर्ष 2009 में 29.5 प्रतिशत हो गया (तालिका सं. - 2)। फिर भी 'कृषक परिवारों' के कुल उधारों में 'सहकारी बैंकों' (30.5प्रतिशत) से 'वाणिज्यिक बैंकों'की (29.5प्रतिशत) भागीदारी 1 प्रतिशत कम ही हैं।

ऊपरवर्णित आँकड़ों पर आधारित विश्लेषणों का निष्कर्ष यह है कि कई प्रक्रियागत जटिलताओं, राजनीतिक दखलंदाजी, राजनैतिक लाभ-प्राप्ति हेतु समय-समय पर प्रदत्त ऋणों की अविचारित माफी की घोषणाओं आदि जैसी नकारात्मक परिस्थितियों के बावजूद 'सहकारी साख संस्थाएँ' कृषि एवम् ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए सतत रूप से अच्छा कार्य कर रही हैं।

बेहतर कार्य-परिणाम के उपाय

सहकारी साख संस्थाओं द्वारा कृषि एवम् ग्रामीण अर्थव्यवस्थाओं के अनवरत विकास हेतु विशेषज्ञों की सहायता लेकर पँचायत स्तर पर चार या पाँच ऐसी 'स्थानीय प्राकृतिक एवम् मानव-संसाधनाधारित परियोजनाओं' को प्रारम्भ करने के लिए यथेष्ट 'साख', 'पर्यवेक्षण' तथा 'अनुश्रवण-सुविधाएँ' उपलब्ध करवायी जानी चाहिए जिनसे लगातार रूप से (निम्न स्तर पर ही सही) 'रोजगार' के अवसरों का सृजन होता हो। 'साख को विपणन से जोड़ते हुए विश्व की विकसित अर्थव्यवस्थाओं की सहकारी संस्थाओं/सहकारी संगठनों' की तर्ज पर कृषकों एवम् ग्रामीण उद्यमियों को बिचौलियों/कमीशन एजेंटों तथा बाजार की शोषणकारी शक्तियों से बचाते हुए उनके उत्पादों को 'उच्च लाभकारी मूल्यों पर' अंतरराष्ट्रीय बाजार तथा देश के महानगरीय बाजारों में भी विपणन करने की व्यवस्था 'सहकारी कृषि साख समितियों' या इनके 'जिला स्तरीय'/'राज्य स्तरीय संघ'द्वारा की जानी चाहिए।

एक से अधिक एजेंसियों द्वारा एक ही व्यक्ति को साख-सुविधा उपलब्ध करा दिए जाने की घटनाओं तथा परिणामत: 'ऋण भुगतान में जान-बूझकर चूक या विलम्ब'की बाधा को कम या दूर करने के लिए 'पंचायत स्तर' पर सभी कृषकों एवम् ग्रामीण काश्तकारों/उद्यमियों की एक विस्तृत बैंकिंग विवरणी तैयार की जानी चाहिए। इस विवरणी में 'साख की माँग करने वाले सभी व्यक्तियों' द्वारा उनके संबंधित प्रखण्डों में अवस्थित सभी 'संस्थागत' एवम् 'गैर-संस्थागत' 'साख एजेंसियों' के द्वारा दी गयी 'ऋण राशियों का' (यदि कोई हो) पूरा ब्यौरा होना चाहिए। उसी 'बैंकिंग विवरणी' के आलोक में 'सहकारी साख-संस्थाओं' द्वारा लोगों को ऋण-सुविधा दी जानी चाहिए।

'केन्द्रीय बजट (2010-11) में कृषि एवम् ग्रामीण क्षेत्रों के विकास हेतु उद्घोषित चार रणनीतियों (i) कृषि उत्पादन पर जोर, (ii) खाद्यान्नों तथा फल-सब्जियों की बर्बादियों में कमी, (iii) साख-सहायता तथा (iv) 'अनाज काटने' के समय के बाद की तकनीक तथा 'खाद्य-प्रसंस्करण उद्योगों' की स्थापना पर जोर की सफलता हेतु 'कृषि साख संस्थाओं' को (सहकारी क्षेत्रांतर्गत) अन्य 'वाणिज्यिक बैंकों' की भाँति 'सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते हुए' स्व-आर्थिक मुनाफा वृद्धि हेतु अतिरिक्त व्यावसायिक कार्यों में संलग्न होने की पूर्वापेक्षा अधिक छूट दी जानी चाहिए।

ऊपरवर्णित उपायों को योजनाबद्ध ढँग से अपनाये जाने पर भारत में आने वाले समय में 'सहकारी साख' संस्थाओं/सहकारी बैंकों का आधार सुदृढ़ होगा। तभी वे बदलते 'सामाजिक-आर्थिक परिवेश' में भारतीय कृषि को 'वैश्विक, घरेलू तथा मौसम की गंभीर चुनौतियों का सामना करने के योग्य बन पायेंगी और यही 'कृषि प्रधान राष्ट्र (भारत) के लिए समय की माँग भी है।

'संघे शक्ति कलियुगे' अर्थात्
कलियुग में संगठन में ही शक्ति है।

सहकारिता की पृष्ठभूमि में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की अनुपूरक भूमिका

● संतोष श्रीवास्तव*

भारत कृषि प्रधान देश है, सरकार का लगातार यह प्रयास है कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था में साख के प्रवाह में वृद्धि की जाये। इसके लिए सरकार ने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की है। यह महसूस किया गया कि वाणिज्य बैंकों द्वारा ग्रामीण बैंकिंग के अंतर्गत ग्रामीण आर्थिक विकास हेतु कई कार्यक्रम चलाये जाने के बाद भी ग्रामीण क्षेत्रों का एक बड़ा भाग संगठित वाणिज्य बैंकों की सुविधाओं से वंचित रहा है एवं उसके नियंत्रण में नहीं आ सका है। इसका कारण अनेक संगठनात्मक एवं क्रियान्वयन संबंधी समस्याएं रही हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में वित्तीय समावेशन हेतु ऐसी संस्था की आवश्यकता महसूस की गई, जिसके पास पर्याप्त मात्रा में वित्तीय साधन हों, जो कम लागत पर ग्रामीण क्षेत्र में वित्तीय संसाधन उपलब्ध करा सके और ग्रामीण क्षेत्र में ही अपना कार्य सुगमता से संचालित कर सके। भारतीय कृषकों के लिए कहा भी गया है कि : ''वह कर्ज में पैदा होता है और कर्ज में ही मर जाता है और अपनी अगली पीढ़ी के लिए कर्ज छोड़ जाता है।'' वास्तव में यह स्थिति ग्रामीण क्षेत्रों में साहूकारों द्वारा उत्पन्न की गई है, जो गांव के भोले भाले किसानों को सूदखोरी के जाल में फंसा लेते हैं। तत्कालीन लेखकों ने बड़े मार्मिक तरीके से इसका उल्लेख, अपनी कहानी एवं नाटकों में भी किया है। सारणी-I से भी कृषकों पर महाजन एवं साहूकारों के प्रभुत्व की स्थिति स्पष्ट होती है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से ग्रामीण क्षेत्र का कृषक आर्थिक रूप से शोषित ही होता रहा है। जरुरत इस बात की थी कि ग्रामीण क्षेत्र के किसान, कास्तकार, लघु उद्यमियों को कोई ऐसी संस्था सहारा दे, जो उनको आर्थिक संबल प्रदान कर साहूकारों एवं महाजनों के शिकंजे से निकल सके। इसी परिप्रेक्ष्य में सन 1931 में श्री भूपेन्द्र नाथ की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई

सारणी-I

ग्रामीण क्षेत्र में ऋण प्रदाय की स्थिति

ऋण प्रदायक संस्थाएं	ग्रामीण कृषकों को दिये गए ऋण का प्रतिशत
विभिन्न सरकारी संस्थाएं	3.3
सहकारी संस्थाएं	3.1
रिश्तेदार	14.2
भू-स्वामी	1.5
बड़े किसान (महाजन)	24.9
साहूकार	44.8
व्यापारी एवं आढ़तिया	5.5
वाणिज्य बैंक	0.9
अन्य	1.8

थी। इस समिति ने ग्रामीण अंचल में वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अपनी सिफारिशें प्रस्तुत की :

- ग्रामीण वित्त पोषण में साहूकारों की भूमिका एवं कृषकों को उससे छुटकारा दिलाने के उपाय
- ग्रामीण बैंकिंग में कृषकों की भागीदारी
- कृषकों की दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उपाय।
- सहकारी ऋण व्यवस्था में सुधार की गुंजाइश
- ग्रामीण बैंकों की स्थापना की जाये, जो किसानों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें।

* यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, स्टाफ प्रशिक्षण केन्द्र, प्लाट सं. 1513/11, अरेरा हिल्स, भोपाल

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना एवं उनके उद्देश्य

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना का उद्देश्य यही है, कि 'क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अपने राज्य के उस भाग में जहां उनका गठन हुआ है, उसका समग्र विकास करें, विशेषकर उस क्षेत्र में स्थानीय कृषि, लघु उद्योगों, कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए किसानों, शिल्पकारों एवं लघु उद्यमियों का स्थानीय आवश्यकता के अनुसार वित्त पोषण कर, उनका जीवन स्तर उँचा उठाने में सहयोग करें तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, क्षेत्रीय विकास पर ज्यादा ध्यान दें।'

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक का गठन 'क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अधिनियम, 1976' के तहत केन्द्र, संबंधित राज्य सरकार और प्रवर्तक बैंक द्वारा किया जाता है। इसमें पूंजी का अनुपात निम्नानुसार है :

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक के गठन में पूंजी का अनुपात

प्रवर्तक	अनुपात
केन्द्र सरकार	50
राज्य सरकार	15
प्रवर्तक बैंक	35

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को यह अधिकार दिये गये कि वे क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की पूंजी में हिस्सा ले कर, उसकी आरंभिक अवस्था में अपने स्टाफ की सेवाएं प्रदान कर, उसके विकास एवं संगठन में अपना सहयोग दें। साथ ही यह भी निश्चय किया गया है कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना उन स्थानों पर की जायेगी, जहां सहकारी समितियों एवं वाणिज्यिक बैंकों की शाखाओं का विस्तार नहीं हुआ हो। सामान्यत: क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा जिलों के समूहों को सेवाएं प्रदान की जायेंगी तथा इनकी स्थापना का आधार एक क्षेत्र की समरूप क्षेत्रीय एवं आर्थिक विशेषताओं को बनाया जायेगा। इसके क्षेत्रों को विभाजित करने के लिए नदी-घाटी, खेत-खलिहानों आदि को आधार बनाया जा सकता है तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना, जिले के पिछड़ेपन के आधार पर भी की जा सकती है।

रिज़र्व बैंक द्वारा प्रदान की जाने वाली रियायतें

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को प्रोत्साहित करने एवं उनके त्वरित विकास के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक ने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को निम्न रियायतें देने का निश्चय किया है :

- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की स्थापना के तुरंत बाद ही इन बैंकों को भारतीय रिज़र्व बैंक की दूसरी अनुसूची में शामिल कर लिया जाता है, जिससे यह पुनर्वित्त की सुविधा पाने के हकदार हो जाते हैं।
- अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की तुलना में ग्रामीण बैंकों की सांविधिक चलनिधि अपेक्षाएं (Statutory Liquidity Requirements) कम होती हैं।
- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, जमाराशियों पर अन्य बैंकों की तुलना में 1/2% अधिक ब्याज दे सकते हैं।
- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को भारतीय रिज़र्व बैंक से बैंक दर से 3% कम दर पर पुनर्वित्त की सुविधा उपलब्ध रहती है।
- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक को नाबार्ड (NABARD) से भी पुनर्वित्त सुविधाएं मिलती हैं।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों में कार्य करने वाले स्टाफ के बारे में यह निर्णय लिया गया कि यहां के स्टाफ को क्षेत्रीय भाषा का ज्ञान होना चाहिए, जिससे कि वह क्षेत्र विशेष में स्थानीय लोगों को उनकी अपेक्षा के अनुसार समुचित सेवाएं प्रदान कर सकें।

02 अक्टूबर 1975 को क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का उद्घाटन किया गया और इनकी स्थापना से जून 1989 तक इनकी संख्या बढ़कर 196 हो गई और शाखाओं की संख्या 13500 हो गई। जून 1989 में इन बैंकों की जमाराशि 2306 करोड़ रुपये और अग्रिम 2252 करोड़ रुपये थे। सबसे रोचक बात यह थी कि छोटे सीमान्त कृषकों, भूमिहीन मजदूरों और ग्रामीण दस्तकारों को दिये गये अग्रिमों का अनुपात लगभग 92% था जिनमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का समामेलन

भारत सरकार ने 12 सितम्बर 2005 को एक अधिसूचना जारी करके क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की कमियों को दूर कर, उन्हें सक्षम और लाभप्रद इकाई के रूप में परिवर्तित करने के उद्देश्य से राज्य स्तर पर प्रवर्तक बैंकवार क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों

के समामेलन की प्रक्रिया शुरू की और उस समय 9 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का समामेलन किया गया।

18 अक्तूबर 2006 तक कुल 63 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को समामेलित किया जा चुका है जो 15 राज्यों में 18 बैंकों द्वारा प्रायोजित किये गये।

समामेलन के बाद क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के वित्तीय कार्य-निष्पादन पर एक नजर

- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के समामेलन के बाद ग्रामीण बैंकों की संख्या 196 से घट कर 133 रह गई है।
- समामेलन के बाद क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का समेकित तुलन पत्र 15.1% बढ़ा है।
- आस्तियां, वर्ष 2005-2006 के दौरान उनके निवल अग्रिम पर 21.1% और उधार पर 32.2% बढ़ी।
- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की कुल जमा राशि 14.4% बढ़ी।

मार्च 2006 के अंत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के बकाया अग्रिम की राशि 39713 करोड़ रुपये हो गई थी, जिसमें से प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र का हिस्सा 81.8% है। कृषि ऋणों का हिस्सा मार्च 2005 के अंत में 50.8% से बढ़कर मार्च 2006 के अंत में 54.0% हो गया, जबकि इसी अवधि में गैर कृषि ऋण का हिस्सा 49.2% से गिरकर 46.0% रह गया था।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों में किसान क्रेडिट कार्ड

वर्तमान समय में आधुनिकीकरण एवं बैंकिंग जगत में आयी नयी तकनीक का लाभ ग्रामीण क्षेत्रों में पहुँचाने के लिए सरकार एवं भारतीय रिज़र्व बैंक कटिबद्ध हैं। इसी कारण प्लास्टिक मनी के रूप में प्रचलित विभिन्न कार्डों में से किसान क्रेडिट कार्ड योजना, ग्रामीण क्षेत्र के लिए सुविधाजनक एवं लाभप्रद है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने भी किसानों के लिए यह योजना लागू की है जिसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई।

देश के सभी क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा जारी किसान क्रेडिट कार्डों में उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक राज्यों की भागीदारी 59.30 प्रतिशत रही है।

वर्ष 2001-2002 से किसान क्रेडिट कार्डधारकों को वैयक्तिक दुर्घटना बीमा पैकेज की सुविधा भी प्रदान की गई है। इसमें दुर्घटना के कारण मृत्यु अथवा स्थायी विकलांगता के लिए उन्हें अधिकतम क्रमश: 50 हजार तथा 25 हजार रुपये के लिए बीमित किया गया है। प्रीमियम का भार क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक एवं क्रेडिट कार्डधारकों द्वारा 2:1 के अनुपात में वहन किया जाता है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा किसानों को जारी किसान क्रेडिट कार्ड योजना के लाभ

- किसान क्रेडिट कार्ड योजना के अंतर्गत बैंकों से पैसा मिलने के कारण किसानों के साथ जालसाजी व धोखाधड़ियों की संभावनाओं में कमी आई है।
- किसानों की उपज में वृद्धि होने से उनके जीवन स्तर में सुधार हुआ है।
- ग्रामीण क्षेत्र में महाजनों एवं साहूकारों के चुंगल से किसानों को मुक्ति मिली है।
- किसान, फसल के लिए खाद, बीज व अन्य सामग्री अपनी इच्छानुसार सौदेबाजी कर, बाजार की प्रतियोगी दर पर खरीद रहे हैं।
- किसान क्रेडिट कार्ड योजना के लागू होने से सरकारी वसूलियां जैसे भूमि लगान, बिजली के बिल, सोसायटी के उर्वरकों का भुगतान सुविधाजनक तरीके एवं समय पर हो रहे हैं।
- इस योजना के माध्यम से ऋण वितरण में होने वाली औपचारिकताओं में कमी आयी है।
- कृषि कार्य हेतु दिये जाने वाले ऋण प्रवाह में वृद्धि हुई है।
- किसानों को किसान क्रेडिट कार्य जारी करने के बाद उनकी उधार लागत में लगभग 6 प्रतिशत की कमी आयी है।
- अल्पावधि कृषि ऋण प्राप्त करने में लगने वाले समय में कमी आयी है।

♦ इससे किसानों द्वारा परम्परागत फसलों के स्थान पर व्यापारिक फसलों के उत्पादन को प्रोत्साहन मिला है।

इस तरह से हम देखते हैं कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा किसानों को 'किसान क्रेडिट कार्ड योजना' की सुविधा देने से यह योजना किसानों के लिए वरदान साबित हुई है। इससे क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की विश्वसनीयता एवं प्रभुत्व बढ़ा है तथा ग्रामीण क्षेत्र में इनकी ख्याति मजबूत हुई है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा प्रत्यक्ष कृषि एवं माइक्रो वित्त के तहत लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु किये जाने वाले प्रयास

वित्तीय वर्ष 2010-11 के लिए नई दिल्ली में आयोजित कारोबार योजना के अंतर्गत क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के लक्ष्य प्राप्ति हेतु निम्न कार्यनीति निर्धारित की गई है :

❒ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की प्रत्येक शाखा अपने कार्यक्षेत्र का विस्तार कर, सेवाएं प्रदान करने का प्रयास करे।

❒ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की शाखाएं, कम लागत की जमा राशियों का संग्रहण करने का प्रयास करें।

❒ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की शाखाएं, उन्नत मूलभूत सुविधाएं, सीबीएस कार्यान्वयन तथा विशेषज्ञ स्टाफ के लिए प्रयास करें ताकि कार्य सुचारु रूप से एवं सुगमता से संपन्न हो।

❒ शीघ्र ऋण उपलब्ध करवाने हेतु व्यापक प्रचार-प्रसार करने के साथ ही क्रेडिट कैम्प आयोजित किये जायें।

❒ नाबार्ड, राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड, नेशनल बल्क हैण्डलिंग कार्पोरेशन, एवं अन्य एजेंसियों के साथ, जो कृषि ऋण प्रस्ताव लाते हैं, कृषि ऋण हेतु संपर्क बनाये रखा जाये।

❒ सरकारी योजनाओं में कारोबार के अवसरों का उचित उपयोग करते हुए लक्ष्य प्राप्ति हेतु प्रयास किए जाएं।

❒ साप्ताहिक अंतराल में प्रत्येक शाखा के आधार पर शाखा के कार्यनिष्पादन का क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के प्रमुख उचित अनुश्रवण करें।

❒ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की शाखाओं में कारोबार की वृद्धि हेतु सक्रिय कदम उठाने के लिए शाखा के स्टाफ विशेषकर ग्रामीण विकास अधिकारी, क्षेत्र अधिकारियों को उत्प्रेरित करें।

❒ डेरी विकास, कृषि संसाधन, सब्जी एवं फलों की खेती हेतु विपणन एजेंसियों से टाइ-अप करके ऋण की संभावनाएं तलाशी जाएं।

❒ बागवानी, पुष्पोत्पादन, औषधीय एवं हर्बल पौधे एवं अन्य संबद्ध गतिविधियों जैसे : मुर्गीपालन, बकरी पालन, डेरी, मत्स्यपालन आदि तथा क्षेत्र की संभावनाओं के आधार पर ध्यान केन्द्रित किया जाये, जिससे वित्त पोषण के नये क्षेत्रों का विकास हो सके तथा अधिकाधिक हितग्राही लाभान्वित हो सकें।

❒ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के कार्यालय प्रमुख एवं प्रायोजक बैंक, प्रत्यक्ष कृषि ऋण के अंतर्गत उत्तम कार्यनिष्पादन करने वाले अधिकारियों एवं स्टाफ सदस्यों के बीच मनोबल बढ़ाने का प्रयास करने के लिए स्पर्धात्मक भावना पैदा करें।

❒ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक के ग्रामीण विकास अधिकारी, क्षेत्र अधिकारी एवं शाखा प्रबंधक प्रभावी रूप से अनुवर्ती कार्रवाई करें जिससे प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र ऋण आवेदनों का निपटान, निर्धारित समय में अनिवार्य रूप हो सके।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक एवं वित्तीय समावेशन

ग्रामीण विकास का मुख्य आधार वहां की आधारभूत समस्याओं को खोजना एवं उनका समाधान करना है। बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद इतना समय व्यतीत होने के बाद भी काफी बड़ा हिस्सा बैंकिंग सुविधाओं से वंचित है। ग्रामीण क्षेत्र के अधिकाधिक लोगों को बैंकिंग सेवाओं के दायरे में लाने के लिए ऐसी नीतियों की जरूरत समझी गई, जो ग्रामीणों की वित्तीय जरूरतों को समय पर और अपेक्षित मात्रा में पूरी करने के साथ-साथ वित्तीय समावेशन हेतु कारगर हो। इस दृष्टि से भारतीय रिज़र्व बैंक ने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों/वाणिज्यिक बैंकों की ग्रामीण शाखाओं के माध्यम से निम्न कदम उठाने का

आह्वान किया है जिससे कि ग्रामीण क्षेत्रों का समन्वित एवं तीव्र विकास हो सके :

- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक में ग्रामीणजनों को बचत के लिए प्रोत्साहित करना एवं उनको बैंक में जमा खाता खोलने के लिए प्रेरित करना।
- ग्रामीणजनों को बैंकिंग सुविधाओं की जानकारी देना एवं उसका लाभ उठाने के लिए प्रेरित करना।
- ग्रामीणजन को विभिन्न बैंकिंग उत्पादों की जानकारी देना।
- ग्रामीणों को धन प्रबंधन और ऋण संबंधी सलाह देना।
- कम ब्याज पर ऋण उपलब्ध करवाना।

भारतीय रिज़र्व बैंक ने ग्रामीण क्षेत्रों में 'यूजर फ्रेंडली' के रूप में एटीएम जैसी मशीनों के प्रचार प्रसार पर जोर दिया है। भारत सरकार के वर्ष 2007-2008 के बजट में किसानों को पहले से ही दी जा रही ऋण सीमा को बढ़ाने के अलावा 50 लाख नए किसानों को बैंकिंग प्रणाली से जोड़ने की बात कही गई है। इसमें क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं।

भारतीय रिज़र्व बैंक ने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को किसानों को ऋण देने और ऋण प्रक्रिया को आसान तथा उदार बनाने के लिए भी कहा है तथा किसानों से 50 हजार रुपये तक के ऋण पर 'कोई बकाया नही' (नोड्यूज) प्रमाण पत्र लेने की बाध्यता समाप्त कर दी है।

ग्रामीण विकास और ग्रामीण कारीगरों, लघु तथा कुटीर उद्योगों, किसानों तथा खेतिहर मजदूरों की खुशहाली के लिए क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक कारगर भूमिका निभा रहे हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि संपूर्ण बैंकिंग प्रणाली की 57 प्रतिशत शाखाएं ग्रामीण क्षेत्रों में हैं।

सुधारात्मक उपाय

- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को अपनी उधार और जमा दरों में संशोधन करने की अनुमति दी गई है।
- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को अपनी अधिशेष निधियों को लाभदायक क्षेत्रों में निवेश करने की अनुमति दी गई है।
- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के सुधार के लिए समन्वित प्रयास किये गये और संगठनात्मक विकास को महत्व दिया गया है।
- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के लिए मानव संसाधन विकास कार्यक्रम चलाये गये हैं।
- प्रायोजक बैंकों द्वारा अपने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की शाखाओं को सीबीएस सुविधायुक्त किया जा रहा है। हाल ही में यूनियन बैंक आफ इंडिया द्वारा प्रायोजित रीवा/सीधी ग्रामीण बैंक की समस्त शाखाओं को सीबीएस सुविधायुक्त कर दिया गया है।
- प्रायोजक बैंकों द्वारा अपने अधीन क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के स्टाफ को आई.टी. सोल्यूशन एवं डिलिवरी चैनल का प्रशिक्षण दिया जा रहा है जिससे क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के कम्प्यूटरीकृत एवं सीबीएसयुक्त होने में सहायता मिल रही है।
- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को लक्ष्येतर समूह को भी लाभप्रदता के आधार पर उधार देने की अनुमति दी गई है।
- शाखाओं द्वारा बनायी गयी सुनिश्चित कारोबारी योजनाओं के अनुपालन और अनुप्रवर्तन की निगरानी का कार्य 'नाबार्ड' को सौंपा गया है।
- सरकार ने समय-समय पर अपने बजट में कृषि ऋण को बढ़ाने की घोषणाएं की हैं, जिसमें ग्रामीण वित्त की मात्रा को बढ़ाने के साथ-साथ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को आर्थिक रूप से पुन: पंजीकृत कर उन्हें सशक्त बनाना भी शामिल है।

इससे **''क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की समग्र स्थिति में काफी सुधार हुआ है। प्रतिशाखा एवं प्रतिकार्मिक के हिसाब**

से क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की उत्पादकता में पर्याप्त सुधार दृष्टिगोचर हो रहे हैं एवं उम्मीद की जा रही है कि इसमें उत्तरोत्तर और वृद्धि होगी।''

भावी योजनाएं

- ♦ जोखिम प्रबंधन को फसली समय से जोड़कर फसलों एवं ऋणों का बीमा करवाना ताकि मानसून, अकाल, अतिवृष्टि आदि प्राकृतिक आपदाओं में समय पर निपटान हो सके।
- ♦ बीजों, कीटनाशकों, बिजली, पानी की आपूर्ति में सुधार करना।
- ♦ केन्द्र एवं संबंधित राज्य सरकारें, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के पुनर्विकास और पुनर्पूंजीकरण हेतु कार्ययोजनाएं बनायें, ताकि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक **अर्थ सक्षम और सशक्त** बन सकें।
- ♦ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा दिये जाने वाले ग्रामीण वित्त पोषण को मितव्ययी, पारदर्शी, त्वरित एवं सम-सामयिक बनाना।
- ♦ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थिति में सुधार के लिए नरसिंहम समिति - II द्वारा की गई सिफारिशों में मुख्य बातें निम्नानुसार हैं :

- ''ऋण माफी'' योजनाओं को प्रोत्साहित नहीं किया जाये।
- प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र में ऋण के प्रतिभूतिकरण की संकल्पना पर विचार किया जाये, जिससे क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की दक्षता में सुधार आये एवं कार्य में लचीलापन रहे।
- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को अपनी जोखिमभारित आस्तियों के संबंध में 8 प्रतिशत की न्यूनतम पूंजी का स्तर प्राप्त करना। (वर्ष 1998 से अगले 5 वर्षों में)
- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की बैंकिंग नीति ऐसी बनायी जाए, जो गरीबों की बैंकिंग आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम हो।
- ऐसे क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को, जो आर्थिक रूप से मजूबूत हैं या भविष्य में ऐसा होने की संभावना हो, उन्हें अपने वर्तमान स्वरूप में कार्य करने की अनुमति देनी चाहिए, तथापि उसी बैंक द्वारा उसी राज्य में प्रायोजित क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का समामेलन करने पर विचार किया जाए।
- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को भी बैंककारी विनियमन अधिनियम के अंतर्गत भारतीय रिज़र्व बैंक / नाबार्ड / वित्तीय पर्यवेक्षण बोर्ड के अंतर्गत लाया जाये जिससे यह राज्य सरकारों तथा नाबार्ड / भारतीय रिज़र्व बैंक के दोहरे नियंत्रण से मुक्त हो सकें।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की भविष्य की संभावनाओं, विस्तार एवं उपादेयताओं को देखते हुए, इनकी संगठनात्मक एवं संरचनात्मक प्रणाली में आमूलचूल परिवर्तन कर, इन्हें और ज्यादा प्रभावी एवं उपयोगी बनाया जा सकता है। भारत की 80 प्रतिशत जनसंख्या जो गांवों में निवास करती है, उसे आर्थिक रूप से सम्पन्न बनाने, उसका विकास करने में **क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों** के महत्व एवं उनकी भूमिका को नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक भारतीय अर्थव्यवस्था में 'मील के पत्थर' हैं, जब ग्रामीण अर्थव्यवस्था मजबूत होती, तब देश का सर्वांगीण विकास स्वत: जायेगा।

सहकारिता केवल सहकार्य से जुटाना ही नहीं है बल्कि बांटना भी है।

सहकारिता विकास में राज्य सहकारी तथा जिला सहकारी बैंकों की भूमिका

● सुबह सिंह यादव*

सरकारी ऋण संरचना के व्यापक प्रारूप राज्य सहकारी बैंक एवं जिला सहकारी बैंक भारत के गांवों की विद्यमान दशाओं के सन्दर्भ में अभीष्ट सामाजिक आर्थिक परिवर्तन लाने के लिए अभी भी कारगर माने जाते हैं। इनके कार्यों में ऋण देना, जमाराशि स्वीकार करना, उत्पादन और प्रसंस्करण, विपणन और वितरण कार्य जैसे बहुत से आर्थिक कार्यकलाप सम्मिलित हैं।

जिला सहकारी बैंक अपने व्यापक नेटवर्क, दूरदराज के क्षेत्र में अपनी सार्थक पहुँच के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था में विशेषकर निम्न एवं मध्यम आयवर्गों में बैंकिंग आदत बनाने तथा ग्रामीण ऋण संवितरण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। ग्रामीण और वित्त पोषण के क्षेत्र में सर्वप्रथम ऋण प्रणाली ने प्रवेश किया। यह सच है कि सहकारी संस्थाओं से ग्रामीण क्षेत्र के उत्थान के लिए बहुविधि कार्यकलाप अपनाने की अपेक्षा की गई। सहकारी संस्थाओं के विकास में राज्य सरकारें एक अत्यन्त महत्वपूर्ण केन्द्र बिन्दु मानी जाती हैं और सहकारी संस्थाओं की समीक्षा करने वाली प्रत्येक समिति/आयोग ने राज्य सरकारों की भूमिका स्वीकार की है।

यह सच है कि सहकारी संस्थाओं से ग्रामीण क्षेत्र के उत्थान के लिए बहुविधि कार्यकलाप अपनाने की अपेक्षा की गई। सहकारी संस्थाओं के विकास में राज्य सरकारें एक अत्यन्त महत्वपूर्ण केन्द्र बिन्दु मानी जाती हैं और सहकारी संस्थाओं की समीक्षा करने वाली प्रत्येक समिति/आयोग ने राज्य सरकारों की भूमिका स्वीकार की है।

जिला सहकारी बैंकों की भूमिका

जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक बहुविध भूमिका का निर्वहन करते हैं, जैसे -

1. **बैंकिंग संस्थाएं -** जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक, बैंककारी विनियमन, 1949 अधिनियम के अन्तर्गत भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा मान्यता प्राप्त बैंकिंग इकाइयाँ हैं। ये सामान्य जनता से जमाराशियां स्वीकार करती हैं तथा व्यक्तियों एवं संस्थाओं (प्राथमिक कृषि साख समितियों सहित) को ऋण प्रदान करती हैं, ये रिज़र्व बैंक द्वारा प्रतिपादित विभिन्न विनियमनों से शासित हैं। इनके स्वामित्व, विकासगत भूमिका को ध्यान में रखते हुए बैंककारी विनियमन अधिनियम, 1949 में विशेष प्रावधान सम्मिलित किये गये हैं।

2. **सहकारी आन्दोलन का नेतृत्व -** जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यात्मक भूमिका है, जिले में इससे संबंधित सभी प्राथमिक कृषि साख संस्थाओं को वित्तीय सहायता प्रदान करना। इन समितियों का स्वरूप अत्यधिक विविध श्रेणी का है जैसे प्राथमिक कृषि साख सहकारी समितियां, उत्पादक सहकारी समितियां, हथकरघा तथा दस्तकारी सहकारी समितियां, वेतनभोगी सहकारी समितियां, उपभोक्ता सहकारी समितियां, प्राथमिक शहरी सहकारी बैंक इत्यादि। फिर भी जिला सहकारी बैंक की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका प्राथमिक कृषि साख समितियों की सहायता करना तथा उन्हें विकसित करना हैं।

कई प्राथमिक कृषि साख समितियां बहुउद्देशीय कार्यकलापों को सम्पादित करती हैं, जैसे उर्वरकों तथा अन्य कृषि इन्पुटों की बिक्री, सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत राशन मदों की बिक्री। ऐसे कार्यकलापों तथा सदस्यों को प्रदान किये जाने वाले ऋण राज्य केन्द्रीय सहकारी बैंकों से ही लिये जाते हैं, क्योंकि प्राथमिक कृषि ऋण समितियों के पास अपना कोई खास कोष नहीं होता हैं। इस समितियों के अपने संसाधनों का महत्वपूर्ण स्रोत इसके जमाकर्ताओं द्वारा इनके पास रखे जाने वाली जमाराशियां हैं। इन जमाराशियों का एक निश्चित प्रतिशत जिला केन्द्रीय सहकारी बैंकों के पास रखा जाता है। यह

* मुख्य प्रबन्धक, (प्रशिक्षण) बैंक ऑफ बड़ौदा प्रशिक्षण केन्द्र, लखनऊ

प्रतिशत प्रारक्षित जमाराशि के रूप में होता है ताकि जमाकर्ता सदस्यों के हितों की रक्षा की जा सके।

3. **कृषि ऋण देने में अग्रणी** - ऐतिहासिक रूप से जिला केन्द्रीय सहकारी बैंकों को कृषि क्षेत्र की अल्पकालीन साख आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण वित्तीय संस्था माना गया है। इन ऋणों में सदस्यों को प्रदान किये जाने वाले उत्पादक एवं विपणन ऋण भी शामिल हैं।

4. **जमा संग्रहण** - स्थानीय जिला स्तरीय बैंक होने के नाते उनका क्षेत्र भी स्थानीय जनसंख्या तक ही रहता है, लेकिन उनके अपने ग्राहक वे किसान हैं जिनकी ऋण आवश्यकताएं उपलब्ध संसाधनों से अधिक हैं। सामान्यत: सहकारी संस्थाएं जमाराशियों को आकर्षित करने के लिए अन्य बैंकों द्वारा प्रदान की जाने वाली दरों से थोड़ा अधिक ब्याज देती हैं।

5. **उधार** - जिला केन्द्रीय सहकारी बैंकों के लिए संसाधनों का दूसरा स्रोत हैं - शीर्ष संगठनों से उधार लेना। जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक अपने शीर्षस्थ स्तरीय राज्य सहकारी बैंकों तथा नाबार्ड (NABARD) जैसी संस्थाओं से उधार सुविधाएं प्राप्त करते हैं। सामान्यत: ये सुविधाएं एक विशिष्ट उद्देश्य तथा एक निश्चित अवधि के लिए दी जाती हैं।

6. **ऋण एवं अग्रिम** - सहकारी बैंकों की प्रमुख व्यवस्था ऋण देना है। ऋण के वर्गीकरण का एक तरीका उस अवधि के अनुरूप होता है जिस अवधि के लिए ऋण दिया जाता है।

7. **अल्पकालीन उत्पादक ऋण** - अल्पकालीन ऋण फसल उगाने के लिए दिये जाते हैं। ये प्राथमिक कृषि साख समितियों के माध्यम से दिये जाते हैं। अल्पकालीन ऋण देने के उद्देश्य से प्रत्येक प्राथमिक कृषि साख समिति को अपने सदस्यों की ऋण आवश्यकताओं का मूल्यांकन करना होता है तथा इसे जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक को अग्रसारित करना होता है। जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक समिति के विगत निष्पादन तथा उसके पास उपलब्ध संसाधनों के आधार पर सदस्यों को फसली ऋण का संवितरण करने हेतु समिति को निधियां स्वीकृत करता है। फसली ऋण का एक बड़ा भाग नाबार्ड से मिलने वाले पुनर्वित्त की सहायता से जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक द्वारा संवितरित किया जाता है।

अल्पकालीन कृषि ऋण जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक के परिचालनों का मुख्य कार्य बिन्दु है। अल्पकालीन ऋण अथवा फसली ऋण की आवश्यकता को जिला केन्द्रीय सहकारी बैंकों के ऋणों में प्राथमिकता दी जाती है। इसी सर्वोच्च प्राथमिकता के कारण राज्य सहकारी बैंक, नाबार्ड तथा केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा भी इस ओर ध्यान दिया जाता है।

8. **किसान क्रेडिट कार्ड** - किसान क्रेडिट कार्ड एक ऐसा नवोन्मेषी उत्पादन है, जो बैंकिंग प्रणाली ने किसानों के लिये अल्पकालीन ऋण को आसान, लचीला एवं सुविधाजनक बनाने के लिए किया है। किसान क्रेडिट कार्ड किसानों के लिए एक वरदान है और इस योजना के द्वारा लचीलेपन का एक ऐसा स्तर लाया गया है जिससे किसान अपनी स्वीकृत ऋण सीमा को सुविधानुसार परिचालित कर सकता है।

9. **दीर्घावधि ऋण** - जिला केन्द्रीय सहकारी बैंकों द्वारा किसानों को प्रत्यक्षत: दीर्घावधि ऋण भी प्रदान किये जाते हैं। इस प्रकार के वित्त पोषण जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक नाबार्ड जैसी शीर्षस्थ संस्थाओं से पुनर्वित्त लेकर प्राप्त कर सकता है। नाबार्ड ऐसे कोषों को राज्य सहकारी बैंकों के माध्यम से संचरित करता है। दीर्घावधि ऋण अनेक उद्देश्यों के लिये दिये जाते हैं, जैसे कुएं खोदना, पम्प सैट खरीदना। ट्रैक्टर तथा अन्य कृषि उपकरणों के लिए भी दिये जाते हैं।

10. **अन्य ऋण** - जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक अन्य गतिविधियों के लिए ऋण देता है जिनमें सहकारी चीनी मिल, दुग्ध संघ तथा सहकारी स्पिनिंग मिल जैसी अन्य सहकारिताएं सम्मिलित हैं। बैंक के पास उपलब्ध संसाधनों तथा उभरते हुए अवसरों को दृष्टिगत रखते हुए बैंक जवाहरात ऋण, उपभोक्ता ऋण, सहकारिता ऋण संस्थाओं को ऋण जैसे अन्य क्षेत्र में भी अपने ऋण को प्रवाहित कर सकता है।

राज्य स्तरीय सहकारी बैंक की भूमिका

राज्य स्तरीय सहकारी बैंक राज्य स्तर पर कृषि तथा सहायक क्रियाओं के लिए मौसमी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। ये बैंक राज्यों में कार्यरत जिला केन्द्रीय सहकारी बैंकों की शीर्षस्थ संस्था हैं। सहकारी विकास में इन बैंकों की भूमिका मुख्यत: निम्नांकित क्रियाकलापों से परिलक्षित होती है।

1. सहकारी सिद्धान्तों के अनुरूप बैंक के सदस्यों के आर्थिक हितों को संरक्षित करना।

2. चालू / विभिन्न मीयादी जमाराशियों एवं अन्य खातों में राशि प्राप्त करना तथा समय-समय पर इनसे बैंक के उद्देश्यानुसार उधार में वृद्धि करना।

3. अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत अथवा उसी प्रकार की सहकारी संस्थाओं तथा नियमों के प्रावधानों के अन्तर्गत दर्ज किये गये सदस्यों को ऋण स्वीकृत करना।

4. जमाकर्ताओं तथा बैंक स्टाफ सदस्यों को निम्नांकित प्रतिभूति के आधार पर उधार देना अथवा ओवरड्राफ्ट स्वीकृत करना अथवा इनके लिये नकदी साख खोलना इत्यादि -

   (अ) मीयादी जमाराशियां

   (ब) सरकारी प्रतिभूतियाँ

   (स) पंजीयक द्वारा अनुमोदित अन्य प्रतिभूतियाँ, उन जमाकर्ताओं को भी क्लीन ओवरड्राफ्ट स्वीकृत करना जो कम से कम बोर्ड द्वारा निर्मित नियमों के अनुसार सामान्य सदस्य हैं।

5. राज्य में कार्यरत सभी सहकारी बैंकों एवं संस्थाओं के लिये संतुलनकारी केन्द्र के रूप में कार्य करना।

6. विनिमय बिल तथा हुण्डियों को एकत्रित करके अथवा पुनर्कटौती कर आन्तरिक विनिमय व्यवसाय करना अथवा डिमांड ड्राफ्ट जारी करना। बिलों की पुनर्कटौती उन लोगों के लिए होगी जो बोर्ड द्वारा निर्मित नियमों के अनुसार कम से कम सामान्य सदस्य हैं।

7. सुरक्षित कस्टडी प्रतिभूतियाँ, आभूषण तथा अन्य बहुमूल्य जेवरात आदि प्राप्त करना।

8. अतिरिक्त कोषों के वैधानिक निवेश हेतु क्रय एवं विक्रय करना तथा भारत सरकार एवं राज्य सरकार की प्रतिभूतियों तथा इस प्रकार की प्रतिभूतियों के क्रय एवं विक्रय हेतु सरकारी संस्थाओं के लिए एजेन्ट के रूप में काम करना।

9. परिचालनगत क्षेत्र में जहाँ भी आवश्यकता हो, वहाँ शाखाएं खोलना। एक संघीय संगठन की भांति यह अपनी संबद्ध संस्थाओं को परामर्शदात्री सेवाएं, मार्गदर्शन तथा तकनीकी सहायता प्रदान कर नेतृत्वकारी भूमिका का भी निर्वहन करता है।

राज्य एवं जिला सहकारी बैंकिंग की कमियां एवं सुधार

यद्यपि सहकारी संस्थाओं ने अपने कार्यकलापों में काफी वृद्धि कर ली है। ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति तथा उसके बाद की पुनरीक्षण समितियों द्वारा पाई गई सरकारी ऋण की बहुत सी कमियाँ आज भी विद्यमान हैं:

1. सहकारी ऋण विन्यास में ये सबसे कमजोर सूत्र हैं।

2. अपर्याप्त जमाराशि संसाधनों के परिणाम स्वरूप सहकारी क्षेत्र भारतीय रिज़र्व बैंक / नाबार्ड द्वारा रियायती ब्याज दर पर उपलब्ध करायी जाने वाली पुनर्वित्त सुविधाओं पर बहुत ज्यादा निर्भर करता है। भारतीय रिज़र्व बैंक अत्यंत अल्प दरों पर नाबार्ड को निधियां प्रदान करता है ताकि वह कृषकों तथा अन्य व्यक्तियों को रियायती ब्याज दर पर ऋण देने में सहकारी विन्यास की सहायता कर सके। सहकारी संस्थाओं को अपना ऋण कारोबार बढ़ाने के लिए जमा राशि जुटाकर अपने संसाधन बढाने होंगे।

3. सहकारी बैंकिंग प्रणाली अनेक बाधाओं को झेल रही है। इसमें अन्य बातों के साथ-साथ उच्च स्तर के ऋण अदायगी, पूंजीगत आधार का क्षरण, नये निवेशों की कमी, निधियों के लिये अन्य एजेंसियों पर भारी मात्र में निर्भरता, कार्य संचालन तथा प्रबन्धन में व्यावसायिकता की कमी, अपर्याप्त

आंतरिक नियंत्रण, संचालन सम्बन्धी संरचना तथा मानदण्डों और विनियमों का पर्याप्त रूप से अनुपालन न किया जाना जैसी चिंताएं भी शामिल हैं। किसी भी प्राथमिक समिति के लिये तथा परिकल्पित भूमिका के कारगर निर्वहन के लिये उसका एक न्यूनतम कारोबार होना आवश्यक है। ऐसा वह अपने सदस्यों को विविध प्रकार की समन्वित सेवायें एक ही स्थान पर प्रदान कर सकती हैं। इस दिशा में इन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई है।

सहकारी बैंकों के कामकाज और कार्य निष्पादन में सामान्यत: अनेक कमजोरियां बनी हुई हैं जो उभरते आर्थिक वातावरण में बैंकिंग तन्त्र के साथ प्रतियोगिता में उतरने के लिये, उनके क्षमता निर्माण का कोई अच्छा संकेत नहीं है, विशेषकर जब हम यह देखते हैं कि इन बैंकों में बकाया ऋणों और अग्रिमों से अनर्जक आस्तियों का अनुपात ऊंचा बना हुआ हो। इन परिस्थितियों में इन बैंकों के सुदृढ़ीकरण के प्रयासों की बड़ी आवश्यकता है।

4. ऋण आस्तियों की गुणवत्ता में सुधार करना तथा प्राप्य राशियों की समय पर वसूली ये दो ऐसे क्षेत्र हैं जिनकी ओर सहकारी समितियों को सबसे ज्यादा ध्यान देना चाहिए। प्राप्य राशियों की वसूली का समग्र स्तर अपर्याप्त बना रहता है। उदाहरण के लिये कृषि सम्बन्धी प्राप्य राशियों की औसत वसूली हाल ही के वर्षों में काफी कम रही है। इससे सहकारी क्षेत्र की निधियों का पुन: प्रयोग करके संसाधनों का अभीष्ट प्रयोग करने में रूकावट आती है। वसूली पर बहुत से तत्वों का प्रभाव पड़ता है।

उत्पाद प्रयोजनों के लिए समय पर और पर्याप्त ऋण की उपलब्धि सुनिश्चित की जानी चाहिये और उस पर निगरानी रखी जानी चाहिये ताकि उसका प्रयोग वास्तव में उसी कार्य के लिए किया जाये, जिसके लिये लिया गया है। इसके लिये महत्वपूर्ण है कि ऋण देने सम्बन्धी विनिर्दिष्ट मानदण्डों, शर्तों, क्रियाविधियों आदि का पूर्णतया अनुपालन किया जाये। ऋण के प्रयोग पर निगरानी रखी जाए। किसी अन्य प्रयोजन के लिए ऋण का प्रयोग न किया जाये।

5. वित्तीय अनुशासन और प्राप्य राशियों की वसूली में सहायक वातावरण तैयार किया जाये और उसे बनाये रखा जाये। ऐसे वातावरण को किसी भी प्रकार दूषित नहीं किया जाना चाहिये। इस बात पर बल देने की आवश्यकता है कि ऋण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ग्रामीण क्षेत्र की सहकारी बैंकों पर बढ़ती निर्भरता, ऋणों की वसूली ठीक न होने से ऋण संस्थाओं की अर्थ क्षमता पर बुरा प्रभाव पड़ेगा और उससे ग्रामीण क्षेत्र जो विकास में काफी महत्वपूर्ण है, को ऋण मिलने में रुकावट आयेगी।

6. विकास के इस चरण में यह महत्वपूर्ण है कि ऐसा कोई कार्य न किया जाये जिससे बैंकिंग संस्थाओं की अर्थक्षमता पर बुरा प्रभाव पड़े। चूंकि जमा राशियाँ उनकी अपनी नहीं होती, अत: यह उनका दायित्व हो जाता है कि वे उनकी व्यवस्था तथा प्रयोग अत्यन्त दक्षतापूर्ण एवं उत्पादक ढंग से करें।

7. सहकारी ऋण, ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादन ऋण विशेषकर अल्पावधि ऋण देने का अत्यधिक महत्वपूर्ण जरिया बना हुआ है, अत: यह आवश्यक हो जाता है कि सहकारी बैंक अपने कामकाज में वांछित सुधार करने के लिए अपने स्टाफ के स्वरूप की विशेषकर प्रबन्धकीय स्तर पर जाँच करें। इस समय जबकि संस्थागत ऋण को गांवों में ऋण देने के साथ-साथ अन्य क्षेत्रों की जरूरतों को भी पूरा करना है, प्रबंध प्रशिक्षण तथा मानव संसाधन विकास का महत्व बहुत बढ़ गया है।

अत: शीघ्र ही पेशेवर कर्मचारियों का ऐसा संवर्ग तैयार करने की आवश्यकता है जो ग्रामीण विकास सम्बन्धी प्रबन्धकीय तथा विकासात्मक कार्यों को कारगर ढंग से कर सकें। नई चुनौतियों का सामना करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि उचित प्रशिक्षण प्राप्त और व्यावसायिक कर्मचारियों के माध्यम से सहकारी समितियों को व्यावसायिक सहायता उपलब्ध करायी जाये। यह बात उन राज्यों के लिये विशेष रूप से तय है जहाँ सहकारी संस्थाएं अपेक्षाकृत कमजोर हैं, एवं कमजोरी के लक्षण प्रकट कर रही हैं।

सहकारी बैंकों के विकास में भारतीय रिज़र्व बैंक का योगदान

● श्यामलाल गौड़*

भारत में बैंकिंग की अवधारणा बहुत पहले से ही अस्तित्व में रही है। ऋग्वैदिक काल से ही भारत में ऋण के लेन-देन का उल्लेख विभिन्न रूपों जो मूलत:वस्तुओं, साधनों, वस्त्राभूषणों, आयुधों इत्यादि के रूप में आरम्भ हुआ होगा क्रमश: वाणिज्य कर्म के रूप में विकसित होता गया। प्राचीन साहित्य में भारत में अन्नागारों (Grain Banks) की स्थापना के विवरण मिलते हैं जो वर्ग समूहों द्वारा आवश्यकता के समय लोगों को अन्न उधार देने का कार्य करते थे। प्रतीकात्मक/प्रयोगात्मक रूप में भारत में अभी भी कहीं-कहीं अन्नागारों के प्रचलन के उदाहरण मिलते हैं। यह बैंकिंग का आदि रूप था जिसने भारत में सामाजिक रूपान्तरण का प्रभावी और आदर्श माध्यम प्रस्तुत किया। कालान्तर में इसमें विकृतियां आ गयीं और विकास की निरन्तरता का मार्ग अवरुद्ध हो गया।

देश की समग्र बैंकिंग व्यवस्था की कहानी को उसके उत्थान - पतन - पुनर्गठन को विभिन्न काल खंडों में विभाजित कर अच्छी तरह समझा जा सकता है। ये खंड सुविधाजनक अध्ययन के लिए इस प्रकार विभाजित किए जा सकते हैं। पारम्परिक/ स्वदेशी बैंकिंग, ब्रिटिशकालीन बैंकिंग, बैंकिंग का विनियमित काल, समाजोन्मुखी बैंकिंग, उदारीकृत बैंकिंग, वैश्विक/ग्राहक मूलक वैविध्यपूर्ण आधुनिक बैंकिंग।

मनुस्मृति/कौटिल्य के अर्थशास्त्र इत्यादि में ऋण और अनुदान के प्रकारों तथा वसूली/ऋण माफी प्रथाओं इत्यादि का भी उल्लेख मिलता है जो बैंकिंग की भारतीय अवधारणा व परम्परा का दिग्दर्शन कराते हैं तथा काफी अंशों में आज भी संगत हैं जैसे :-

1. समझदार व्यक्ति को अपना धन किसी सच्चरित्र/सद्भावी व्यक्ति के पास ही जमा कराना चाहिए जो न्याय/कानून से परिचित हो।
2. ब्याज जो ऋणी से किसी सौदे में वसूल किया जाए वह मूल राशि से कभी भी दो गुना से ज्यादा नहीं होना चाहिए।
3. विधि सम्मत रूप से निर्धारित ब्याज दरों से अधिक ब्याज दरें वसूल नहीं की जा सकेंगी।

ये उल्लेख एक सुविचारित उत्कृष्ट व्यवहार संहिता के आदर्श उदाहरण हैं जो हजारों साल पहले लिपिबद्ध और प्रचलित थे। समय के साथ इनमें परिवर्तन/संशोधन/परिष्कार आते गए। जो अवधारणा मूलत: अवशिष्ट धन की सुरक्षा न होकर समाज के गरीब/कमजोर वर्ग के आर्थिक अभावों/आवश्यकताओं की सरल पूर्ति करने से प्रेरित रही थी व लाभ निरपेक्ष रही होगी, कालान्तर में एक लाभप्रद व्यवसाय के रूप में परिवर्तित होती गयी, संभवत: इसका रूप शोषक भी हो गया।

पारम्परिक से विश्वव्यापी बैंकिंग

भारत में प्रचलित बैंकिंग व्यवसाय/ व्यवस्था में आर्थिक - सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तन / परिष्कार का क्रम निरन्तर गति से चलता रहा है। पारम्परिक या स्वदेशी बैंकिंग एक संस्थागत बैंकिंग के रूप में स्थापित थी जिसका स्वामित्व लगभग निजी था। आढ़तिए, साहूकार, महाजन इत्यादि जिसके विभिन्न अवयव के रूप में सक्रिय रहे। ग्रामीण और अर्धशहरी कस्बों में यह व्यवस्था अधिक व्यापक रूप से स्थापित रही। लेकिन मुगल कालीन भारत में इन संस्थाओं का ह्रास होने लगा और इनके कार्य कलाप संकुचित होते गए। अंग्रेजों के आगमन के पश्चात इस व्यवस्था को नया रूप दिए जाने के प्रयास होने लगे। देश की समग्र बैंकिंग व्यवस्था की कहानी को उसके उत्थान - पतन - पुनर्गठन को विभिन्न काल खंडों में विभाजित कर अच्छी तरह समझा जा सकता है। ये खंड सुविधाजनक अध्ययन के लिए इस प्रकार विभाजित किए जा सकते हैं। पारम्परिक/ स्वदेशी बैंकिंग, ब्रिटिशकालीन बैंकिंग, बैंकिंग का विनियमित काल, समाजोन्मुखी बैंकिंग, उदारीकृत बैंकिंग, वैश्विक/ग्राहक मूलक वैविध्यपूर्ण आधुनिक बैंकिंग।

* महा प्रबन्धक (सेवानिवृत), भारतीय रिज़र्व बैंक 604, रेडॉन बिल्डिंग, जिरकॉन हाऊसिंग सोसायटी, विमान नगर, पुणे

भारतीय बैंकिंग ने आधुनिक बैंकिंग तक पहुँचने के क्रम में एक लम्बा सफर तय किया है और अब एक ठोस धरातल पर स्थित है।

भारत में सहकारी बैंकिंग

क) सहकारी समितियां -

भारत में सहकारी बैंकिंग का इतिहास लगभग 100 साल पुराना माना जाता है जब 1904 में कृषि के लिए संस्थागत वित्त प्रणाली की स्थापना के लिए सहकारी समितियां अधिनियम पारित किया गया था। सहकारिता के माध्यम से आम ग्रामीण आदमी को ऋण प्रदान करने का प्रयोग प्राथमिक सहकारी समितियों के गठन के साथ ही प्रारम्भ हुआ। लेकिन कई वर्षों तक तो यही विचार चलता रहा कि ये समितियां मात्र ऋण/साख समितियां हो या बहुउद्देशीय सहकारी समितियां। लेकिन कोई सर्वमान्य धारणा नहीं बन पायी। फलत: अगले 5 दशकों में भी सहकारी बैंकिंग अपनी कोई विशिष्ट पहचान नहीं बना पायी जैसा कि 1951 में अखिल भारतीय ग्रामीण साख समिति ने अपने प्रतिवेदन में बताया है।

ख) भूमि बन्धक बैंक

यह एक अन्य सहकारी संस्था थी जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि विकास के लिए लम्बी अवधि के ऋण प्रदान करने की अपेक्षा की जाती थी। किन्तु वस्तुत: यह इस दिशा में कोई ठोस योगदान नहीं कर पायी। इस प्रकार के बैंक देश के कुछेक क्षेत्रों में ही कार्यरत थे और वे जमीन गिरवी रखकर ऋण प्रदान करते थे। इनका संसाधन आधार बहुत मजबूत नहीं था तथा न ही ये पर्याप्त संसाधन जुटा पाने की स्थिति में समर्थ थे।

ग) जिला/शीर्ष सहकारी बैंक

सहकारी बैंकिंग का अन्य अवयव/साधन राज्य सहकारी बैंक और जिला सहकारी बैंक थे जो राज्य या जिला स्तर पर कार्य करते थे तथा मुख्यत: अल्पकालीन ऋण/साख सुविधाएं उपलब्ध कराने के कार्य में संलग्न थे। ये स्थानीय आधार पर छुट-पुट योगदान दे रहे थे तथा इनकी आर्थिक स्थिति कमजोर थी और ये पुर्नस्थापन की स्थिति में थे।

घ) शहरी साख समितियां या शहरी सहकारी बैंक

गैर संगठित रूप में इस प्रकार की संस्थाएं मध्य और निम्न आय वर्ग के शहरी लोगों की ऋण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए देश के कुछ भागों में कार्यरत थीं। किन्तु किसी प्रभावी और व्यापक आधार वाले सर्वमान्य शीर्ष संगठन के अभाव में कोई खास पहचान नहीं बना पा रही थीं। इनका कार्यक्षेत्र और परिचालन भी सीमित प्रकार का था।

भारतीय रिज़र्व बैंक का गठन

1913-17 की आर्थिक मन्दी जनित बैंकिंग विकास की अवरुद्ध दशा को सुधारने के लिए सुझाव देने हेतु तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने कई आयोग / जांच समितियों का गठन किया जिनमें प्रमुख थे:

1. भारतीय वित्त और मुद्रा पर रॉयल कमीशन (1913)
2. भारतीय वित्त और मुद्रा पर रॉयल कमीशन (1925)
3. केन्द्रीय बैंकिंग जांच समिति (1931)

भारतीय बैंकिंग के इतिहास में इनकी सिफारिशों का योगदान महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इन्हीं की अनेक सिफारिशों में से एक महत्वपूर्ण सिफारिश देश में एक केन्द्रीय बैंक की स्थापना का सुझाव शामिल था। तदनुसार 1935 में भारतीय रिज़र्व बैंक का अंशधारियों के बैंक के रूप में गठन किया गया जो आज़ादी के बाद 1949 में राजकीय स्वामित्व वाले बैंक के रूप में बदल गया।

सहकारी बैंकिंग - भारतीय रिज़र्व बैंक की भूमिका

सहकारी बैंकिंग और सहकारी बैंकों के विकास में भारतीय रिज़र्व बैंक ने अपने गठन के पश्चात से ही महती भूमिका निभाई है। भारतीय अर्थ व्यवस्था में कृषि के व्यापक महत्व को देखते हुए देश के केन्द्रीय बैंक पर यह दायित्व डाला गया कि वह कृषि और अन्य विकास संबंधी ऋण सुविधाओं में विस्तार और समन्वय के लिए सुनियोजित प्रयास करे। रिज़र्व बैंक की स्थापना के समय से ही इस बारे में अधिनियम में इस आशय के प्रावधानों का स्पष्ट उल्लेख किया गया। इन्ही प्रावधानों के अनुसरण में रिज़र्व बैंक में एक विशेष विभाग का गठन किया गया जो कृषि ऋण विभाग के नाम से जाना गया। राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) के गठन के साथ ही इस विभाग के अनेक कार्य नाबार्ड को सौंप दिए गए किन्तु नीति निर्धारण संबंधी विषयों, समन्वय, व समीक्षा में व्यापकता लाने

के लिए रिज़र्व बैंक के अन्तर्गत ग्रामीण आयोजना और ऋण विभाग कार्यरत है। इसी प्रकार शहरी सहकारी बैंकों के कार्यकलापों की देख रेख के लिए अलग से शहरी सहकारी बैंक विभाग कार्यरत है।

कृषि संबंधी ऋण समस्याओं के अध्ययन के उपरान्त एकत्रित निष्कर्षों से सरकार को अवगत कराना और सुधारात्मक उपायों को लागू करने के लिए सुझाव देना जैसे कार्य बैंक ने अपनी स्थापना के तुरन्त बाद से ही करने प्रारम्भ कर दिए थे। 1936-1937 में अपने प्रतिवेदनों के माध्यम से रिज़र्व बैंक ने सरकार को बताया कि भारतीय कृषि में कृषकों को ऋण प्रदान करने में साहूकारों का वर्चस्व रहा है और सूदखोरी जैसी शोषणात्मक प्रवृत्तियां ग्रामीण समाज में व्यापक रूप से फैली हुयी हैं, उन पर लगाम लगाने के लिए कानून बनाए गए। इन सिफारिशों के अनुसरण में कुछ सुधारात्मक उपायों हेतु तत्कालीन सरकार द्वारा कुछ कदम भी उठाए गए लेकिन इसके कार्यकलापों में गति आजादी के बाद ही आई। रिज़र्व बैंक की पहल या उसके सक्रिय सहयोग/समर्थन के फलस्वरूप घटित दूरगामी परिणाम की कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख संक्षेप में नीचे किया जा रहा है :

क) ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति

अनेक विसंगतियों के बीच पला और पनपा सहकारी बैंकिंग क्षेत्र, ग्रामीण ऋण जो उसका प्रमुख कार्यक्षेत्र था, में कुछ खास योगदान नहीं कर पाया। इसी पृष्ठभूमि में फरवरी 1951 में रिज़र्व बैंक के तत्वावधान में देश के कुछ चुने हुए सहकारी कार्यकर्ताओं, अर्थशास्त्रियों एवं सम्बद्ध प्रमुख व्यक्तियों का एक सम्मेलन हुआ जिसमें कृषि ऋण विस्तार के क्रम में दूरगामी नीतिगत निर्णय, क्रियाविधियों एवं इस दिशा में सुधार के अन्य उपाय सुझाने के लिए एक समिति का गठन किया गया जो स्थिति का विशद अध्ययन कर सुझाव दे। इस समिति ने अनेक सुझाव दिए जिनमें कुछ प्रमुख निम्न प्रकार हैं :-

- राज्य सरकार सहकारी संस्थाओं में एक प्रमुख भागीदार के रूप में सहभागी हो,
- उत्पादन उन्मुख ऋण नीति तथा एकीकृत ऋण योजना अपनाई जाए,
- विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में उचित समन्वय स्थापित किया जाए तथा
- सहकारी बैंकिंग संस्थाओं का प्रबन्धन कुशल एवं प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं द्वारा किया जाए।
- इन सिफारिशों के अनुसरण में रिज़र्व बैंक द्वारा दो निधियों की स्थापना की गयी जो कालान्तर में ऋण विकास का महत्वपूर्ण आधार बनीं। ये निधियां थीं :-

1. राष्ट्रीय कृषि ऋण (दीर्घावधि परिचालन) निधि

इस निधि की स्थापना 1956 में दस करोड़ रुपये के अंशदान से हुई जो 31 मार्च, 2010 तक 14,417 करोड़ रुपये हो गयी। इस निधि का उपयोग निम्न कार्य के लिए किया जा सकता था:-

क) सहकारी ऋण संस्थाओं की शेयर-पूँजी में योगदान के लिए राज्य सरकारों को 20 वर्ष तक के लिए ऋण स्वीकार करना,

ख) राज्य सहकारी बैंकों, ग्रामीण बैंकों को सम्बन्धित प्रयोजनों के लिए 5 वर्ष तक के लिए मध्यावधि ऋण प्रदान करना,

ग) भूमि विकास बैंक के ऋण-पत्रों की खरीद अथवा 20 वर्ष तक के लिए ऋण प्रदान करना,

घ) कृषि पुनर्वित्त विकास निगम को 20 वर्ष तक की अवधि के लिए ऋण प्रदान करना।

2. राष्ट्रीय कृषि ऋण (स्थिरीकरण) निधि

इस निधि की स्थापना 1956 में एक करोड़ रुपयों के अंशदान के साथ की गई। 31 मार्च, 2010 को इस निधि में अंशदान 1566 करोड़ रुपये हो गया। इस निधि में से राज्य सहकारी बैंकों को मध्यावधि ऋण देने के लिए राशि का उपयोग किया जा सकता था जबकि वे सूखा, अकाल, अथवा अन्य प्राकृतिक आपदाओं के कारण अपनी देय राशियों को समय पर चुकता न कर सकें। इस व्यवस्था से अल्पावधि ऋणों को मध्यावधि ऋणों में बदलने का मार्ग प्रशस्त हुआ जो प्राकृतिक आपदाओं के समय कृषकों को उत्पादन ऋण स्रोत जारी रखने के लिए अति महत्वपूर्ण आवश्यकता थी। इन निधियों की स्थापना ने सहकारी ऋण सुविधाओं के विकास को स्थायित्व प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इन निधियों की व्यवस्था का भार अब नाबार्ड पर है।

ग) कृषि पुनर्वित्त और विकास निगम

1963 में रिज़र्व बैंक की पहल पर स्थापित यह निगम मूलत: एक पुनर्वित्त एजेन्सी थी। इसका मुख्य उद्देश्य कृषि विकास और उससे सम्बद्ध अन्य कार्यक्रमों के लिए पुनर्वित्त प्रदान करना अथवा अन्य प्रकार से मध्यावधि और दीर्घावधि ऋण प्रदान करना था। ऐसी बड़ी विकास योजनाएं जिन्हें बैंक या वित्तीय संस्थाएं अपने संसाधनों से वित्तपोषण करने की स्थिति में नहीं थे अथवा हिचकिचाते थे, निगम पुनर्वित्त के माध्यम से उन्हें सहायता प्रदान कर वित्तपोषण के लिए प्रेरित करता था। इस संगठन ने विकासात्मक भूमिका निभाने में विशिष्ट एवं सफल प्रयास रिज़र्व बैंक के सहयोग से किए हैं।

घ) अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण समीक्षा समिति

1950-51 से 1966-67 की अवधि के दौरान यद्यपि काफी कार्य हुआ लेकिन सहकारी बैंकिंग तन्त्र इतने बड़े देश में विभिन्न वर्गों की ऋण आवश्यकताओं को पूरा करने में सर्वथा अपर्याप्त सिद्ध हुआ एवं कोई उल्लेखनीय सुधार इन संस्थाओं की कार्यप्रणाली अथवा संसाधन संयोजन में नजर नहीं आया। सहकारी ऋण तन्त्र की क्षमता/सामर्थ्य का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि 1966-67 में प्राथमिक आधार की सहकारी समिति की औसत सदस्यता मात्र 149 थी, शेयर-पूँजी का औसत भी मात्र 795 रुपये का था और प्रति सदस्य शेयर-पूँजी योगदान मात्र 48 रुपये रहा। कार्यशील पूँजी का औसत भी प्रति समिति 34979 रुपये रहा। जारी किए गए ऋणों का औसत प्रति समिति 20431 रुपये रहा जो प्रति सदस्य मात्र 344 रुपये आता था। इन उपलब्धियों के परिप्रेक्ष्य में भला सहकारी तन्त्र से विकासोन्मुख कार्यक्रमों के वित्तपोषण की क्या अपेक्षा की जा सकती थी। इस संदर्भ में विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त सुझावों के क्रम में एक अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण समीक्षा समिति का गठन किया गया । इस समिति द्वारा अनेक सिफारिशें की गयीं जिनमें अन्य बातों के अतिरिक्त सहकारी बैंकिंग तन्त्र से संबंधित प्रमुख सिफारिशें निम्न प्रकार थीं :-

1. सहकारी तन्त्र के पुनर्गठन की प्रक्रिया जारी रखी जाए
2. ग्रामीण ऋण के लिए सहकारी तन्त्र पर ही निर्भर नहीं रहा जाए
3. सहकारी आन्दोलन (बैंकिंग) में रिज़र्व बैंक महती भूमिका अदा करे।

इस सिफारिशों के अनुसरण में सहकारी बैंकों की भूमिका को बढ़ावा देने के उद्देश्य से रिज़र्व बैंक द्वारा राज्य सरकारों, केन्द्रीय सरकार के परामर्श/सहयोग से शीर्ष/ जिला सहकारी बैंकों, भूमि विकास बैंकों के पुनर्स्थापन का कार्य भी हाथ में लिया गया, अतिदेयों के कारणों की समीक्षा कर सुधारात्मक उपाय लागू करने की दिशा में भी कदम उठाए गए। 1966 में सहकारी बैंकिंग प्रणाली को भारतीय रिज़र्व बैंक के सांविधिक नियमन के अन्तर्गत लाया गया। इस एक कदम से सहकारी बैंकिंग तन्त्र को नया रूप/कलेवर व मान्यता देने का मार्ग प्रशस्त हुआ।

नाबार्ड की स्थापना

कृषि और ग्रामीण विकास के बदलते स्वरूप के परिप्रेक्ष्य में एक ऐसी नियामक शीर्ष संस्था की आवश्यकता महसूस की जाने लगी जो समन्वित रूप से ग्रामीण वित्त/संस्थागत ऋण व्यवस्था, जिसका आकार/परिचालन निरंतर बढ़ रहा था, को प्रभावी और समर्पित रूप से संचालित कर सके। इस बैंक की रचना वस्तुत: रिज़र्व बैंक के ही ग्रामीण वित्त के कार्यकलापों को आगे बढ़ाने के एक उपाय के रूप में सोचा गया कदम था जो 1982 में अस्तित्व में आया। नाबार्ड सम्पूर्ण ग्रामीण ऋण प्रणाली के लिए एक पुनर्वित्त एजेन्सी के रूप में भी कार्य करेगा। रिज़र्व बैंक के साथ इसके आंगिक सम्बन्ध बने रहेंगे। समन्वित और वहनीय ग्रामीण विकास तथा सहकारी एवं ग्रामीण बैंकिंग / साख तन्त्र को संवर्धित करने के लिए समर्पित / एकनिष्ठ प्रयासों के क्रम में नाबार्ड, रिज़र्व बैंक के नीति निर्देशों के अनुरूप कार्य करेगा।

शहरी सहकारी बैंकिंग तन्त्र

भारत में शहरी क्षेत्रों में मध्य और निम्न आय वर्ग के लोगों को बैंकिंग सेवाएं प्रदान करने में शहरी सहकारी बैंकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सहकारी बैंकिंग क्षेत्र के रिज़र्व बैंक के विनियमन के अन्तर्गत आने के पश्चात से रिज़र्व बैंक द्वारा इस क्षेत्र के लिए अपनाए / उठाए गए नीतिगत उपायों / कदमों के फलस्वरूप इस क्षेत्र में अभूतपूर्व विस्तार और समेकन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुयी जिससे इस क्षेत्र ने न केवल अच्छी प्रगति की है वरन् उसके मजबूत होकर निकलने में भी सहायता की

है। गत दिनों रिज़र्व बैंक द्वारा की गई अनेक नीतिगत / ढांचागत पहलों ने इस क्षेत्र को मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है:

- शहरी सहकारी बैंकों के विलय / समामेलन विषयक मार्गदर्शी सिद्धान्त जारी करना
- 2005 में विज़न दस्तावेज के माध्यम से सहमति ज्ञापन द्वारा परामर्शी व्यवस्था लागू करना
- अव्यवहार्य इकाइयों का विलय / समामेलन या / और समापन
- नकारात्मक मालियत वाले शहरी सहकारी बैंकों की वित्तीय पुनर्रचना
- शहरी सहकारी बैंकों के लिए छत्र / शीर्ष संगठन और पुनरुज्जीवन निधि के गठन सम्बन्धी कार्यदल की स्थापना (2008 में)

रिज़र्व बैंक के सक्रिय मार्गदर्शन में शहरी सहकारी बैंक प्रगति पथ पर अग्रसर हैं और अनेक बड़े बैंक अच्छे स्थापित वाणिज्य बैंकों के समकक्ष सेवाएं प्रदान करने में सक्षमता प्राप्त करने की दिशा में सतत् प्रयत्नशील हैं।

वस्तुत: यदि समग्र रूप में देखा जाए तो भारतीय परिप्रेक्ष्य में देश के केन्द्रीय बैंक के मानक / औपचारिक दायित्वों को निभाने के अतिरिक्त भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा अनेक विकासात्मक / संवर्धनात्मक / समन्वय / मार्गदर्शी दायित्वों का निर्वहन किया गया है जिसका उदाहरण संभवत: अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। रिज़र्व बैंक की इन पहलों के फलस्वरूप भारत में बैंकिंग सुविधाओं / सेवाओं में विद्यमान क्षेत्रीय असमानताओं में कमी लाने, ऋण विनियोजन में सुधार तथा सहकारी बैंकिंग के समेकन / पुनरुज्जीवन को नई दिशा मिली है।

शहरी सहकारी बैंकों द्वारा प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र और कमजोर वर्ग को दिए गए अग्रिम

(मार्च 2010 के अंत में)

(राशि करोड़ रुपए में)

क्षेत्र	प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र		जिसमें से कमज़ोर वर्ग	
	राशि	कुल अग्रिम मे प्रतिशत अंश	राशि	कुल अग्रिम मे प्रतिशत अंश
1	2	3	4	5
कृषि और संबंधित कार्य-कलाप	6,383	5,8	2,225	2.0
1. प्रत्यक्ष वित्त	1,882	1.7	611	0.6
2. अप्रत्यक्ष वित्त	4,501	4.1	1,614	1.5
खुदरा व्यापार	10,429	9.5	3,005	2.7
छोटे उद्यम	29,279	26.5	4,400	4.0
1. प्रत्यक्ष वित्त	20,622	18.7	3,207	2.9
2. अप्रत्यक्ष वित्त	8,657	7.8	1,193	1.1
शैक्षिक उधार	1,838	1.7	591	0.5
आवास उधार	17,923	16.2	5,213	4.7
सूक्ष्म कर्ज	4,779	4.3	2,077	1.9
अजा/अजजा के लिए राज्य सरकार द्वारा प्रायोजित संगठन	754	0.7	387	0.4
कुल	**71,385**	**64.7**	**17,898**	**16.2**

टिप्पणी : आंकड़े अनंतिम हैं।

स्रोत : भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति और प्रगति पर रिपोर्ट, 2009-10।

सहकारी क्षेत्र पर लागू विधिक प्रावधान

● डॉ. जयन्ती प्रसाद नौटियाल*

भारत में पूरब से लेकर पश्चिम तक और उत्तर से लेकर दक्षिण तक एक परंपरा सदियों से चली आ रही है - यह परंपरा भारतीय महिलाओं ने शुरू की थी। महिलाएँ दैनिक जीवन में खाना बनाने से पूर्व जब अन्न को निकालती हैं तो उसमें से एक मुठ्ठी भर अन्न बचाकर अलग बर्तन में रख देती हैं। जैसे किसी महिला के परिवार में रोज आठ मुठ्ठी चावल की खपत होती हैं तो गृहणियाँ चावल के भण्डार से आठ मुठ्ठी चावल निकालती हैं तथा इसमें से एक मुठ्ठी चावल अलग बर्तन में बचा लेती हैं। यह उनकी बचत का तरीका है। इसी प्रकार एक-एक मुठ्ठी चावल से हुई बचत को महिलाओं के समूह ने एकत्रित किया तो यह बचत देखते-देखते आज एक बड़े बैंक के रूप में आपके सामने है - आप जानते हैं इस एक मुठ्ठी चावल की सहकारिता ने आज के केनरा बैंक को जन्म दिया। दूसरा उदाहरण है - स्वदेशी भावना से प्रेरित होकर खान बहादुर हाजी अब्दुल्ला साहेब नामक एक परोपकारी व्यक्ति ने एक छोटे से समूह की सहकारिता से एक-एक पैसा जुटा कर एक छोटी-सी 'निधि' बनाई थी; जिसका उद्देश्य था सहकारिता की भावना से इस बचत द्वारा जनता को सहयोग देना। आपको आश्चर्य होगा कि इस सहकारिता का पहले दिन का कुल व्यापार था 38 रुपए, 13 आने और दो पैसे। आज इस छोटी सी निधि से डेढ़ लाख करोड़ से अधिक के व्यापार वाला, प्रौद्योगिकी में अग्रणी, विदेशों में प्रतिनिधि कार्यालय युक्त बैंक बन गया। यह छोटी सी बचत भारत के बेहतरीन बैंक, कार्पोरेशन बैंक के रूप में आपके सामने है।

यह सहकारिता का ही कमाल है। सहकारिता, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में सदियों से महत्वपूर्ण भूमिका निभाती आई है।

कानून और सहकारिता

सहकारिता चूंकि आपसी सहयोग की भावना से; अपने सदस्यों के हित के लिए बना संगठन होता है इसलिए इसके आरंभिक दौर में कानून का दखल नहीं होता है।

प्रकारांतर से यह कह सकते हैं कि सहकारिता ही एक-मात्र ऐसी संस्था है जिसका जन्म कानून से नहीं होता - बल्कि इसके विस्तार व इसकी प्रकृति और इसके कार्य-क्षेत्र के अनुसार इसे कानूनी जामा पहनाया जाता है। इसलिए कानून और सहकारिता तथा सहकारिता के क्षेत्र में विधि (कानून) का उद्‌भव व विकास अत्यधिक बहु-आयामी होता है। इसका कारण यह है कि किसी भी सहकारी संस्था/समिति/संघ या संगठन का आरंभ सहकारी भावना से होता है व कालांतर में इसकी कार्य की प्रकृति के अनुसार अपना स्वरूप भी बदल देते हैं; जैसे कई बैंकों की शुरुआत एक सहकारी संगठन के रूप में हुई थी लेकिन इनका व्यवसाय बैंकिंग की ओर अधिक झुक गया। अत: इनका सहकारी स्वरूप बदल कर बैंकिंग में परिवर्तित हो गया व इन पर बैंकिंग विधि लागू हो गई। कुछ ऐसी सहकारी संस्थाएं थीं जो आरंभ में विधिक रूप में कुछ और थीं लेकिन वे कालांतर में बदल कर कंपनी बन गईं तथा कंपनी अधिनियम से नियंत्रित होने लगीं, कुछ सहकारी संगठन न्यास के रूप में परिवर्तित हो गए तो कुछ व्यापारिक संगठन बन गए; कुछ परोपकारी संगठनों में बदल गए।

इस प्रकार सहकारिता ने जो क्षेत्र चुना, वह उसी क्षेत्र के अधिनियमों व नियमों के अंतर्गत आ गई तथा उन्हीं नियमों/कानूनों से नियंत्रित होती रही। राज्य स्तर पर इन पर राज्य सरकार तथा केन्द्र स्तर पर केन्द्र सरकार के कानून लागू होते गए।

सहकारिता में कानून - आरंभिक दौर

सहकारिता के क्षेत्र में कानून यद्यपि पहले भी थे परन्तु वे पूर्णत: कानून न होकर नियम व विनियमों के रूप में थे। पूर्णत:

* सहायक महाप्रबंधक, कार्पोरेशन बैंक, आंचलिक कार्यालय, सफायर कॉम्प्लेक्स, चापेल रोड, हैदराबाद - 500 001

सहकारिता के लिए अधिनियम कानून 1912 में बनाया गया। इस अधिनियम को नाम दिया गया **'सहकारी समिति अधिनियम, 1912'** तथा इस अधिनियम में सहकारी समितियों के स्वरूप व उनकी कार्य-प्रकृति को सुपरिभाषित किया गया। इस अधिनियम के लागू होने के उपरांत सहकारिता आंदोलन को एक विशिष्ट दिशा मिली।

भारतीय संविधान में सहकारिता

भारतीय संविधान में सहकारिता को राज्य सरकारों के क्षेत्राधिकार का विषय माना गया है। इसलिए सहकारी समितियों पर राज्य सरकार द्वारा जारी; नियम व अधिनियम लागू होते हैं। आज प्रत्येक राज्य सरकार ने सहकारी समितियों के लिए विस्तृत नियम, अधिनियम व संहिताएँ तैयार की हैं तथा सहकारी समितियाँ राज्य के इन नियमों के अधीन कार्य करती हैं।

केन्द्र और राज्य - सहकारिता अधिनियम

सहकारी समितियाँ आज एक विराट तंत्र के रूप में उभर कर आई हैं। अत: इनका कार्य क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि ये कई राज्यों में फैली हैं तथा कई समितियाँ ऐसी हैं जो केन्द्र सरकार के अनुदान एवं सहयोग से चलती हैं तथा इनका विस्तार अन्य राज्यों में भी होता है इसलिए ऐसी समितियाँ **'सहकारी समिति अधिनियम, 2002'** द्वारा नियंत्रित होती है।

राज्य सरकार के सहकारी समिति अधिनियम

चूँकि भारत के संविधान में सहकारी समितियों पर राज्यों का क्षेत्राधिकार माना है अत: मूल रूप से सहकारी समिति जिस राज्य में स्थापित या गठित होती है, उस राज्य के कानूनों के तहत ही उन्हें कार्य करना होता है तथा राज्य द्वारा निर्मित नियम और कानून ही उन पर लागू होते हैं।

भारत के विभिन्न राज्यों ने सहकारी समितियों से संबधित अनेक कानून बनाए हैं तथा अनेक नियम व अधिनियम भी अधिनियमित किए हैं। इनमें प्रमुख नियम एवं अधिनियम इस प्रकार हैं :

1. राज्यों के सहकारी समिति अधिनियम (उदाहरण के लिए आँध्र प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम, 1964)
2. पारस्परिक सहयोग (Mutually Aided) सहकारी समिति अधिनियम
3. सहकारी समिति सेवा अधिनियम
4. सहकारी समिति अधीनस्थ सेवा नियम
5. सहकारिता समिति (अंतिम प्रावधान/विशेष प्रावधान) अधिनियम
6. सहकारी समिति एकल गवाक्ष (Single Window) अधिनियम
7. राज्य स्तरीय साख संरचना (Credit Structure) अधिनियम
8. सहकारी समिति प्रक्रिया अधिकरण नियम/अधिनियम
9. गन्ना फैक्ट्री/गन्ना विकास सहकारी समिति अधिनियम/नियम
10. विविध उद्योग, अर्थात, डेयरी, मुर्गी-पालन, पशुपालन, कपास उत्पादन, पापड़, अचार उत्पादन आदि से जुड़ी समितियों हेतु विशेष नियम व अधिनियम
11. सहकारी समिति संचालन एवं गठन से संबंधित विविध अधिनियम/नियम
12. ग्रामीण शिक्षा विद्युत, स्वास्थ्य, कृषि आदि से जुड़ी विभिन्न सहकारी समितियों हेतु निर्मित अधिनियम
13. सहकारी समिति विशेष प्रावधान नियम

उक्त अधिनियम निर्देशात्मक हैं। हर राज्य अपनी-अपनी जरूरत के अनुसार ऐसे अधिनियम बनाता है तथा ये अधिनियम उस राज्य में गठित समितियों पर लागू होते हैं। इन नियमों/अधिनियमों की संख्या प्रत्येक राज्य में दर्जनों में होती है।

सहकारी समितियों के नियंत्रण प्रावधान

सहकारी समितियों के नियमन एवं पंजीयन हेतु भी सुव्यवस्थित प्रावधान होते हैं तथा सहकारी समितियों के पंजीयक (रजिस्ट्रार) मुख्यत: इन समितियों के नियंत्रक प्राधिकारी होते हैं। नियमों अधिनियमों के अनुपालन हेतु कुछ सीमा तक ये प्राधिकारी उत्तरदायी माने जाते हैं; लेकिन यदि सहकारी समिति विशिष्ट प्रकार का कार्य करती है तो उस कार्य से संबंधित नियंत्रक एजेंसी/संस्था/संगठन के नियम भी सहकारी समितियों पर लागू हो जाते हैं। उदाहरण के लिए यदि कोई सहकारी समिति बैंकिंग का काम करती है तो उस पर भारतीय रिज़र्व बैंक का नियंत्रण हो जाता है तथा उन्हें ऐसे बैंकिंग कार्य के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक से लाइसेंस भी लेना पड़ता है।

बैंकिंग विनिमयन अधिनियम एवं सहकारी समितियाँ

यद्यपि प्राथमिक साख समितियों (Primary Credit Societies) तथा भूमि विकास बैंकों पर अनुज्ञप्ति (Licencing) संबंधी प्रावधान लागू नहीं होते हैं, परन्तु बैंककारी विनियमन अधिनियम, 1949 (Banking Regulation Act, 1949) के भाग V की धारा 56 के अनुसार कतिपय प्रावधान; आशोधनों के साथ सहकारी बैंकों पर लागू हैं। वस्तुत: बैंककारी अधिनियम के भाग V की धारा 56 को, 1965 के अधिनियम संख्या 23 की धारा 14 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था जो 1-3-1966 से प्रभावी हो गई थी। यह धारा वास्तव में इतनी व्यापक एवं इतनी विस्तृत है कि यह सहकारी समितियों पर बैंककारी अधिनियम 1949 की समस्त प्रयोज्यता को विश्लेषित करती है। कहने का आशय यह है कि धारा संख्या 56 किसी छोटे-मोटे अधिनियम से कम नहीं है।

सहकारी बैंक (नामांकन) नियम 1985

बैंककारी विनियमन अधिनियम 1949 की धारा 52, धारा 45ZA, 45ZC, 45ZE,के साथ पठित, तथा धारा 56 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए सहकारी बैंकों में नामांकन सुविधा को लागू करने के लिए 1985 में यह नियम बनाए गए हैं जो सहकारी बैंकों पर समान रूप से लागू हैं।

अभिलेखों की सुरक्षा हेतु नियम

सहकारी बैंकों में अभिलेखों के रख-रखाव के लिए बैंककारी विनियमन अधिनियम की धारा 56 के साथ पठित धारा 45Y के अधीन प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग करते हुए केन्द्र सरकार ने भारतीय रिज़र्व बैंक के साथ परामर्श करके सहकारी बैंकों के लिए 'सहकारी बैंक (अभिलेख धारण) अवधि नियम, 1985 [The Co-operative Banks (Period of Preservation of Records) Rules, 1985] बनाए हैं। इन नियमों में बैंक के विभिन्न प्रकार के दस्तावेजों को विभिन्न अवधियों तक सुरक्षित रखने के प्रावधान किए गए हैं।

सहकारिता के विविध विधिक प्रावधानों की अद्यतन स्थिति

समय की माँग को देखते हुए भारत सरकार ने सहकारिता संबंधी कानूनों में बदलाव व संशोधन हेतु विधेयक तैयार किया है। इसके द्वारा सहकारिता को और अधिक स्वायत्तता देने, बाहरी दबाव से मुक्त करने तथा जनतांत्रिक ढंग से कार्य करने के लिए सक्षम बनाने व सहकारिता से जुड़े प्रबंधन संबंधी मुद्दों को समाहित किया है। इस विधेयक के पारित हो जाने के उपरान्त सहकारी आँदोलन सही अर्थों में अपने ईप्सित स्थान पर पहुँचेगा व भारत के चहुँमुखी विकास में अग्रणी भूमिका निभा सकेगा।

सहकारी अधिनियम को प्रभावी बनाने हेतु सुझाव

सहकारिता संबंधी कानूनों में बदलते समय के अनुरूप परिवर्तन लाने की आवश्यकता है क्योंकि, भूमण्डलीकरण के इस दौर में सहकारी समितियाँ देश की सीमाओं को लाँघ कर विदेशों तक अपनी पहुँच बना रही हैं। अत:, इस परिप्रेक्ष्य में सहकारिता कानून में संशोधनों की नितांत आवश्यकता है।

सहकारिता कानून में निम्नलिखित मदों पर स्पष्ट कानूनी प्रावधान होने चाहिए :

1. समिति की चुनाव प्रक्रिया को नियत अवधि में कराने के कठोर नियम

2. सदस्यता की सीमाएँ तथा सुपरिभाषित अर्हताएँ

3. प्रबंधन में व्यावसायिकता (प्रोफेशनल एप्रोच) हेतु प्रावधान

4. सहकारी संस्थाओं में पनप रहे अपराधों हेतु अलग से न्याय प्रक्रिया का गठन (सहकारिता ट्रिब्यूनल)

5. अ.जा./अ.ज.जा./पिछड़े वर्ग हेतु विशेष प्रावधान (प्रतिनिधित्व हेतु)

6. अधिनियमों में केन्द्र के नियंत्रण की सुनिश्चित स्थिति

सहकारी बैंकों हेतु कानून में परिवर्तन संबंधी सुझाव

1. विदेशी मुद्रा व्यापार के लिए अनुमति देने हेतु प्रावधान

2. बैंकिंग व्यवसाय हेतु समान अधिनियम लागू हों

3. बचत एवं साख समितियों में प्रोफेशनलों को स्थान दिया जाए (विशेषज्ञ अधिकारियों की नियुक्ति का प्रावधान)

4. निधि एवं चिट-फंड से जुड़ी सहकारी संस्थाओं का उचित प्राधिकारी के पास पंजीयन व कार्य-क्षेत्र विनियमन

5. ज्वैलरों/सुनारों/हाउसिंग सोसायटियों में चलने वाले आर्थिक कार्य से जुड़े मुद्दों में पारदर्शिता (इन जगहों पर महिलाओं से प्रति माह सदस्यता शुल्क लिया जाता है तथा हर माह लाटरी निकाली जाती है। हर साल यह कार्य चलता रहता है। इसे सहकारी समिति के दायरे में लिया जाना चाहिए।)

6. बहु-आयामी सहकारी समितियों हेतु विशेष प्रावधान जैसे एम.ए.सी.एस (Mutually Aided Co-operative Societies) आदि के लिए।

7. सहकारी बैंकों में लाइसेंसिंग हेतु समान नीति व समान कार्य प्रकृति निर्धारण हेतु समुचित प्रावधान होने चाहिए।

यदि सहकारिता कानून में इन मुद्दों को भी शामिल कर लिया जाए तो सहकारिता कानून काफी प्रभावी हो जाएँगे व इससे सहकारी आन्दोलन को काफी बल मिलेगा।

इस प्रकार सहकारी क्षेत्र पर लागू कानूनों को और अधिक व्यावहारिक व प्रासंगिक बनाया जा सकता है।

यह सर्वविदित तथ्य है कि किसी भी संगठन में विधिक व्यवस्था कारगर हो और इसका पूरी ईमानदारी से अनुपालन हो तो इससे संस्था की बुनियाद मजबूत होती है। साथ ही नियंत्रण व विधि का कार्यान्वयन सही दिशा में हो तो संस्था का विकास बड़ी तेजी से होता है।

सहकारी संस्थाओं को लाइसेंस देना*

वित्तीय क्षेत्र आकलन समिति (अध्यक्ष : राकेश मोहन, उपाध्यक्ष : श्री अशोक चावला) ने सिफारिश की थी कि जो ग्रामीण सहकारी बैंक 2012 तक लाइसेंस प्राप्त नहीं कर पाते हैं उन्हें कार्य करने की अनुमति न दी जाए। तदनुसार, अप्रैल 2009 के वार्षिक नीति वक्तव्य में वह प्रस्ताव किया गया था कि लाइसेंस रहित राज्य और केन्द्रीय सहकारी बैंकों को उनके काम में बाधा पहुंचाए बिना लाइसेंस देने के लिए एक रोडमैप तैयार किया जाए। इस उद्देश्य के लिए, राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) के साथ परामर्श करके, इन बैंकों को लाइसेंस प्रदान करने के लिए संशोधित दिशानिर्देश जारी किए गए थे। राज्य सहकारी बैंकों/जिला केन्द्रीय सहकारी बैंकों (डीसीसीबी) को लाइसेंस प्रदान करने संबंधी संशोधित दिशानिर्देश जारी होने के बाद 10 राज्य सहकारी बैंकों और 113 जिला केन्द्रीय सहकारी बैंकों को लाइसेंस प्रदान किए गए हैं। इससे 30 सितंबर 2010 की स्थिति के अनुसार लाइसेंस रहित राज्य सहकारी बैंकों की संख्या 17 से घट कर 7 और जिला केन्द्रीय सहकारी बैंकों की संख्या 296 से घट कर 163 रह गयी है।

* भारतीय रिज़र्व बैंक की मौद्रिक नीति 2010-11 की दूसरी तिमाही समीक्षा से साभार

विश्वव्यापी बाज़ार अर्थव्यवस्था में सहकारिता की भूमिका

● के. सी. मिश्रा*

भारत में आज़ादी के बाद के आर्थिक इतिहास में व्यापक रूप से तीन आर्थिक मॉडल अपनाये गये। आज़ादी के बाद से वर्ष 1966 तक हमारी अर्थव्यवस्था मिश्रित अर्थव्यवस्था थी। वर्ष 1966 से 1990 तक इसने सामाजवादी/नियंत्रित अर्थव्यवस्था का रूप धारण कर लिया था और वर्ष 1990 से अब वह विश्वव्यापी अर्थव्यवस्था बन गयी है। मिश्रित अर्थव्यवस्था के दौर में उत्पादन एवं वितरण दोनों ही चैनलों में सरकारी और निजी क्षेत्र की भागीदारी रही। उस अवधि में निजी क्षेत्र की क्षमता सीमित थी। अत: प्रमुख विकासात्मक परियोजनाएँ बुनियादी सुविधाएँ एवं सामाजिक कल्याण सरकारी दायित्व का हिस्सा थे जिसकी अपनी पूंजीगत सीमाएँ थी। अत्यावश्यक वस्तुओं / उपभोज्य वस्तुओं का उत्पादन, जिसमें निजी निवेश करना आवश्यक था, निजी क्षेत्र के हाथों में था। तथापि, समान वितरण को सुनिश्चित करने के लिए सरकार ने अत्यावश्यक वस्तुओं एवं सेवाओं का वितरण अपने नियंत्रण में ही रखा था। इस महत्वपूर्ण मोड़ पर उत्पादन एवं उसके वितरण के लिए सहकारिता के दृष्टिकोण को एक विकल्प के रूप में आज़माया गया ताकि उत्पादन और वितरण के बीच पूँजी और क्षमता संबंधी अंतरालों को पाटा जा सके। इस प्रकार सहकारिता को इस प्रयोजन के लिए आदर्श और महत्वपूर्ण माना गया तथा उन्हें न केवल वास्तविक क्षेत्र में बल्कि वित्तीय क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण भूमिका सौंपी गयी। भारतीय स्टेट बैंक और उसके सहयोगी बैंकों तथा कुछ सीमा तक डाक सेवा को छोड़कर वित्तीय सेवा उद्योग मुख्यत: निजी क्षेत्र के पास था। आवश्यक बुनियादी सुविधाओं के अभाव में कृषि और ग्रामीण क्षेत्र में वित्तीय सेवाएँ प्रदान करने के लिए निजी क्षेत्र को कोई प्रोत्साहन नहीं था। सहकारिता को इसमें बहुत बड़ी भूमिका निभानी थी और आगे चलकर यह क्षेत्र सबसे बड़ा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रोजगार निर्माता भी बन गया। आयोजना की प्रक्रिया में भी सहकारिता के लिए सुस्पष्ट और महत्वपूर्ण भूमिका अभिनिर्धारित की गयी। इस क्षेत्र को सरकारी समर्थन एवं प्रोत्साहन की आवश्यकता थी जो आगे चलकर निरंतर रूप से उपलब्ध होती गयी। प्रारंभ में भले ही उसका स्वागत किया गया और वह उस समय आवश्यक भी था, तथापि, बाद में यह क्षेत्र पूरी तरह से सरकार/सरकारी एजेंसियों पर आश्रित हो गया और आत्मनिर्भर होने के बदले लालफीताशाही के चंगुल में फँस कर रह गया।

समावेशी वृद्धि और विकास को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक पूँजी, क्षमता एवं प्रयास की अत्यधिकता के कारण मिश्रित अर्थव्यवस्था के आर्थिक-सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन कर वर्ष 1966 में समाजवादी अर्थव्यवस्था का ढाँचा अपनाया गया। इस समय सरकारी क्षेत्र को आर्थिक वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका सौंपी गयी। वित्तीय क्षेत्र में भी निजी बैंकों के राष्ट्रीयकरण, नयी विकास संस्थाओं की स्थापना, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, आइसीआइसीआइ, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, स्थानीय क्षेत्र बैंक आदि की स्थापना करते हुए परिवर्तन लाया गया। यद्यपि, सहकारिता ने विशेष रूप से कृषि और ग्रामीण क्षेत्र में अपनी भूमिका निभाना जारी रखा तथापि, उनके प्रयासों को इन नयी संस्थाओं ने तथा सरकार एवं भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा की गयी पहलों ने अपना समर्थन भी जारी रखा। सहकारी क्षेत्र ने ग्रामीण एवं कृषि अर्थव्यवस्था के विकास में अपना अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान दिया।

वैश्वीकरण और उसका सामाजिक-आर्थिक प्रभाव

वैश्विक अर्थव्यवस्था का मूल मंत्र है बाज़ार के घटकों के क्रियाकलापों में हस्तक्षेप न करने की नीति को अपनाते हुए अर्थव्यवस्था को उदार, नियंत्रणमुक्त, विनियमन रहित बनाते हुए उसका निजीकरण करना। दूसरे शब्दों में इस दृष्टिकोण को अपनाकर स्वयं को सही/नियमित करने की बाज़ार की क्षमता पर विश्वास दर्शाया जाता है। तथापि, हाल ही के आर्थिक संकट ने इस विश्वास को हिला दिया है। वैश्वीकृत वातावरण में टिके रहने के लिए और कार्यरत रहने

* महाप्रबंधक एवं संकाय सदस्य, कृषि बैंकिंग महाविद्यालय, भारतीय रिज़र्व बैंक, पुणे

के लिए बाज़ार के घटकों की गतिविधि यदि मूल मंत्र बन जाए तो क्या उसमें सहकारिता की कोई भूमिका हो भी सकती है? और यदि इसका उत्तर हाँ में है तो फिर किस रूप में?

औपचारिक तौर पर ''वैश्वीकरण" की कोई परिभाषा नहीं दी गयी है। अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा अलग-अलग रूप से उसका अर्थ निकाला जाता है। जब आर्थिक विकास के परिप्रेक्ष्य में उसका उल्लेख किया जाता है तो सूज़न जॉर्ज कहती हैं कि इस शब्द से यह आभास मिलता है कि विश्व के सभी क्षेत्रों के सभी लोग किसी एक ही आंदोलन में लगे हुए हैं और सबको समाविष्ट करने वाला एक विशालकाय तंत्र है और सभी भविष्य के सुनहरे सपने को साकार करने के लिए चल पड़े हैं। इस संकल्पना के समर्थकों ने उसे किसी भी देश और उसकी जनता की सारी आर्थिक बीमारियों का एक मात्र इलाज माना है।

वित्तीय वैश्वीकरण की कमान कंपनियों और निजी बैंकों ने संभाल ली है। अत: यह आश्चर्य की बात नहीं है कि नये नियम उन्हीं के हितों की रक्षा करते हैं और बाज़ार के तत्वों के लिए और खुलेपन को सुनिश्चित करते हैं। इन नये नियमों के अंतर्गत आम आदमी के लिए यहाँ तक कि विशेषज्ञ के लिए भी कोई सुरक्षा ही उपलब्ध नहीं है। किसी को भी किसी भी समय प्रणाली से आसानी से हटाया जा सकता है। यदि मनुष्य का विकास ही वैश्वीकरण का उद्देश्य होता तो इसे स्वीकार करना ही होगा कि वैश्वीकरण पूर्णत: असफल रहा है। बाज़ार के तत्व और अंतरराष्ट्रीय नौकरशाहियों को नियम निर्धारित करने की अनुमति प्राप्त है। उसके परिणाम हमारे इर्द-गिर्द दिखाई दे रहे हैं। मेक्सिको संकट के बाद और वर्ष 1994-95 के अवमूल्यन के बाद आधे से अधिक मेक्सिकन आबादी गरीबी की रेखा के नीचे चली गयी इसके पहले एशियन टाइगर्स को पैरागॉन के रूप में अलग-अलग किया गया। आज इंडोनेशिया में भुखमरी वापस लौट आयी है। कोरिया में कर्मचारियों को अपने तथा परिवारों के लिए कोई आशा नज़र नहीं आ रही और इसीलिए वहाँ पर आत्महत्या करने वालों की संख्या एकदम बढ़ गयी है। स्थानीय तौर पर उनकी मृत्यु को आइएमएफ डेथ कहा जाने लगा है। रशिया में एक दशक के बीच आयुर्मान 7 वर्ष से घट गया है जो 20वीं सदी का अनसुना सत्य है। तथाकथित ''उभरते बाज़ारों" में अनियंत्रित वित्तीय सट्टेबाजी से प्रभावित देशों में बहुत बड़ी आबादी के समक्ष विकराल समस्या पैदा हो गई है। भारत में किसानों की आत्महत्याएं बहुत बड़ी सामाजिक एवं राजनैतिक समस्या बन गयी है। छोटे कृषकों की उपजाऊ खेती योग्य जमीन को बहुत कम कीमत देते हुए सरकार उन्हें खरीद लेती है। ये जमीनें आगे इकॉनॉमिक जोन्स/इंडस्ट्रियल ईस्टेट, निजी टाउनशिप और अन्य लाभ कमाने वाली परियोजनाओं के लिए निजी उद्यमों के माध्यम से निजी कंपनियों को सस्ते दामों में उपलब्ध करायी जाती हैं। इससे उसी भूमि से 300 से 400% तक लाभ कमाया जाता है। इसी के परिणाम स्वरूप कई सारे हिंसक आंदोलन हुए हैं और सरकारें तक गिर गयी हैं। भारत तो एक विशालकाय देश है और कितनी सारी जमीन बंजर पड़ी हुई है। ऐसी बंजर जमीन को क्यों न प्राप्त किया जाए और उस पर आर्थिक जोन्स, आदि बनाये जाएँ। किसानों को ही उनकी उपजाऊ जमीन से क्यों खदेड़ा जाए? इसका बारीकी से विश्लेषण करने पर ऐसा लगता है कि इन अधिग्रहणों के पीछे निश्चय ही कोई साजिश है। जो किसान अपने आप अपनी जमीन से विस्थापित होता है, निजी उद्यमों के लिए वह अपनी ही जमीन पर सस्ता और अकुशल मजदूर बन जाता है।

कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय, सेंटर स्कारा में अमेरिका के गैरी ए डिमिस्की द्वारा किए गए प्रायोगिक अध्ययन में इस बात को सिद्ध किया गया है कि वैश्वीकरण के विभिन्न चरण वित्तीय और सामाजिक वंचन निर्माण करते हैं। यह तो स्वाभाविक ही है, जब जीवित रहने और विकसित होने के लिए नियंत्रण और विनियमन के बिना गलाकाट प्रतिस्पर्धा होती है तो ऐसे समय बाज़ार के सहभागी बहुत प्रभावी और प्रतिस्पर्धात्मक बने रहते हैं और तब लागत कम करने और नौकरियों को समाप्त करने की आवश्यकता पैदा होती है। लाभप्रदता की स्थितियों में बने रहने के लिए एक और महत्वपूर्ण पहलू है इकॉनामीज ऑफ स्केल के तत्व को अपनाना जहां यह माना जाता है कि कम संसाधनों वाले और कम मात्रा में लेनदेन करने वाले व्यक्ति जोखिम और लागत को बढ़ाएंगे और इसीलिए बाजार के खिलाड़ी लागत-लाभ विश्लेषण की योजना में उन्हें शामिल नहीं करते। अत: ऐसे सहभागी इन लोगों को हटा देते हैं। वित्तीय सेवाओं सहित अन्य संसाधनों के वंचन का परिणाम उनके वित्तीय वंचन में हो जाता है और वे आर्थिक विकास में भाग नहीं ले पाते। इस प्रकार के वित्तीय वंचन से सामाजिक

वंचन और राजनीतिक वंचन भी हो जाता है। अपने ही जीवन के हर क्षेत्र से वंचित होने की भावना पूरे सिस्टम से अलग-थलग पड़ने की भावना को पैदा करती है और उसके विरुद्ध शिकायत करने लगती है। इसका कुछ भी परिणाम हो सकता है और यह जरूरी नहीं कि वह हर समय शांतिपूर्ण हो। समाज विरोधी तत्वों द्वारा देश के राजकीय एवं अन्य गवर्नेंस विन्यास के विरोध में इस प्रकार के वंचित समूहों को बरगलाया जा सकता है।

विश्व के विभिन्न भागों में जो विभिन्न आर्थिक संकट पैदा हो रहे हैं, जिसमें हाल ही में 'सब प्राइम क्राइसिस'नाम से पैदा हुआ संकट भी शामिल है, इस बात का गवाह है। ऐसा कौन सा मॉडल है जो न केवल वृद्धि को प्रोत्साहित करता है, बल्कि समावेशी वृद्धि और वित्तीय समावेशन के अंतिम उद्देश्यों को भी हासिल करने में सहायता प्रदान करता हो ? सहकारिता मॉडल में, यह निहित है, जिसका मूलमंत्र और मुख्य तत्व ऊपर उठायी गयी सभी चिंताओं का निवारण करते हैं।

सहकारिता - धारणीय समावेशी वृद्धि का समाधान

सहकारिता का जन्म भी उन्नीसवीं शताब्दी में लगभग ऐसी ही स्थितियों में हुआ था जब छोटी आमदनी वाले लोग, किसान आदि सामाजिक और वित्तीय रूप से वंचित थे। वे विकास और वृद्धि की प्रक्रिया का हिस्सा नहीं थे। समाज के वंचित और गरीब तबके के लोगों को समाज एवं अर्थव्यवस्था की मुख्य धारा में लाने के लिए सहकारिता को एक आदर्श संस्थागत व्यवस्था माना गया जो स्वस्फूर्त, स्वैच्छिक और पारस्परिक तथा सेवा उन्मुख मूल्यों पर आधारित थी, न कि लाभ कमाने के मूल्यों पर। उससे अर्थव्यवस्था, सरकार और पूरे सिस्टम को भी किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुंचती थी।

चूँकि सहकारिता आर्थिक और सामाजिक दोनों ही उद्देश्यों को पूरा करती है, उसके पास उसके अपने मूल्य हैं और उसका अपना समुदाय भी है और उनका दृष्टिकोण भी लोकोन्मुख है, अत: वह आजादी, समानता, सुरक्षा, और सम्मान के साथ आर्थिक वृद्धि का नेतृत्व कर सकती हैं और वैश्वीकरण का यथोचित स्थानीय जबाब भी हो सकती है।

हम 60 और 70 के दशक में प्रसिद्ध इस कहावत को याद कर सकते हैं कि ''सहकारिता असफल हो चुकी है परंतु उसका सफल होना बहुत जरूरी है।'' इसमें इस देश की आर्थिक वृद्धि तथा राजकीय आर्थिक स्थिरता में सहकारिता की आवश्यकता तथा उसके महत्व को अधोरेखित किया गया है। वैश्वीकरण के सामाजिक दुर्गुणों और गलत प्रभाव तथा उसके खतरे के चलते अब यह उक्ति भूत काल की अपेक्षा इस समय अधिक संगत लगती है। पूरे विश्व में विभिन्न देशों एवं संयुक्त राष्ट्र तथा आईएलओ, आदि जैसे वैश्विक संगठनों ने वैश्वीकरण के गलत प्रभावों को सीमित करने में तथा सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिरता को सुनिश्चित करने के लिए सहकारिता के उपयोग तथा तार्किकता का महत्व, उसके मूल्य और तत्वों को एवं उस पर आधारित कारोबारी मॉडेल के महत्व को समझ लिया है। उदाहरण के तौर पर यूनाईटेड नेशंस जनरल एसेंब्ली ने वर्ष 1996 के अपने संकल्प सं 51/58 (ई) (ए) (सी) (एफ) (आर) (एस) में और दिनांक 13 जुलाई 2009 को चौसठवें सत्र में प्रस्तुत की गई सेक्रेटरी जनरल की रिपोर्ट में सामाजिक आर्थिक विकास में सहकारिता के महत्व को तथा वित्तीय सहकारिता विश्व भर में फैले खाद्यान्न एवं वित्तीय संकटों के परिप्रेक्ष्य में किस प्रकार खाद्यान्न सुरक्षा तथा प्रभावी और समावेशी वृद्धि के लिए दीर्घावधि समाधान प्रदान कर सकती है इस बात के महत्व को अधोरेखित किया है। यूएन जनरल असेंब्ली ने सहकारिता के विभिन्न मूल्यों एवं तत्वों की प्रशंसा की है और इस बात पर बल दिया है कि सहकारिता स्वैच्छिक तथा खुली सदस्यता, सदस्यों का लोकतांत्रिक नियंत्रण, सदस्यों की आर्थिक सहभागिता, स्वायत्तता एवं स्वतंत्रता, शिक्षा, प्रशिक्षण एवं सूचना, सहकारी संस्थाओं के बीच सहयोग प्रदान करती है और अपने समुदाय के प्रति चिंतित रहती है ताकि वे आर्थिक विषमता वंचन और गवर्नेंस के लोकतांत्रिक पक्ष को खतरा पैदा करने वाली समस्याओं को मिटा सके। यूएन भी 90 के दशक से आयोजित किए जा रहे यूनाईटेड नेशन्स ग्लोबल कॉन्फरेन्स और सेमिनारों द्वारा तैयार की गयी विकास की कार्यसूची को अमल में लाने के लिए सहकारिता आंदोलन को एक महत्वपूर्ण सहभागी मानता है। कोपनहेगन में सामाजिक विकास के लिए वर्ष 1995 में आयोजित विश्व समिट में भी विकास के लिए जन केंद्रित सहकारिता के महत्व को अधोरेखित किया था। सरकारों ने भी सहकारिता पर वर्ष 2001 के यूनाईटेड नेशन्स के दिशा निर्देशों को अपनाया था जो सहकारिता के गठन का मार्गदर्शन करते हैं तथा साथ

ही सरकारों की भूमिका को केवल इसके लिए उपयुक्त वातावरण बनाने तथा समान अवसर उपलब्ध कराने तक ही सीमित करते हैं ताकि सहकारी संस्थाएं निरंतर आधार पर काम कर सकें। वर्ष 2002 की आइएलओ सिफारिश सं 193 में सहकारिता के कारोबार की क्षमता को बढ़ावा देने की आवश्यकता पर बल दिया गया है ताकि वे निरंतर विकास और रोजगार निर्माण में अपना योगदान दे सकें। असेंब्ली का यह अवलोकन रहा कि वित्तीय सहकारिता गरीबों को सूक्ष्म वित्त सेवाएं प्रदान करने वाला सबसे बड़ा सेवा प्रदाता है। उन्होंने यह अनुमान लगाया है कि वित्तीय सहकारी संस्थाएं विश्व स्तर पर प्रतिदिन 2 अमेरिकी डॉलर की गरीबी रेखा के नीचे रहनेवाले 78 मिलियन लोगों को सेवा प्रदान करती हैं। विशेषत: दक्षिण एशिया में प्रतिदिन 2 अमेरिकी डॉलर से भी कम आमदनी वाले 54.50 प्रतिशत उधारकर्ताओं को सहकारी संस्थाओं ने अपनी सेवा प्रदान की है। यूनाईटेड नेशन्स ने भी यह उल्लेख किया है कि वित्तीय सहकारी संस्थाएं ऐसे लोगों को ऋण प्रदान करती हैं जो बड़े पैमाने पर बचत नहीं कर पाते अथवा ऋण के लिए बड़े बैंकों से संपर्क नहीं कर सकते। वे ऐसे बाजारों के संदर्भ में महत्वपूर्ण बन जाते हैं जहां कम आय होने की संभावना अधिक जोखिम अथवा लेनदेन की अधिक लागत के चलते वित्तीय सेवा प्रदाता नदारद रहते हैं। अपने कम लागत वाले ढांचे के कारण और कम लाभ का लक्ष्य सुविधाएं प्रदान करने में सक्षम होती हैं और उसकी वजह से वे भारी दरों पर ऋण के लिए आसान विकल्प पैदा कर सकते हैं और गरीबों के शोषण की संभावनाओं को भी कम कर देते हैं। इस प्रकार सहकारी संस्थाएं समावेशी और व्यापक सहभागी वृद्धि को हासिल करने में केंद्रीय भूमिका निभाती हैं बशर्ते उनको सही दिशा में विकसित किया गया हो। सबसे रोचक बात तो यह है कि वर्ष 2007-08 का वैश्विक वित्तीय संकट एकाधिकारी बहुराष्ट्रीय वित्तीय निगमों/उनके समूहों का किया धरा था। इस बारे में यूएन सेक्रेटरी जनरल की रिपोर्ट निश्चित रूप से पढ़ने योग्य है–

मौजूदा वित्तीय संकट ने वैकल्पिक वित्तीय संस्थाओं की भूमिका के महत्व और किसी एकमात्र तथा आर्थिक/वित्तीय उद्यमों पर निर्भर रहने में स्थित जोखिमों को गंभीरता से समझने पर मजबूर कर दिया है। इस संकट के दौरान सहकारी और ऋण यूनियन क्षेत्र के पास अपनी बचत रखने के लिए किसी सुरक्षित स्थान की तलाश करने वाले संतप्त जमाकर्ताओं की जमाराशियों का अंबार लग गया। इसके अतिरिक्त यह क्षेत्र विचारपूर्वक ऋण देने में सक्षम रहा जबकि निवेशकों के स्वामित्व वाले अन्य बैंकों ने अपनी कमजोर हुई पूंजी के कारण ऋण देने में कोताही बरतना चालू कर दिया। वित्तीय सहकारी संस्थाओं ने अपनी मजबूत स्थिति बनाए रखी और वास्तव में बचत एवं ऋण की मात्रा में वृद्धि दर्शायी। उदाहरणार्थ, नीदरलैंड में वर्ष 2008 में सहकारी बैंकों की बचत, लघु एवं मध्यम उद्योगों को ऋण तथा बंधक ऋणों में 30 से 40 फीसदी की वृद्धि देखी गयी। वर्ष 2008 में उससे स्थानीय सदस्य बैंकों की जमाराशियों में 20 प्रतिशत तो कारोबारी ऋणों में 16 प्रतिशत की वृद्धि हुई। अमेरिका में क्रेडिट यूनियनों ने 7 प्रतिशत अथवा 35 बिलियन डॉलर के अधिक ऋण दिए जबकि पारंपारिक बैंकों की ऋण की मात्रा वर्ष 2008 में 31 बिलियन डॉलर तक सीमित हो गयी! ब्राजील, कनाडा और आयरलैंड की वित्तीय संस्थाओं ने भी ऋण प्रदान करने के अपने पिछले स्तरों में वृद्धि दर्शाना जारी रखा। इन नतीजों से इस बात को बल मिलता है कि वित्तीय प्रणाली की लोच को बढ़ाने के लिए संस्थागत विविधता का और आर्थिक ढ़ांचे में सदस्यों के स्वामित्व वाले सहकारी कारोबारी मॉडल जैसे एक वैकल्पिक मजबूत कारोबारी मॉडल की भूमिका का बहुत महत्व है।

वित्तीय सहकारी संस्थाएं उन संस्थाओं में से है जिन्होंने हाल ही के आर्थिक संकट का तुलनात्मक रूप से बेहतर ढ़ंग से मुकाबला किया है। प्राथमिक और स्थानीय वित्तीय सहकारी संस्थाओं ने सहकारिता के नेटवर्क में स्वयं को अधिक स्थिर संस्थाओं के रूप में सिद्ध कर दिया है। यह वस्तुस्थिति कि पूरे विश्व में किसी भी क्रेडिट यूनियन को अपनी स्थिरता और मजबूती बनाये रखने के लिए सरकार से दोबारा पूंजी लेने की आवश्यकता नहीं पड़ी है, वित्तीय उथल-पुथल में टिके रहने की उनकी क्षमता को सिद्ध करती है। नीदरलैंड में सबसे बड़े बैंकों को पूंजी के समर्थन की आवश्यकता पड़ी। अपवाद था सहकारी बैंक। सहकारी संस्थाएं न केवल वित्तीय समावेशन में बल्कि सामाजिक समानता में और लोकतांत्रिक सहभागिता में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। उदाहरणार्थ, श्रीलंका और नेपाल में सहकारी संस्थाएं ही ऐसी स्वतंत्र संस्थाएं हैं जिन्हें

राजनैतिक पक्षों ने संघर्ष ग्रस्त क्षेत्रों में कार्यरत रहने की अनुमति दी है। जहां ऐसे संघर्ष समाप्त हो चुके हैं वहां सहकारी संस्थाएं अर्थव्यवस्था और नागरी समाज के नवनिर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

सहकारी संस्थाओं के लिए अपेक्षित सुधार

लेकिन क्या भारत में सहकारी संस्थाओं से जो अपेक्षाएं थीं वे उनको पूरा कर पायी हैं और क्या वे उपर की गयी चर्चा के अनुसार अपना दायित्व निभा पाएंगी? यह महसूस किया जाता है कि वे अभी भी इसके लिए और गरीबी रेखा के नीचे रहनेवाले लोगों के लिए चैतन्य से भरी संस्थागत व्यवस्था प्रदान करने के लिए सक्षम हैं। तथापि उन्हें अपनी प्रणालियों में इस अवधि के दौरान उभरी अपनी कुछ खामियों से उबरना होगा और कानूनी तथा ढांचागत दोनों ही प्रक्रियाओं में सुधार लाना होगा और परिचालनगत स्तर को भी सुधारना होगा। इस बारे में जिन बातों की ओर तत्काल ध्यान देना होगा उनका उल्लेख नीचे किया गया है:

1. सहकारिता की पहचान को मजबूत बनाना

मौजूदा प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण में, जहां आकार का महत्व बहुत है, कुछ संस्थाएं दूसरों की तरह बनने और गैर-सहकारी संस्थाओं के नक्शे कदम पर चलने के प्रयास करती हैं। विश्व के कुछ भागों में तो यह एक कड़वी सच्चाई बन चुकी है। अगर ऐसा होता है तो सहकारी संस्थाएं सहकारी नहीं रह सकेंगी, वे अपने उस धरातल को ही खो बैठेंगी जो उन्हें वित्तीय बाजारों में वैकल्पिक संस्थाओं का दर्जा देता है। सहकारिता के लिए उनमें मिशनरी की तरह काम करने की भावना नहीं बची है बल्कि अब कुछ असामाजिक तत्व इस सहकारी ढांचे का लाभ उठाते हैं और सहकारी संस्था के नाम पर उन्हें अपने निजी उद्यम के रूप में इस्तेमाल करते हैं। इस समस्या को सहकारिता से जुड़े सदस्यों को प्रशिक्षण और शिक्षा देकर सुलझाया जा सकता है। भारत में प्रत्येक राज्य के सहकारी संस्था अधिनियम में सहकारी शिक्षा निधि के निर्माण का प्रावधान है। यह निधि इकट्ठा तो की जाती है लेकिन उसका उपयोग उस तरह नहीं किया जाता जैसे कि प्रशिक्षण और शिक्षा के सिद्धातों के अनुसार किया जाना चाहिए।

2. प्रौद्योगिकी को अपनाना और उसे आत्मसात करना

वर्तमान में कारोबार का स्वरूप, खास कर वित्तीय क्षेत्र का, दिनोदिन यांत्रिकीकरण और ऑटोमेशन में परिवर्तित हो रहा है। आज ग्राहकों को टैक्नोलोजी चाहिए, क्योंकि इससे उन्हें संस्थाओं के साथ लेन-देन करना आसान हो जाता है, इसलिए सहकारी संस्थाओं को चाहिए कि वे समय के साथ चलें और उन्हें वे दें जो उन्हें चाहिए। आधुनिक प्रौद्योगिकी के साधनों के बिना वित्तीय संस्थाओं की कल्पना तक नहीं की जा सकती। भारत में सहकारी क्षेत्र में यांत्रिकीकरण/कंप्यूटरीकरण की गति बहुत धीमी है जिससे सहकारी संस्थाओं की कार्य-कुशलता, उत्पादकता, लाभ और बाज़ार में उनकी सहभागिता पर प्रतिकूल असर पड़ता है। यदि प्रौद्योगिकी को आत्मसात करने में किसी प्रकार की हिचक/विरोध और/या अक्षमता है तो उसे जागरूकता, प्रशिक्षण और कौशल-विकास के माध्यम से दूर किया जाना चाहिए ताकि सहकारी संस्थाएं न केवल बाज़ार के सहभागियों के साथ स्पर्धा कर सकें बल्कि वे सभी उत्पाद और सेवाएं अपने ग्राहकों को उपलब्ध करा सकें जो उनके प्रतियोगी उपलब्ध करा रहे हैं। इसके अलावा जो सहकारी संस्थाएं मार्केटिंग में लगी हुई हैं उन्हें ई-कॉमर्स का सहारा न केवल सक्षम प्रतिस्पर्धा के लिए बल्कि ग्राहकों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए लेना चाहिए।

3. मूल्य-वर्धित और नवोन्मेषी उत्पाद तथा सेवाएं प्रदान करना

सहकारी संस्थाओं के सदस्य और ग्राहक, दोनों ही उसी समाज के अंग हैं, जिसके कि अन्य लोग भी हैं, इसलिए वे उन सुविधाओं से वंचित नहीं रहना चाहते जो अन्य लोगों को उपलब्ध हैं। उन्हें नवोन्मेषी ऐसी सुविधाएं चाहिए जो उनकी आर्थिक और सामाजिक आवश्यकताओं को प्रभावशाली ढंग से और कुशलतापूर्वक पूरा करती हों। अत: यह जरूरी है कि शिक्षित और सक्षम नेतृत्व और प्रबंधन को उस तरह तैयार किया जाए ताकि वे ये सेवाएं दे सकें। सहकारी संस्थाओं में मूल्य-आधारित व्यावसायिक प्रबंधन केवल घोषवाक्य के रूप में ही प्रदर्शित न हो, बल्कि उन्हें दैनंदिन व्यवहार आचरण में लाया जाना चाहिए।

4. क्षमता निर्माण

सहकारी संस्थाओं की अंतर्निहित संरचना के कारण वे स्थानीय स्तर पर उन मानवीय तथा बुद्धिजीवी संसाधनों को आकर्षित तथा अपना नहीं सकती जो उनके प्रतिस्पर्धी अपनाते हैं। इससे व्यावसायिक रणनीति के निर्माण तथा स्पर्धा का सामना करने की उनकी क्षमता में भारी अंतर आ जाता है। अत: सहकारी संस्थाओं को प्रशिक्षित करना, उनका कौशल-विकास करना, लेखा-परीक्षा और लेखाकरण सेवाएं प्रदान करना, उनका तकनीकी मार्गदर्शन तथा उन्हें परामर्शी सेवाएं देना आवश्यक हो जाता है। यह उनके फेडरेशन द्वारा राष्ट्रीय या राज्य स्तर पर किया जाना चाहिए। बेहतर यह होगा कि सहकारी संस्थाओं के बीच भागीदारी व्यवस्था विकसित की जाए।

5. शासन संरचना को सुधारना

सबसे महत्वपूर्ण है शासन संरचना और सहकारी संस्थाओं की शैली जिनमें व्यवसाय के बदलते स्वरूप के अनुरूप सुधार लाने की जरूरत है। लेकिन दुर्भाग्यवश, इस दिशा में कोई सार्थक प्रयास नहीं किए गए। किसी भी संस्था की सफलता की गारंटी उसकी कारगर, कुशल, पारदर्शी और प्रतिबद्धता के आधार पर बनी शासन संरचना के बिना नहीं दी जा सकती। इसे कानूनी तथा चुनावी रूपरेखा में सुधार और संरचनात्मक परिवर्तन करके बदला जा सकता है।

6. सहकारी संस्थाओं के बीच व्यावसायिक गठजोड़ और सहकारिता को बढ़ावा देना

सहकारी संस्थाएं स्थानीय संगठन होते हैं जिनकी वैश्विक/व्यापक पहुंच नहीं होती इसलिए वे अपने बड़े प्रतिस्पर्धियों के साथ मुकाबला नहीं कर सकते। राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर उर्ध्वाकार और क्षैतिज लिंक विकसित करके इस कमी को पूरा किया जा सकता है क्योंकि ऐसे बाज़ारों में सफलता की एक शर्त यह होती है कि भागीदारों में रणनीतिक गठजोड़ स्थापित किया जाए। यदि सहकारी संस्थाओं में सहकारिता के सिद्धान्तों को सही मायने में कार्यान्वित किया जाता है तो उनके बीच भागीदारी/गठजोड़ को बढ़ावा दिया जा सकता है जिनके फलस्वरूप बड़े उद्यमी/संस्थाओं के साथ वे बराबरी से स्पर्धा कर सकते हैं।

7. ब्रांड छवि विकसित करना

दुर्भाग्यवश, हाल के कुछ वर्षों में भारत में सहकारी संस्थाओं के बारे में नकारात्मक विचार उभरे हैं। इस नकारात्मक छवि के कारण बाज़ार में सहकारी संस्थाओं की भागीदारी में तीव्रता से कमी तो आयी ही है, इसके अलावा विनियामकों और पर्यवेक्षकों ने भी इस पर कड़े नियम लाद दिए हैं। सहकारी संस्थाओं द्वारा नकारात्मक छवि को दूर करने और एक सुदृढ़ ब्रांड छवि को उभारने का कोई संयुक्त प्रयास नहीं किया गया जो इस अति-स्पर्धात्मक कारोबारी वातावरण में अत्यंत महत्वपूर्ण है। छवि उभारने की बात को इंटरनेशनल कॉपरेटिव एलायंस (आईसीए) ने भी मान्यता दी है, जिसने इस मामले पर विचार करना शुरू कर दिया है और जो अपने ''कॉपरेटिव इमेज एंड आइडेंटिटी प्रोग्राम'' नामक व्यापक कार्यक्रम के माध्यम से सहकारिता के अस्तित्व और छवि को विकसित करने और उसे उभारने के लिए प्रयासरत है। भारत की सहकारी संस्थाओं को चाहिए कि वे आइसीए के प्रयासों के साथ जुड़ें और इस संबंध में कुछ स्थानीय कार्यक्रमों पर विचार करें।

ऊपर उल्लिखित प्रयास पर्याप्त तो नहीं बल्कि सांकेतिक मात्र हैं। इन्हें लागू करने से सहकारी संस्थाओं को एक सफल कारोबारी मॉडल का रूप प्राप्त होगा जो वैश्वीकरण के अनुचित प्रभावों का सामना करने के लिए सक्षम होगा। वैश्विक बाज़ार अर्थ-व्यवस्था में मानवजाति के लिए सहकारिता ही एक ऐसी किरण है जो विश्व के विभिन्न भू-भागों में सहभागिता और समावेशक विकास के साथ-साथ राजकीय एवं सामाजिक स्थिरता को कायम रख सकती है।

संयुक्त राष्ट्र की आम सभा में एक संकल्प पारित किया गया है जिसमें **वर्ष 2012 को अंन्तरराष्ट्रीय सहकारिता वर्ष घोषित किया गया है**। यह आशा की जाती है कि यह केवल सहकारिता वर्ष ही नहीं होगा बल्कि इसके साथ वैश्विक अर्थव्यवस्था में सहकारिता का एक नया युग शुरू होगा। क्या भारत तब तक सहकारिता के क्षेत्र में आवश्यक सुधारों के साथ तैयार हो जाएगा? इस सवाल का जवाब आनेवाला समय ही दे पाएगा।

● श्रीमती सावित्री सिंह*

भारतीय अर्थव्यवस्था में सहकारी क्षेत्र का एक विशेष स्थान है। हमारे देश में सहकारी साख के साथ-साथ सहकारी बिक्री तथा सहकारी प्रसंस्करण पर भी बल दिया गया है। लेकिन साख सहकारिता ही वास्तविक अर्थ में सहकारी अवधारणा का प्रतीक है जो जर्मनी के प्रयोग से विशेषत: प्रभावित है। भारत में सहकारिता के सिद्धांत पर आधारित बैंकिंग के कई स्वरूप एवं स्तर विद्यमान हैं। आइए सहकारिता विशेषांक में इस बार हम ऐसे प्रमुख बैंकिंग स्वरूपों के बारे में संक्षेप में जानकारी हासिल करते हैं:

भूमि विकास बैंक

दीर्घावधि ऋण प्रदान करनेवाले बैंकों को भूमि विकास बैंक के नाम से जाना जाता है। इन बैंकों का इतिहास काफी पुराना है। वर्ष1920 में पंजाब में पहला भूमि विकास बैंक स्थापित किया गया था। मूलत: इन्हें भूमि बंधक बैंक के नाम से जाना जाता था लेकिन 1930 के दशक में भूमि बंधक बैंक अधिनियम के पारित हो जाने के बाद इन बैंकों का अस्तित्व उभरकर सामने आया और कई राज्यों में इनकी स्थापना की गई। इन बैंकों का मुख्य उद्देश्य है कृषि के विकास में सहायता करना एव कृषि उत्पादन को बढ़ाना। ये दो स्तरों पर कार्य करते हैं।

- **प्राथमिक भूमि विकास बैंक,** जिला स्तर पर कार्य करनेवाले बैंक हैं और इन्हें जिले के एक तालुका या कुछ तालुकाओं को कवर करने के उद्देश्य से बनाया गया था लेकिन अब ये एक विकास खंड को कवर करते हैं। सभी भूस्वामी इसके सदस्य बन सकते हैं और अपनी भूमि को बंधक रखकर ऋण ले सकते हैं।
- **केंद्रीय भूमि विकास बैंक,** राज्य स्तर पर कार्य करते हैं। प्राथमिक भूमि विकास बैंक तथा कुछ निजी प्रमोटर इसके सदस्य होते हैं। ये प्राथमिक भूमि विकास बैंकों एवं अपनी कुछ शाखाओं के माध्यम से दीर्घावधि ऋण प्रदान करते हैं। निधि जुटाने के लिए ये डिबेंचर जारी करते हैं जिनके लिए राज्य सरकार गारंटी प्रदान करती है। नाबार्ड एवं एलआइसी इन डिबेंचरों में बड़े पैमाने पर निवेश करते हैं। इसके अलावा नाबार्ड इन बैंकों को पुनर्वित्त सुविधा भी प्रदान करता है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अधिनियम, 1976 के तहत छह क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना के साथ इनका प्रारंभ हुआ। प्रत्येक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक एक अनुसूचित वाणिज्य बैंक अथवा राज्य सहकारी बैंक द्वारा प्रयोजित होता है। ऐसे बैंकों पर केंद्र सरकार, संबंधित राज्य सरकार एवं प्रायोजक बैंक का 50:15:35 के अनुपात में संयुक्त स्वामित्व होता है। इनकी अधिकृत पूंजी पांच करोड़ रुपये तथा प्रदत्त पूंजी एक करोड़ रुपये हो सकती है। प्रत्येक ग्रामीण बैंक के अध्यक्ष की नियुक्ति प्रायोजक बैंक की सिफारिश के आधार पर केंद्र सरकार द्वारा की जाती है। बैंक के निदेशकों की संख्या 9 से 15 तक होती है। निदेशकों में केंद्र सरकार, राज्य सरकार एवं प्रायोजक बैंक के प्रतिनिधि शामिल होते हैं।

इन बैंकों का कार्यक्षेत्र किसी राज्य में एक या अधिक जिलों वाले विशिष्ट क्षेत्रों तक सीमित होता है। ये बैंक अपने कार्यक्षेत्र में विशेषकर छोटे व सीमांत किसानों, कृषि श्रमिकों, ग्रामीण कारीगरों, छोटे उद्यमकर्ताओं और व्यापार तथा उत्पादक कार्यकलापों में लगे हुए कम साधनवाले व्यक्तियों को ऋण

* सहायक महाप्रबंधक, राजभाषा विभाग, भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

व अग्रिम प्रदान करते हैं। इनके द्वारा दिए जानेवाले ऋणों पर ब्याज दरें किसी भी विशिष्ट राज्य की सहकारी संस्थाओं की प्रचलित ब्याज दरों से अधिक नहीं होती। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने अपनी भौगोलिक स्थिति, ग्राहकों तक पहुंच एवं व्यवसाय की मात्रा के आधार पर ग्रामीण वित्तपोषण एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

अग्रणी बैंक योजना

सहकारिता पर आधारित बैंकिंग प्रणाली को ग्रामीण क्षेत्र की ऋण मांग को पूरा करने का मुख्य रूप से जिम्मा सौंपा गया था लेकिन उसके बावजूद इस क्षेत्र की मांग को पूरा करने में सहकारिता पर आधारित संस्थान असफल रहे। हरित क्रांति के बाद यह मांग और भी उभरकर सामने आई। तब वाणिज्य बैंकों की सहायता लेने पर विचार किया गया एवं परिणाम के रूप में अग्रणी बैंक योजना सामने आई। यह योजना ग्रामीण विकास एवं रूपांतरण का एक ऐसा माध्यम है जो वित्तीय संस्थाओं को प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्रों में ऋण प्रदान करने हेतु रूपरेखा प्रदान करती है ताकि अन्त:क्षेत्रीय असमानताएं कम की जा सकें और ऋण के साथ संबंधित निवेश सुविधाएं संयुक्त रूप से उपलब्ध कराई जा सकें।

इस योजना का मुख्य उद्देश्य बैंकिंग सुविधाओं के प्रावधान सहित क्षेत्रीय असमानताओं को कम करना एवं एरिया एप्रोच के माध्यम से जिलों में व्याप्त साख गैप को पूरा करना है। यह उल्लेखनीय है कि लीड या अग्रणी बैंक, अग्रणी जिलों में न तो बैंक व्यवसाय पर कोई एकाधिकार रखते हैं और न ही जिले के पूर्ण विकास की कोई जिम्मेदारी। वे तो सभी वित्तीय संस्थाओं एवं सरकार के विकास विभाग के बीच समन्वय स्थापित करते हैं। अग्रणी बैंक अपने जिलों में ऐसे क्षेत्रों का पता लगाते हैं जहां बैंकिंग एवं साख सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं।

सहकारिता का त्रिस्तरीय ढांचा

विश्व के अधिकांश देशों की भांति भारत में भी संस्थागत साख की व्यवस्था में सहकारी क्षेत्र की महत्वपूर्ण भूमिका है। चूंकि सहकारी संस्थाएं वैधानिक रूप से स्थापित देशी संगठन हैं अत: उन्हें परस्पर ज्ञान और पर्यवेक्षण के लाभ प्राप्त हैं। हमारे संघीय ढांचे में सहकारी संस्थाओं ने त्रिस्तरीय ढांचे का स्वरूप अपनाया है। शीर्ष स्तर पर राज्य सहकारी बैंक, जिला स्तर पर जिला मध्यवर्ती सहकारी बैंक और ग्राम स्तर पर प्राथमिक कृषि साख समितियां हैं।

● प्राथमिक कृषि साख समितियां

ये समितियां ग्राम स्तर पर किसानों को साख सुविधा प्रदान करती हैं। इनका मुख्य ध्येय होता है विशेष रूप से छोटे किसानों को पर्याप्त ऋण सुविधा उपलब्ध कराना। इसके अलावा ये उवर्रक, बीज, कृषि, उपकरण आदि का स्वयं अपने नाम से अथवा प्रतिनिधि के रूप में वितरण भी करती हैं। साथ ही ये ग्रामीण समाज के लिए कल्याणकारी आर्थिक कार्यक्रमों में भी सक्रिय भूमिका निभाती हैं। ये अपनी कार्यशील पूंजी के संग्रहण के लिए प्रवेश शुल्क, अंश पूंजी, जमाराशियों तथा जिला मध्यवर्ती सहकारी बैंकों, सरकार एवं अन्य संस्थाओं से प्राप्त ऋण पर निर्भर रहती हैं।

● जिला मध्यवर्ती सहकारी बैंक

जिला स्तर पर कार्य करनेवाले सहकारी बैंक जिला मध्यवर्ती सहकारी बैंक के नाम से जाने जाते हैं जो जिले में कार्यरत प्राथमिक कृषि साख समितियों एवं राज्य सहकारी बैंकों के बीच कड़ी का कार्य करते हैं। ये प्राथमिक कृषि साख समितियों को ऋण प्रदान कर उनकी निधिगत आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। इन्हें राज्य सहकारी बैंक द्वारा पुनर्वित्त प्रदान किया जाता है।

● राज्य सहकारी बैंक

किसी राज्य के सहकारी बैंकिंग ढांचे के शीर्ष पर होते हैं राज्य सहकारी बैंक। ये बैंक राज्य में जिला एवं ग्राम स्तर पर कार्यरत सहकारी बैंकों की निधिगत जरूरतों को पूरा करने के साथ ही सरकारी निर्देशों के अनुरूप उनकी कार्यप्रणाली पर भी निगरानी रखते हैं।

● शहरी सहकारी बैंक

सहकारिता के सिद्धांत पर आधारित एवं विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों में कार्य करनेवाले बैंकों का समावेश इस श्रेणी में किया जाता है। यद्यपि सहकारी ऋण संस्थाओं की उत्पत्ति

मूल रूप से कृषि क्षेत्र की जरूरतों को पूरा करने के लिए हुई थी लेकिन आगे चलकर यह पाया गया कि शहर/कस्बों के छोटे-मोटे कारीगरों एवं अल्प आय अर्जित करनेवाले लघु उद्यमियों को भी वित्तीय सहायता की अत्यंत आवश्यकता है और तब शहरी सहकारी बैंकों ने आकार लेना आरंभ किया। इनका जन्म सहकारी आंदोलन को कानूनी मान्यता मिलने के बाद की अवस्था में हुआ। इन बैंकों में राज्य सरकार का अंशदान आदि नहीं होता बल्कि ये निजी निदेशक मंडलों के स्वामित्व में चलाए जाते हैं। भारतीय रिज़र्व बैंक के तत्वावधान में गठित टैफकब, जिसमें शहरी सहकारी बैंकों के महासंघों एवं रिज़र्व बैंक के प्रतिनिधि शामिल होते हैं, इन बैंकों की अर्थव्यवहार्यता पर नज़र रखता है एवं बैंकों की स्थिति के अनुसार उनके विलयन अथवा समापन के बारे में निर्णय लेता है। इसके गठन से शहरी बैंकों के स्वास्थ्य में निश्चित रूप से सुधार परिलक्षित हुआ है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था की मांग को पूरा करने के प्रति अधिक क्रियाशील होने के उद्देश्य से *अग्रणी बैंक योजना* का खाका तैयार किया गया था। लेकिन जब तक इससे जुड़ी सभी एजेंसियों के बीच उचित सामंजस्य स्थापित नहीं हो जाता तक तब इसके प्रयोजन को साध्य कर पाना कठिन है। इसे देखते हुए एक उचित मंच की आवश्यकता महसूस की गई और इसकी परिणति के रूप में राज्य एवं जिला स्तर पर दो मंच यथा- राज्य स्तरीय बैंकर समिति एवं जिला स्तरीय बैंकर समिति का गठन किया गया।

राज्य स्तरीय बैंकर समितियां (एसएलबीसी)

राज्य स्तरीय बैंकर समिति एक अंतर संस्थागत मंच है जहां पर राज्य विशेष में कार्यरत विभिन्न वित्तीय इकाइयों के विकासगत नीतियों एवं कार्ययोजनाओं को लागू करने के लिए उनके बीच तालमेल स्थापित करने की दिशा में प्रयास किए जाते हैं। इसमें सरकार के प्रतिनिधि भी शामिल होते हैं। हर तिमाही में इस समिति की कम से कम एक बैठक तो अवश्य आयोजित की जानी चाहिए और यदि आवश्यक हो तो यह अंतराल कम भी किया जा सकता है। भारत सरकार द्वारा निर्धारित किए गए दिशानिर्देशों के आधार पर रिज़र्व बैंक किसी अग्रणी बैंक को इस समिति के संयोजक के रूप में नामित करता है जो समिति के क्रियाकलापों के सुचारू परिचालन के लिए जिम्मेदार होता है। इस तरह से देखा जाए तो सहकारिता के सिद्धांत पर आधारित यह मंच ग्रामीण क्षेत्र की वित्तीय जरूरतों को पूरा करने के लिए सामूहिक प्रतिबद्धता को दर्शाता है।

राज्य स्तरीय परामर्शी समिति (एसएलसीसी)

राज्य सरकार द्वारा गठित एक ऐसी समिति जो राज्य सरकार द्वारा चलाए जा रहे विकास कार्यक्रमों में प्रदान की जानेवाली ऋण सहायता के संबंध में बैंकों के कार्यनिष्पादन की समीक्षा करती है। इसकी बैठकें राज्य सरकार द्वारा वार्षिक आधार पर आयोजित की जाती हैं। राज्य के मुख्यमंत्री या वित्तमंत्री इस समिति के अध्यक्ष होते हैं। इस समिति में रिज़र्व बैंक, नाबार्ड, सिडबी, आइडीबीआइ, एसबीआइ और राज्य सहकारी बैंकों के प्रतिनिधि शामिल होते हैं।

जिला स्तरीय बैंकर समिति (डीएलबीसी))

यह बैंकरों एवं सरकारी अधिकारियों के लिए एक ऐसा सामान्य मंच है जहां वे अग्रणी बैंक योजना के अधीन योजनाओं को लागू करने में आनेवाली दिक्कतों को मिल बैठकर सुलझाते हैं। जिला स्तरीय योजनाओं के बारे में परामर्श की आवश्यकता को पूरा करने के लिए इस मंच का गठन स्वयंमेव हुआ। समय के साथ-साथ यह अग्रणी बैंक योजना का अभिन्न अंग बन गया। जिला कलेक्टर या उपायुक्त इस समिति के अध्यक्ष के रूप में कार्य करते हैं एवं नाबार्ड तथा रिज़र्व बैंक के प्रतिनिधि इसके सदस्य होते हैं। इस समिति की बैठकें तिमाही आधार पर आयोजित की जाती हैं।

ब्लॉक स्तरीय बैंकर समिति (बीएलबीसी)

जिला स्तर पर अग्रणी बैंक योजना /ऋण योजना को लागू करने से जुड़े विभिन्न मुद्दों एवं सरकार द्वारा प्रायोजित विभिन्न योजनाओं पर चर्चा करने हेतु इस समिति का गठन किया गया है। ब्लॉक विकास अधिकारी एवं उस ब्लाक के सभी बैंक शाखाओं के शाखा प्रबंधक इसके सदस्य होते हैं। इसकी बैठकें तिमाही आधार पर आयोजित की जाती हैं।

स्वयं सहायता समूह

स्वयं सहायता समूह दस अथवा बीस की संख्या में ग्रामीण निर्धनों का पंजीकृत अथवा अपंजीकृत एक ऐसा स्वैच्छिक समूह होता है जिसमें समान आर्थिक हैसियत वाले लोग एक साथ आकर सामूहिक प्रयास से कुछ ऐसे आर्थिक क्रियाकलापों में भाग लेते हैं जिससे उनकी स्थिति में सुधार होता हो। इस समूह के सदस्य आम तौर पर अपनी छोटी-छोटी बचतों का नियमित रूप से एक सम्मिलित निधि में अंशदान करते हैं और उस निधि में से सदस्यों को ऋण प्रदान किए जाते हैं एवं उनकी आपातकालीन जरूरतों को पूरा करने के प्रयास किए जाते हैं। इसके अलावा ऐसे कई समूह अपनी बचत एवं बैंकों से वित्तीय सहायता प्राप्त कर सामूहिक रूप से कोई आर्थिक क्रियाकलाप करते हैं जिससे उन्हें अच्छी आय प्राप्त होती है। हमारे देश में ऐसे समूह ग्रामीण ऋण संवितरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इनके गठन से ग्रामीण निर्धनों का एक बहुत बड़ा समूह बैंकिंग सुविधाओं का लाभ उठाने में सफल हुआ है। स्वयं सहायता समूहों के गठन में सरकार की ओर से महिला समूहों के गठन पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। महिलाओं के ऐसे कई स्वयं सहायता समूहों ने काफी प्रगति दर्शाई है। 'सेवा' (SEWA) इसका एक अच्छा उदाहरण है जिसने सफलता के नए मुकाम हासिल किए हैं।

किसान क्लब

अपने नाम के अनुरूप ही इन क्लबों का निर्माण कृषकों द्वारा एक साथ आकर किया जाता है। इस तरह से सहकारिता के सिद्धांत पर आधारित ये क्लब मुख्य रूप से कृषि से संबंधित विभिन्न तकनीकों, जानकारियों को सदस्यों के बीच बांटते हैं और सभी को उसका लाभ मिल पाता है। बैंकों, शासकीय एवं स्वयं सेवी संगठनों के सहयोग से किसान क्लबों की स्थापना की जाती है जो बैंकों एवं किसानों के बीच एक कड़ी बनाते हैं। ये ग्रामीणों को बैंकों की ऋण योजनाओं के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं और उन्हें ऋण सुविधाएं मुहैय्या कराने में सहायता करते हैं तथा साथ ही बैंकों के लिए ऋण वसूली को भी सुगम बनाते हैं। आज बहुचर्चित वित्तीय समावेशन में इनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण बन गई है क्योंकि व्यवसाय संवाहक के रूप में ये अत्यंत मददगार साबित हो रहे हैं। किसान क्लबों एवं बैंकों के साझा प्रयास से ग्रामीण क्षेत्रों का सामाजिक एवं आर्थिक विकास सुनिश्चित किया जा सकता है।

राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड)

कृषि व ग्रामीण विकास के लिए संस्थागत साख के पुनरीक्षण के प्रावधानों पर 1979 में गठित क्रेफिकार्ड समिति की अंतरिम रिपोर्ट के आधार पर जुलाई 1982 में राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) की स्थापना की गई। नाबार्ड की अंश पूंजी 100 करोड़ रूपए है जिसमें रिज़र्व बैंक एवं सरकार का समान योगदान है। यह केंद्र सरकार, राज्य सरकार, योजना आयोग तथा कृषि एवं ग्रामीण विकास के क्रियाकलापों में संलग्न अखिल भारतीय स्तर की अन्य संस्थाओं के मध्य समन्वय स्थापित करनेवाले प्रमुख संस्थान के रूप में कार्य करता है। नाबार्ड द्वारा वाणिज्यिक बैंकों, सहकारी बैंकों एवं क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को पुनर्वित्त प्रदान किया जाता है। यह प्रमुख रूप से कृषि तथा सहायक गतिविधियों (जिसमें हथकरघा, लघुस्तरीय उद्योग एवं समेकित विकास कार्यक्रम का समावेश है) के लिए अल्पकालीन व दीर्घकालीन ऋण प्रदान करता है। इसकी विकासपरक गतिविधियों में कृषि एवं ऋण से संबंधित समस्याओं को सुलझाने के लिए विशेषज्ञता को विकसित करना शामिल है। यह कृषि और ग्रामीण विकास में नए एवं परिवर्तनकारी निवेश के अवसरों को खोजने पर विशेष ध्यान देता है।

''सहकारिता को यदि जमीनी स्तर पर समझने के लिए किसी आदर्श वाक्य में पिरोया जाए तो कहा जा सकता है कि 'सब एक के लिए, एक सब के लिए।' इसी तरह जनता को पारस्परिक सहयोग के आधार पर स्वावलंबन एवं आत्मनिर्भर जीवन जीने के लिए तैयार करने का उद्देश्य सहकारिता के मूल में समाया हुआ है।''

शहरी सहकारी बैंकों का संगठन एवं कार्यप्रणाली

● डॉ. चेतना पाण्डेय*

शहरी सहकारी बैंक मुख्यतया प्राथमिक सहकारी बैंकिंग संस्थाओं के रूप में शहरी एवं अर्धशहरी क्षेत्रों में कार्यरत हैं। सन् 1996 तक उन्हें केवल गैर कृषि क्षेत्रों में ऋण प्रदान करने की अनुमति थी और वे शहरी एवं अर्धशहरी क्षेत्रों में चिन्हित समूह या समुदायों के विकास एवं बैंकिंग सुविधाएं प्रदान करने हेतु विकसित थे, पर अब ऐसा नहीं है। ये बैंक जहाँ किसी विशेष समुदाय या व्यवसाय से जुड़े समूहों के विकास हेतु सक्रिय हैं, वहीं विश्वस्तरीय बैंकिंग के क्षेत्र में अपनी पहचान बनाने का अथक प्रयास भी कर रहे हैं। अब ये केवल लघु व्यवसायी क्षेत्र में बैंकिंग सुविधा प्रदान नहीं करते, अपितु विशेष तकनीकी सुविधाओं द्वारा सभी वर्ग के ग्राहकों को बैंकिंग सुविधाएं प्रदान कर रहे हैं।

शहरी सहकारी बैंकों का इतिहास 19वीं सदी के अंत से प्रारंभ होता है, जब भारत वर्ष में ब्रिटेन एवं जर्मनी में सहकारी आंदोलनों से प्रभावित होकर कुछ समुदायों ने एकत्रित होकर प्राथमिक समितियों का गठन किया। सहकारिता का सिद्धान्त मूलत: आपसी आन्तरिक सहयोग, जनतांत्रिक विधि व्यवस्था एवं निर्णयात्मक कार्य प्रणाली के साथ-साथ समभाव सहित खुले रूप से प्रतिनिधित्व एवं योगदान देने की स्वतंत्रता पर आधारित है। सभी सहकारी संस्थाओं का निर्माण इन्हीं सिद्धान्तों के अनुरूप होता है। प्राथमिक सहकारी समितियाँ विभिन्न प्रोप्राइटरी फर्मों, पार्टनरशिप फर्मों एवं मिश्रित पूँजी कम्पनियों से भिन्न हैं, क्योंकि उनका संगठनात्मक ढांचा सामूहिक सहभागिता एवं सामूहिक विकास के सिद्धान्तों पर निर्भर करता है। भारत में प्रथम सहकारी समिति, जो पारस्परिक सहायता प्रदान करने के लिए गठित हुई थी, "अन्योन्या सहकारी मंडल'' के नाम से प्रचलित हुई। इसका गठन बड़ौदा राज्य में 1889 में विट्ठल लक्ष्मण के नेतृत्व में हुआ था। शहरी सहकारी साख समितियाँ शहरों में छोटे-छोटे समुदायों के रूप में विकसित हुईं, जिनका उद्देश्य मुख्यतया लघु बचत राशियों को एकत्रित कर उपभोक्ता ऋण प्रदान करना था। ये धीरे-धीरे मध्य आय वाले वर्गों से बढ़कर अल्प आय वाले समुदायों में बचत करने हेतु प्रोत्साहित करने के अलावा सामूहिक रूप से उद्योग गठित करने में सहभागी बनीं। ये शहरी सहकारी समितियाँ आज शहरी सहकारी बैंकों के रूप में उभर कर आयी हैं और शहरी क्षेत्रों में ग्रामीण क्षेत्रों द्वारा प्रतिस्थापित अल्प एवं मध्य आय वाले समुदायों को उनकी आवश्यकताओं के आधार पर बैंकिंग सुविधाएं प्रदान कर रही हैं। आज शहरी सहकारी बैंकों का पंजीकरण सहकारी समिति एक्ट के अन्तर्गत होता है जो बैंककारी विनियमन अधिनियम 1949 एवं बैंककारी (सहकारी समिति) अधिनियम 1965 द्वारा परिचालित होते हैं। शहरी क्षेत्रों में ये बैंक स्वनियोजन, लघु उद्योगों, गृह-निर्माण एवं उपभोग हेतु वैयक्तिक ऋण प्रदान करते हैं।

शहरी सहकारी बैंकों का गठन

भारतवर्ष में सहकारी साख संस्थाओं के रूप में कई संस्थाएं कार्यरत हैं जिनमें कृषि एवं गैर कृषि सहकारी साख समितियाँ विद्यमान हैं पर बैंककारी विनियमन अधिनियम 1949 के अनुसार शहरी क्षेत्रों में मुख्यतया तीन प्रकार की संस्थाएं सहकारी संस्थाओं के रूप में वर्गीकृत हैं जिनका विवरण निम्नांकित है-

1. प्राथमिक सहकारी समितियाँ जो बैंकों की तरह कार्य करती हैं पर उनकी निवल मालियत 1.00 लाख रुपये से कम है और ये भुगतान प्रणाली की सदस्य नहीं हैं, ना ही इन्हें बचत बीमा का लाभ प्राप्त है।
2. प्राथमिक सहकारी बैंक जिन्हें सामान्यतया शहरी सहकारी बैंकों की संज्ञा दी गयी है बैंकिंग प्रणाली का हिस्सा हैं। इनकी निवल मालियत 1.00 लाख रुपये से ज्यादा है। ये भुगतान प्रणाली के सदस्य हैं और इन्हें बचत बीमाकरण की सुविधा प्राप्त है।
3. सहकारी साख समितियाँ जो अपने सदस्यों के सहयोग द्वारा एवं विकास हेतु उनके क्रियाकलापों तक सीमित हैं और बैंकिंग सुविधाएं प्रदान नहीं करतीं।

* वरिष्ठ प्रबन्धक (ऋण), यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, नोडल क्षेत्रीय कार्यालय, पटना

बैंककारी विनियमन अधिनियम 1949 की धारा 5 (ccii) के अन्तर्गत सहकारी साख समिति सहकारी समिति के रुप में तभी परिभाषित हो सकती है जब उनका प्राथमिक उद्देश्य अपने सदस्यों को ऋण प्रदान करना हो और जो भूमि बंधक बैंक के रूप में कार्यरत हो। ये लघु बचत संस्थाओं के रूप में विकसित होती हैं। प्राथमिक साख समिति एवं सहकारी साख समिति में भूलभूत अन्तर इनकी कार्यप्रणाली से है। जहाँ प्राथमिक साख समितियाँ बैंकिंग व्यवसाय में संलग्न हैं वहीं सहकारी साख समितियों का मौलिक उद्देश्य अपने सदस्यों को ऋण प्रदान करना है। जब इन प्राथमिक साख समितियों की चुकता पूंजी एवं आरक्षित निधियाँ 1.00 लाख रुपये से अधिक हो जाती हैं तो ये प्राथमिक सहकारी बैंकों में परिवर्तित हो जाती हैं पर इन्हें रिज़र्व बैंक द्वारा लाइसेन्स हेतु आवेदन करना होता है। जब तक इन्हें लाइसेन्स प्राप्त न हो या इनका आवेदन रद्द न कर दिया जाए ये बैंकिंग व्यवसाय कर सकते हैं।

शहरी सहकारी बैंकों की भूमिका पर रिज़र्व बैंक ने 1958-59 में पहली बार समीक्षा की और रिज़र्व बैंक की रिपोर्ट 1961 में प्रकाशित हुई जिसमें शहरी सहकारी बैंकों के विस्तृत फैलाव, कार्यकारिणी एवं वित्तीय सुदृढ़ता की समीक्षा की गयी साथ ही इस बात पर भी बल दिया गया कि राज्य सरकारों के सहयोग से नए केंद्रों पर प्राथमिक शहरी सहकारी बैंक खोले जाएं।

शहरी सहकारी बैंकों पर दोहरा नियंत्रण

शहरी सहकारी बैंकों को व्यावसायिक रूप देने हेतु इन बैंकों पर रिज़र्व बैंक के साथ राज्य सरकारों का भी नियंत्रण रखने का प्रावधान किया गया। बैंकिंग सम्बन्धित कार्यप्रणाली जैसे लाइसेंसीकरण नीतियों, कार्यक्षेत्र, ब्याज दर निर्धारण इत्यादि रिज़र्व बैंक निर्धारित करता है वहीं पंजीकरण, प्रबन्धन लेखा परीक्षण एवं निरीक्षण इत्यादि राज्य सरकारों के विभिन्न अधिनियमों द्वारा निर्धारित होता है। सन् 1968 में शहरी सहकारी बैंकों को बचत बीमाकरण की सुविधा भी प्राप्त हो गयी।

सन् 1979 में माधवदास कमिटी ने शहरी सहकारी बैंकों की भूमिका एवं संगठन पर विस्तृत रोड मैप तैयार किया था जिसमें उन्होंने प्राथमिक साख समितियों को शहरी सहकारी बैंकों में परिवर्तित होने के लिए आवश्यक नियमन का पालन करने पर बल दिया एवं रिज़र्व बैंक द्वारा उन्हें लाइसेन्स प्रदान करने से पहले उनके आन्तरिक कार्यप्रणाली के विस्तृत अध्ययन करने की परिचर्चा की।

सन् 1996 में रिज़र्व बैंक ने भी सहकारी साख समितियों को शहरी सहकारी बैंकों में परिवर्तित होने हेतु निर्णय लिया यदि,

क) वे अपने उप नियमों में प्राथमिक उद्देश्य बैंकिंग व्यवसाय को रखें एवं सामान्य जनता से बचत राशि संरक्षित करें।

ख) शहरी सहकारी बैंकों के लिए आवश्यक प्रविष्टि बिन्दुओं को परिपूर्ण करें।

ग) उनके क्रिया-कलाप बचतधारकों के हितों के अनुरूप हों।

मराठे कमिटी ने नए शहरी सहकारी बैंकों के लाइसेन्सीकरण हेतु कई सुझाव दिए एवं इस क्षेत्र में उदारीकरण के प्रभावों को भी समायोजित किया जिनमें सहकारी साख समितियों को शहरी सहकारी बैंकों में परिवर्तित करने हेतु रिज़र्व बैंक एवं सहकारी समितियों के पंजीयनकर्ता (Registrar of Cooperative Societies) द्वारा कई आवश्यक कदम उठाने के लिए प्रश्रय दिया।

समयानुसार शहरी सहकारी बैंकों ने बैंकिंग क्षेत्र में विस्तृत रूप धारण कर लिया है। आज 56 अनुसूचित शहरी सहकारी बैंक हैं जो मुख्यतया आन्ध्रप्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, महाराष्ट्र अथवा तमिलनाडु में स्थित हैं जो विभिन्न तकनीकीकृत बैंकिंग सुविधाएं अपने ग्राहकों को प्रदान कर रहे हैं।

शहरी सहकारी बैंकों की कार्यप्रणाली

- सहकारी बैंक सामान्यतया हर बैंकिंग सुविधा अपने ग्राहकों को प्रदान करते हैं जिसमें बचत राशि प्राप्त करने से लेकर ऋण प्रदान करना एवं धन प्रेषण भी शामिल है। चूँकि इनकी स्थापना विशेष समुदायों की जरुरतों को मद्देनजर रखते हुए होती है अत: इन समुदायों के लाभ हेतु भी विभिन्न प्रकार के स्कीमों का निर्धारण किया जाता है।

- सहकारी बैंक पूंजी बाजार एवं मुद्रा बाजार में भी कार्यरत हैं।
- शहरी सहकारी बैंकों की भूमिका अब कृषि या व्यवसाय सम्बन्धित ऋण प्रदान करने के अलावा तकनीकीकृत संव्यवहार बैंकिंग क्षेत्रों में भी बढ़ गयी है। उपभोक्ता ऋणों के साथ-साथ ये शहरी क्षेत्रों में व्यावसायिक कार्यों हेतु कार्यशील पूँजी एवं मीयादी ऋण की भी सुविधा प्रदान करते हैं।

इसके अतिरिक्त इनके मुख्य उद्देश्य जो इन्हें अन्य बैंकिंग संस्थाओं से भिन्नता प्रदान करते हैं वे निम्नांकित हैं :

1. ग्राहकों द्वारा स्वामित्व - सहकारी बैंक ग्राहकों की जरुरतों को अपने स्वामी की आवश्यकताएं समझते हैं क्योंकि ग्राहक भी स्वामी होते हैं।
2. जनतांत्रिक सदस्यता प्रणाली - सहकारी बैंक प्रति व्यक्ति प्रति वोट के सिद्धांत पर गठित होते हैं।
3. लाभ आबंटन भी जनतांत्रिक माध्यम से विभिन्न सदस्यों के अन्तर्गत होता है जो कि हर सदस्य द्वारा अभिदान किए गए शेयरों की संख्या पर निर्भर करता है।
4. सहकारी बैंकों की संरचना आपसी सहयोग एवं संरक्षण के सिद्धान्तों पर होती है, अत: प्राय: उनका उद्देश्य कोई लाभ या हानि अर्जित करना नहीं है और न ही अधिकतम लाभ कमाना उनका लक्ष्य होता है। लेकिन बदलते परिवेश में प्रतिस्पर्धा में सफल होने हेतु सकल लाभ अर्जित कर पुन: बैंकों के निर्माण एवं विकास में योगदान देना उनका लक्ष्य बनता जा रहा है।
5. सहकारी बैंकों को भी रिज़र्व बैंक द्वारा निर्धारित आरक्षित नकदी निधि अनुपात (CRR) एवं चलनिधि प्रबंधन (Liquidity Management) जैसी अपेक्षाओं को पूरा करना पड़ता है जो कि अन्य व्यवसायिक बैंकों की तुलना में कम है।

शहरी सहकारी बैंकों में रिज़र्व बैंक की भूमिका

भारतीय रिज़र्व बैंक का शहरी बैंक विभाग प्राथमिक शहरी सहकारी बैंकों का नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण करता है। 1926 प्राथमिक शहरी सहकारी बैंकों के क्रियाकलापों पर नियंत्रण रखते हुए शहरी बैंक विभाग मुख्य रूप से तीन कार्य करता है: 1. नियंत्रणात्मक 2. पर्यवेक्षण सम्बन्धी 3. विकास सम्बन्धी.

1. नियंत्रणात्मक कार्य :

क) नए प्राथमिक शहरी सहकारी बैंकों का लाइसेन्सीकरण जो कि बैंककारी विनियमन अधिनियम 1949 की धारा 22 के अन्तर्गत प्रदान किया जाता है।

ख) मार्च 1966 तक देश में स्थित प्राथमिक शहरी सहकारी बैंकों को बैंककारी विनियमन अधिनियम 1949 की धारा 22 की उपधारा 2 के तहत लाइसेन्स हेतु आवेदन करने का प्रावधान किया गया और उन्हें तीन महीने तक बैंकिंग व्यवसाय करने हेतु लाइसेन्स प्राप्त करने के लिए कहा गया। कोई भी प्राथमिक शहरी सहकारी समिति जिसकी मालियत 1.00 लाख रुपये से अधिक हो लाइसेन्स हेतु रिज़र्व बैंक में आवेदन कर सकती है।

ग) शाखा खोलने हेतु लाइसेन्स प्रदान करना - बैंककारी विनियमन अधिनियम 1949 की धारा 23 के अन्तर्गत शहरी सहकारी बैंकों को शाखा खोलने हेतु रिज़र्व बैंक से अनुमति प्राप्त करने का प्रावधान है।

घ) सांविधिक प्रावधान - भारतीय रिज़र्व बैंक का शहरी बैंकिंग विभाग इन बैंकों के सांविधिक प्रावधानों पर भी नजर रखता है जिनमें मुख्यतया न्यूनतम शेयर पूँजी एक लाख से कम न हो। इन बैंकों द्वारा व्यावसायिक बैंकों की तरह अपनी बचत राशि का कुछ हिस्सा आरक्षित नकदी निधि अनुपात (CRR) के रूप में रखना आवश्यक है। अनुसूचित प्राथमिक शहरी सहकारी बैंकों को अपनी मांग एवं मीयादी देयताओं का 5 प्रतिशत रिज़र्व बैंक अधिनियम 1934 की धारा 42 के तहत रखना पड़ता है। वहीं गैर अनुसूचित शहरी सहकारी बैंकों को बैंककारी विनियमन अधिनियम की धारा 18 के तहत दैनिक मांग एवं मीयादी देयताओं का 3 प्रतिशत आरक्षित नकदी निधि अनुपात के रूप में रखना पड़ता है। अनुसूचित सहकारी बैंकों को आरक्षित नकदी निधि रिज़र्व बैंक के खाते में रखनी पड़ती है वहीं गैर अनुसूचित सहकारी बैंक स्वयं नकदी के रूप में, रिज़र्व बैंक के चालू खाते में या राज्य सहकारी बैंक में या जिला स्तरीय मुख्य सहकारी बैंक में रख सकते

हैं। इसके अलावा हर प्राथमिक शहरी सहकारी बैंक (अनुसूचित या गैर अनुसूचित) को सांविधिक चलनिधि अनुपात (SLR) के रूप में अपनी कुल मांग एवं मीयादी देयताओं का 25 प्रतिशत नकदी आरक्षित स्वर्ण निधि या भार रहित प्रतिभूतियों के रूप में बैंककारी विनियमन अधिनियम 1949 की धारा 24 के अन्तर्गत रखना पड़ता है पर शहरी सहकारी बैंकों के लिए ये सीमा निम्नांकित है :

क्र. सं.	बैंक का प्रकार	न्यूनतम सांविधिक चलनिधि (सरकारी अथवा भार रहित प्रतिभूतियों के रूप में स्थित - निवल मांग एवं सावधि देयताओं का कुल प्रतिशत)
1	अनुसूचित अथवा गैर अनुसूचित बैंक	25 प्रतिशत
क	यदि निवल मांग एवं मीयादी देयताएं (NDTL) 25 करोड़ रुपये से अधिक हों	15 प्रतिशत
ख	यदि निवल मांग एवं मीयादी देयताएं (NDTL) 25 करोड़ रुपये से कम हों	10 प्रतिशत

2. **पर्यवेक्षण संबंधी कार्य :** भारतीय रिज़र्व बैंक शहरी सहकारी बैंकों पर नियंत्रण के अलावा पर्यवेक्षण संबंधी कर्तव्यों का निर्वाह अपने शहरी बैंकिंग विभाग द्वारा करता है ताकि बचत धारकों की धनराशि एवं उनके हितों की रक्षा की जा सके और ये बैंक रिज़र्व बैंक द्वारा निर्धारित नियंत्रणात्मक नियमों का उल्लंघन न करें। यह विभाग नियमानुसार इन बैंकों का निरीक्षण करता है जिसमें इन सभी विषयों पर विशेष बल दिया जाता है। अनुसूचित एवं गैर अनुसूचित शहरी सहकारी बैंकों पर परोक्ष निगरानी उनके द्वारा प्रेषित विवरणियों द्वारा भी की जाती है। जिन बैंकों की कुल जमाराशि 100 करोड़ रुपये या उससे अधिक होती है उन्हें त्रैमासिक एवं वार्षिक विवरण रिज़र्व बैंक को भेजना अनिवार्य है जिसके माध्यम से रिज़र्व बैंक का यह विभाग उन पर निगरानी रखता है।

3. **विकास सम्बन्धी कार्य :** रिज़र्व बैंक द्वारा प्राथमिक शहरी सहकारी बैंकों के विकास हेतु कई नियामक कदम उठाए जाते हैं जिनमें मुख्यतया अति लघु एवं कुटीर उद्योगों को संस्थागत वित्त पोषण हेतु इन बैंकों को रिज़र्व बैंक पुनर्वित्त प्रदान करता है जो कि रिज़र्व बैंक अधिनियम 1934 की धारा 17 के अन्तर्गत निहित है। यह पुनर्वित्त बैंक दर पर किया जाता है। इसके अलावा रिज़र्व बैंक अपने प्रशिक्षण केंद्रों में विशेष रूप से कृषि बैंकिंग महाविद्यालय, पुणे में सहकारी बैंकों के कर्मियों हेतु विशेष प्रशिक्षण की व्यवस्था करता है।

शहरी सहकारी बैंकों के विकास के साथ कई समस्याएं भी उत्पन्न हुई हैं जिनमें मुख्यतया चलनिधि की कमी द्वारा उत्पन्न संकट एवं अनर्जक परिसम्पत्तियों/आस्तियों की मात्रा में वृद्धि है। 2009 में रिज़र्व बैंक ने एक कमिटी का गठन किया जिसने इन बैंकों को अन्य व्यावसायिक बैंकों में विलय हेतु प्रावधानों का जिक्र किया है। साथ ही एक अतिरिक्त निधि या कोष का निर्माण करने का सुझाव भी दिया है जिसके द्वारा इन्हें चलनिधि प्रदान की जा सके। रिज़र्व बैंक ने 2004 के उपरांत किसी भी सहकारी बैंक को लाइसेन्स प्रदान नहीं किया है फिर भी कई विकसित व्यावसायिक बैंक इन बैंकों का अधिग्रहण करने हेतु तत्पर हैं जिसके मुख्य दो कारण हैं :

1. ये सहकारी बैंक एक निश्चित क्षेत्र में फैले हुए हैं और स्थानीय परिस्थितियों से अवगत होकर बैंकिंग क्षेत्र में कार्यरत हैं जिससे वित्तीय समावेशन उन क्षेत्रों में संभव है।
2. चूँकि इन बैंकों का आकार छोटा है, अतएव इनका बड़े एवं विकसित सार्वजनिक क्षेत्रों के बैंकों में विलय करना सरल है।

इन सभी समस्याओं के बावजूद कई शहरी सहकारी बैंक प्रतिस्पर्धा के इस दौर में अपने ग्राहकों को बैंकिंग सेवाएं देने में तत्पर हैं एवं क्रियाशील हैं और उनके ग्राहकों का उनके अपने बैंक पर विश्वास अटल है जो कि उनकी कुशल कार्यक्षमता का परिचायक है।

अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन : सहकारी बैंकिंग का संकटमोचन

● सुशील कृष्ण गोरे*

दुनिया के तमाम देशों की तरह भारत में भी सहकारी बैंकिंग की आधारशिला सहकारिता आंदोलन के हाथों ही रखी गयी। ऐसा संयोग हमारी लोकतांत्रिक विरासत और उसके प्रति हमारी प्रतिबद्धता को ही रेखांकित करता है। हमारे समाज के लिये सहकारी बैंकिंग अपने जन्म के समय जितनी जरूरी और एक खास तबके की जिंदगी सँवारने वाली एक कारगर आर्थिक व्यवस्था थी उससे किसी मायने में कमतर आज भी नहीं है। लेकिन एक दृष्टि डालने पर यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि सहकारी बैंक 365x24x7 युग की बैंकिंग प्रतिस्पर्धा में अभी काफी पीछे हैं। यदि हम इसके कारणों की पड़ताल करें तो कुछ ऐसे मुद्दे उभरकर हमारे सामने आते हैं जो हाल-फिलहाल तक सहकारी बैंकों की नियति के साथ बद्धमूल हो गए थे। मसलन, उनके हिस्से में पूंजी, तकनीक और बाज़ार का प्रवेश बहुत सीमित है। भारत के मौज़ूदा आर्थिक एवं वित्तीय प्रभामंडल के सापेक्ष सहकारी बैंकिंग की यह स्थिति संतोषजनक नहीं मानी जाएगी।

ऐसे दौर में जब सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक मिल जुलकर बैंकिंग और वित्तीय सेवाओं से अभी तक वंचित जनसामान्य को वित्तीय समावेशन की परिधि में लाने के समन्वित प्रयास कर रहे हों, वित्तीय शिक्षा, वित्तीय साक्षरता का मिशन चला रहे हों, ऋण परामर्श केंद्रों की स्थापना कर रहे हों, दूर-दराज के गावों में हर द्वार तक बैंकिंग को पहुँचाने के लिए व्यवसाय प्रतिनिधि (बीसी) और व्यवसाय सुविधाप्रदाता (बीएफ) मॉडल लागू कर दिया गया हो; सहकारी बैंकिंग को इस अभियान में अपनी सक्रिय भूमिका निभाने के लिए नए सिरे से तैयार करना होगा। इस प्रकार सहकारी बैंकों को एक मजबूत आधार देकर उनमें स्मार्ट बैंकिंग का माद्दा पैदा करना समय की मांग भी है और उनमें छिपी दुर्लभ संभावनाओं को मूर्तरूप देने के लिए यह जरूरी भी है। तब जाकर ही हम भारत के इस जगमगाते आर्थिक विकास को अंजाम देने में सरकारी एवं वाणिज्यिक बैंकों के अलावा अन्य क्षेत्र के बैंकों की भूमिका के साथ सहकारी बैंकिंग का नाम भी जोड़ पाएंगे।

आँकड़ों की निगाह से देखा जाये तो बैंकों के कुल जमा और अग्रिमों में शहरी सहकारी बैंकों का मार्केट शेयर उनके ''बिग ब्रदर'' यानि अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की तुलना में अब तक काफी कम रहा है। उदाहरण के लिए पिछले तीन साल के आँकड़े देखे जा सकते हैं।

बैंकों के कुल जमा और अग्रिमों में शहरी सहकारी बैंकों का मार्केट शेयर (प्रतिशत में)

जमाराशि का मार्केट शेयर			
वर्ष	2006	2007	2008
अनु. वाणिज्यिक बैंक	92.1	93.0	93.3
शहरी सहकारी बैंक	4.9	4.2	3.9
क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक	3.0	2.9	2.8
कुल	100	100	100
अग्रिमों का मार्केट शेयर			
वर्ष	2006	2007	2008
अनु. वाणिज्यिक बैंक	93.2	94.0	94.4
शहरी सहकारी बैंक	4.4	3.8	3.4
क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक	2.4	2.2	2.2
कुल	100	100	100

सहकारी बैंकिंग सेक्टर की संभावनाएँ जिन समस्याओं के कारण हमेशा से मरती रही हैं उनमें से एक भौगोलिक रूप से सहकारी बैंकिंग सेक्टर की उपस्थिति और फैलाव में भारी असमानता है। देश के 80% से ज्यादा शहरी सहकारी बैंक अकेले पाँच राज्य महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, आंध्र

* प्रबंधक (राजभाषा), भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

प्रदेश एवं तमिलनाडु में ही केन्द्रित हैं। उनकी जमाराशि का लगभग 89% इन्हीं राज्यों से प्राप्त होता है। मार्च 2009 के अनंतिम आँकड़ों के हिसाब से अकेले महाराष्ट्र के खाते में 33.9% शहरी सहकारी बैंक हैं और यही राज्य इस सेक्टर की 61.4% जमाराशि का भी केन्द्रस्थल है। इसका श्रेय इन राज्यों में सहकारिता आंदोलन और सहकारिता नेतृत्व के मजबूत इतिहास को जाता है। दूसरी जिस भयंकर समस्या से यह सेक्टर ग्रस्त था, वह दोहरे नियंत्रण (Dual Control) की समस्या थी। टैफकब के गठन के बाद इस समस्या से काफी हद तक निजात पाया जा चुका है। इसके अलावा भी कई तरह की समस्याएँ शहरी सहकारी बैंकिंग क्षेत्र की राह के रोड़े बनी हुयी थीं। जैसे प्रबंधन और व्यावसायिकता के नये तौर-तरीके और बैंकिंग की सर्वश्रेष्ठ अन्तरराष्ट्रीय प्रथाएं, कंप्यूटरीकरण, सूचना प्रौद्योगिकी के प्रयोग में पिछड़ापन आदि।

इस सेक्टर के सामने एक सवाल यह भी अकसर उठता है कि क्या मजबूत, क्षमतावान तथा वित्तीय रूप से सशक्त शहरी सहकारी बैंकों का चौतरफ़ा विकास करते हुए उनकी श्रृंखला देश के दूसरे हिस्सों में भी नहीं फैलायी जा सकती है जिससे समाज के सबसे निचले स्तर पर खड़े लोग बैंकिंग से जुड़कर अपनी जरूरतें पूरी कर सकें। वित्तीय समावेशन के चर्चित संदर्भ में देखा जाए तो यह बहुत जरूरी भी है। सहकारी बैंकिंग के अलावा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की भी भूमिका इस बात से साफ झलकती है। समावेशी विकास (Inclusive Growth) की योजना में सहकारी बैंकिंग अपनी संरचना और संस्कृति से काफी नजदीक बैठती है। सहकारी बैंकिंग लोकतंत्र में नियोजित आर्थिक उपाय का एक कारगर औजार होती है क्योंकि शहरी और ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों से ताल्लुक रखने वाले निम्न आय वर्ग के लोगों को यह क्षेत्र अपनी पसंद की बैंकिंग का बेहतर विकल्प दे सकता है। अपनी इस भूमिका में शहरी सहकारी बैंक वित्तीय समावेशन को गति प्रदान कर सकते हैं। यह क्षेत्र आम जनता को बेहतर और आसान तरीके से बैंकिंग सुविधाएं मुहैया करा सके इसके लिए रिज़र्व बैंक ने ''अपने ग्राहक को जानिए'' (केवाईसी) मानकों को ऐसे लोगों के लिए सरल बना दिया है जिनके खातों में पूरे वर्ष के दौरान 50,000/- रुपये से अधिक जमाराशि तथा उनके द्वारा लिये गये ऋण 1,00,000/- रुपये से ज्यादा न हों।

90 का दशक भारत में सहकारी बैंकों के तेज विकास का साक्षी था। मराठे समिति की सिफ़ारिशों के आधार पर लाइसेंसीकरण की उदार नीति बैंकों की संख्या में अभूतपूर्व इज़ाफे की वज़ह थी। तेजी का यह दौर 2003 तक आते-आते अपने शीर्ष पर जा पहुँचा था जब देश में शहरी सहकारी बैंकों की संख्या 1941 तक पहुँच गयी थी। यह संख्या काफी बड़ी थी क्योंकि जब शहरी सहकारी बैंकों को वर्ष 1966 में बैंककारी विनियमन अधिनियम, 1949 की परिधि में लाया गया तो उनकी संख्या मात्र 1,100 थी। कुछ इने-गिने शहरी सहकारी बैंकों में भारी गड़बड़ियों के चलते 2003 के बाद सहकारी बैंक क्षेत्र के प्रति लोगों का भरोसा डगमगा गया जो रिज़र्व बैंक सहित वित्तीय क्षेत्र के अन्य रेगुलेटरों के लिए चिंता का कारण बन गया । इसके बाद इस क्षेत्र को फिर से दुरुस्त कर उसे पटरी पर लाने के लिए के.माधव राव समिति तथा जगदीश कपूर समिति जैसी समितियों और टास्क फोर्स का गठन किया गया। वर्ष 2004 से नए शहरी सहकारी बैंकों को लाइसेंस देने पर रोक लगा दी गयी तथा इस क्षेत्र में सुदृढ़ता लाने के लिए कमजोर बैंकों के लिए समामेलन पर जोर दिया जाने लगा।

इस सिलसिले में रिज़र्व बैंक द्वारा लाया गया वर्ष 2005 का ''विजन डाक्यूमेंट'' मील का पत्थर साबित हुआ। दोहरे नियंत्रण के दो पाटों के बीच पिसते सहकारी बैंकिंग क्षेत्र को उबारने के लिए टैफकब (शहरी सहकारी बैंकों के लिए कार्यबल) का गठन; टैफकब के आपसी सहयोग और परामर्शी फोरम (Collaborative and Consultative forum) की सहायता से इस क्षेत्र के ऐसे बैंकों को फिर से मजबूत बनाने का खाका खींचना जिनमें दमखम के साथ पुन: उठ खड़े होने की संभावना हो और ऐसे बैंकों के लिए बैंकिंग प्रणाली से धीरे से बाहर निकलने का रास्ता (non-disruptive exit path) ढूंढने के लिए मिल-बैठकर बातचीत करना जिनमें पुनर्जीवन की कोई संभावना न बची हो। इस मंच का बेहतरीन इस्तेमाल करते हुए रिज़र्व बैंक ने राज्य सरकारों के साथ बैठकें की जिनकी तार्किक परिणति अभी तक देश के सभी राज्यों के साथ सहमति ज्ञापन (MoU) पर हस्ताक्षर के रूप में हुयी है। ''विजन डाक्यूमेंट'' के पहले सहकारी बैंकिंग का परिदृश्य निराशाजनक होता जा रहा था। उसके ग्राहक वर्ग का आधार लगातार छीजता जा रहा था। इसके अलावा वाणिज्यिक बैंकों

सहित निजी क्षेत्र के बैंकों की चकाचौंध करने वाली तेज-तर्रार मार्केटिंग शैली, बेहतरीन वित्तीय और प्रौद्योगिकीय संसाधनों की बदौलत उनके बढ़ते दायरे में सहकारी बैंकिंग के परंपरागत आधार भी आने लगे। ऐसे प्रतिस्पर्धात्मक माहौल में अपने सीमित मानव, वित्तीय और प्रौद्योगिकीय संसाधनों तथा प्रोफेशनल एप्रोच के अभाव के कारण सहकारी बैंकों के लिए अपना अस्तित्व बचाना मुश्किल होने लगा।

इन बैंकों की मुश्किलें यहीं समाप्त नहीं होतीं। उनकी सबसे बड़ी दिक्कत चलनिधि सहायता को लेकर है। भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 के अनुसार केवल अनुसूचित शहरी सहकारी बैंकों को ही रिज़र्व बैंक से सीधे चलनिधि सहायता प्राप्त हो सकती है। 31 मार्च 2009 तक की अनंतिम स्थिति के अनुसार कुल 1,721 शहरी सहकारी बैंकों में अनुसूचित शहरी सहकारी बैंकों की संख्या मात्र 53 है। मुसीबत की घड़ी में बाकी छोटे सहकारी बैंकों को चलनिधि सहायता के लिए जिला सहकारी क्रेडिट बैंकों (डीसीसीबी) तथा राज्य सहकारी बैंकों (एससीबी) के भरोसे रहना पड़ता है। यदि डीसीसीबी या एससीबी की माली हालत भी ठीक न हो तो मुसीबत और बढ़ जाती है। यहाँ तक तो फिर भी ठीक था लेकिन बहु-राज्यीय शहरी सहकारी बैंकों की इस मामले में स्थिति ही अपरिभाषित है। चूंकि वे एक साथ कई राज्यों में फैले होते हैं इसलिए उनका संबंध किसी भी राज्य के डीसीसीबी या एससीबी से नहीं होता। ऐसे 40 बैंक हैं। इस प्रकार साफ हो जाता है कि शहरी सहकारी बैंकों के पास पूंजीगत निधियां जुटाने के लिए सदस्यता शेयर और अर्जित आय के रूप में बहुत सीमित विकल्प मौज़ूद होते हैं। कानूनी बंधनों के कारण वे कैपिटल मार्केट में इक्विटी या बांड भी जारी नहीं कर सकते। शेयर बाजार में किसी भी वित्तीय लिखत को सूचीबद्ध होने के लिए उसके जारीकर्ता को कंपनी अधिनियम,1956 में पंजीकृत एक कंपनी (body corporate) होना चाहिए।

अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन का प्रथम सोपान

इस विकराल समस्या के समाधान के लिए रिज़र्व बैंक ने 2006 में विश्वनाथन समिति का गठन किया। इस समिति ने शहरी सहकारी बैंकों के पूंजी संकट से निपटने के लिए कुछ नये प्रकार के लिखतों को शुरू करने का सुझाव दिया। सहकारिता बैंकिंग क्षेत्र की हालत सुधारने और उसके प्रति लोगों के टूटे भरोसे को फिर से बहाल करने के स्थायी समाधान के रूप में अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन खड़ा करने के बीज-विचार इसी विश्वनाथन समिति की रिपोर्ट में दिखे थे। इस समिति ने ठोस उपाय सुझाने के लिए सहकारी बैंकिंग क्षेत्र की इस जटिल समस्या का गहराई से विश्लेषण करते हुए पाया कि अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन जैसे संस्थागत प्रयास से पहले कानूनी ढांचे में बदलाव करना पड़ेगा तथा उसके बाद विनियामक और पर्यवेक्षी ढांचे पर भी उसका प्रभाव पड़ेगा। इसलिए विश्वनाथन समिति ने अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन की स्थापना और उससे जुड़े वैधानिक और पर्यवेक्षी मुद्दों पर अलग से चिंतन करने की सिफ़ारिश की थी। इसके बाद 18 दिसंबर 2007 को आयोजित शहरी सहकारी बैंकों की स्थायी सलाहकार समिति की बैठक में यह तय हुआ कि कमजोर शहरी सहकारी बैंकों के लिए पुनर्वास/पुनर्जीवन निधि सृजित करने से जुड़े मुद्दों पर विचार करने के लिए एक कार्य समूह का गठन किया जाए। इस प्रकार वर्ष 2008-09 के वार्षिक नीति वक्तव्य में की गयी घोषणा तथा उपर्युक्त निर्णय के अनुसार भारतीय रिज़र्व बैंक के कार्यपालक निदेशक श्री वी.एस.दास की अध्यक्षता में अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन तथा पुनर्जीवन निधि पर एक कार्य समूह का गठन किया गया।

यह बात हमेशा महसूस की जाती है कि आपसी जुड़ाव तथा सहायता का आधार मिले तो सहकारी बैंक भी सुदृढ़ बन सकते हैं। हमारे देश की ग्रामीण सहकारी समितियां तो फिर भी त्रि-स्तरीय हैं जिनसे उनका एक संघीय स्वरूप ख़ुद-ब-ख़ुद निर्मित हो जाता है; लेकिन शहरी सहकारी बैंक अपने आप में अकेले ही काम करते हैं। इसके अलावा कई और कठिनाइयों से भी शहरी सहकारी बैंक त्रस्त रहे हैं जिनका जिक्र ऊपर किया गया है। अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन इसी जरूरत को पूरा करने वाली एक व्यवस्था है जो किसी न किसी रूप में दुनिया के कई देशों, विशेष रूप से यूरोप और अमेरिका में सफलतापूर्वक काम कर रही है। यूरोप तथा अमेरिका में सहकारी बैंक क्रेडिट यूनियन के नाम से जाने जाते हैं। ये यूनियन एक नेटवर्क में काम करते हैं जिनकी एक संस्था होती है जो उन्हें निधि प्रबंधन, ऋण, आस्ति-प्रबंधन, भुगतान और निपटान प्रणाली गेटवे, एटीएम नेटवर्क, क्रेडिट कार्ड, निवेश, प्रतिभूतिकरण, पूंजी जुटाने तथा अन्य वित्तीय सेवाएं मुहैया कराता है। इसी संस्था को अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन कहा जाता

है जिसके नेटवर्क सदस्य क्रेडिट यूनियनों को ऊपर बतायी गयी सेवाएं प्रदान करते हैं। श्री वी.एस.दास की अध्यक्षता वाले कार्य समूह ने आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, कनाडा, फिनलैंड, फ्रांस, जर्मनी, नीदरलैंड, पोलैंड तथा अमेरिका के अम्ब्रेला आर्गनाइजेशनों का बारीकी से अध्ययन किया। अपनी रिपोर्ट में इस समूह ने नोट किया है कि इस प्रकार की संस्थाओं की मौज़ूदगी के कारण न केवल इस सेक्टर में आत्म-विनियमन तथा सुदृढ़ कारपोरेट गवर्नेंस का एक वातावरण तैयार करने में मदद मिली बल्कि इन देशों के विनियामक प्राधिकारों को भी काफी सहूलियत मिली। कार्य समूह ने भी माना है कि अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन अपनी खूबियों और व्यावसायिक सेवाओं तथा आकस्मिक चलनिधि सहायता पहुंचाने में अपनी महारत की बदौलत शहरी सहकारी बैंक सेक्टर के लिए बहुत सहायक साबित होगा।

अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन : ढांचा

चिंतन के दूसरे दौर में यह मुद्दा उठा कि अगर अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन बनाया जाए तो उसका स्वरूप क्या होगा। क्या किसी अखिल भारतीय अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन का गठन किया जाये या अमेरिका तथा कनाडा की तर्ज़ पर हर राज्य का अपना-अपना प्रादेशिक अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन हो। शहरी सहकारी बैंकों का फैलाव और उनका बिजनेस पूरे देश में एक समान नहीं है। पाँच राज्यों यथा- महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश एवं तमिलनाडु को छोड़कर बाकी राज्यों में शहरी सहकारी बैंकों का प्रतिनिधित्व बहुत कम है। इन परिस्थितियों में हर राज्य में एक प्रादेशिक अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन का विचार व्यावहारिक नहीं पाया गया और राष्ट्रीय स्तर पर केवल एक अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन के पक्ष में सहमति बनी है। यह समस्त शहरी सहकारी बैंकों के लिए केंद्रीय स्तर पर एक क्रेडिट संस्था के रूप में कार्य करेगा। यह उन्हें ऋण तथा अग्रिम, पुनर्वित्त, भुगतान और निपटान, आईटी, एटीएम नेटवर्क, निवेश बैंकिंग, निधि प्रबंधन, प्रबंधन परामर्श, क्षमता निर्माण सेवाएं मुहैया कराने के अलावा वक्त-. बेवक्त जरूरत पड़ने पर पूंजी सहायता भी प्रदान करेगा। अब शायद सहकारिता बैंकिंग की वह चिंता भी दूर हो जाए जो माइकर समाशोधन, आरटीजीएस, एसजीएल/सीएसजीएल खातों से संबंधित पात्रता की नयी शर्तों के कारण पैदा हुयी हो। इस प्रकार शहरी सहकारी बैंकों की अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन जैसी व्यवस्था से बहुत सारी आशाएं जुड़ गयी हैं। अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन से उन्हें अपना बहुत भला होने की अपेक्षा इसलिए भी है कि अब उनको भुगतान और निपटान की निर्बाध सेवाएं प्राप्त हो सकेंगी।

यह तो तय हो गया कि राष्ट्रीय स्तर पर केवल एक ही केंद्रीय अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन होगा और उसका गठन एक शीर्ष सहकारी बैंक के रूप में किया जाए जो बहु-राज्यीय सहकारी समितियां अधिनियम, 2002 के अंतर्गत पंजीकृत हो और सभी शहरी सहकारी बैंक उसके सदस्य बनकर शेयर पूंजी में हिस्सेदारी करें।

अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन के ढांचे को लेकर काफी विचार-विमर्श हुआ। यह तो तय हो गया कि राष्ट्रीय स्तर पर केवल एक ही केंद्रीय अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन होगा और उसका गठन एक शीर्ष सहकारी बैंक के रूप में किया जाए जो बहु-राज्यीय सहकारी समितियां अधिनियम, 2002 के अंतर्गत पंजीकृत हो और सभी शहरी सहकारी बैंक उसके सदस्य बनकर शेयर पूंजी में हिस्सेदारी करें। यूरोपीय देशों में यह मॉडल सफल रहा है। लेकिन सहकारी बैंकिंग से जुड़े भारतीय अनुभवों को कसौटी माना जाए तो यदि अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन एक सहकारी बैंक की शक्ल में आया तो उसके अस्तित्व को कानूनी मोर्चे पर वही चुनौती मिलेगी जो एक शहरी सहकारी बैंक को मिलती है। मसलन वह वित्तीय बाजार से पूंजी नहीं जुटा सकेगा। उसे इसके लिए शहरी सहकारी बैंकों पर निर्भर रहना पड़ेगा। इसके अलावा भारत का मौज़ूदा कानूनी ढाँचा राष्ट्रीय स्तर पर किसी शीर्ष शहरी सहकारी बैंक की स्थापना की अनुमति नहीं देता।

इसके अलावा अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन को एक कंपनी की शक्ल में भी रूपायित करने पर विचार किया गया जो सहकारिता के सिद्धांतों के अनुरूप एक ग़ैर-मुनाफा (नॉन-प्रॉफिट) संगठन हो । लेकिन बाद में इस विचार को भी आगे नहीं बढ़ाया जा सका क्योंकि भारतीय कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 25 के मुताबिक केंद्र सरकार केवल वाणिज्य, कला, विज्ञान, धर्मार्थ आदि जैसे कार्यों को बढ़ावा देने के लिए ऐसी कंपनियों के गठन की अनुमति देता है।

फिर घूम-फिरकर बात आयी कि अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन भी एक बैंकिंग कंपनी हो। आस्ट्रेलिया, कनाडा, अमेरिका आदि देशों के अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन इसी ढर्रे पर काम कर रहे हैं। लेकिन फिर यह पाया गया कि इस रूप में भी अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन को निर्बाध काम करने में कठिनाइयाँ महसूस हो सकती हैं। वह भी भारतीय रिज़र्व बैंक तथा सेबी (यदि सूचीबद्ध कंपनी हो) के विनियामक और पर्यवेक्षी दायरे में आ जाएगा। ऐसी स्थिति में अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन एक बैंकिंग कंपनी होने के नाते शहरी सहकारी बैंकों द्वारा जुटायी गयी निधियों का विनिधान बाहर कर सकते हैं जो सहकारिता की मूल भावना के विपरीत होगा। अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन का सर्वाधिक उपयुक्त स्वरूप बैंकिंग कंपनी को ही पाया गया है लेकिन कठिनाई यह है कि किसी बैंकिंग कंपनी की स्थापना के लिए मौज़ूदा लाइसेंसीकरण नीति के अनुसार न्यूनतम स्टार्ट-अप कैपिटल 300 करोड़ रुपये होनी चाहिये। इतनी बड़ी राशि जुटाना आसान नहीं है क्योंकि स्वेच्छा से शामिल होने वाले बैंकों से शेयर पूंजी के रूप में भारी राशि नहीं ली जा सकती जब कि सहकारी बैंकिंग क्षेत्र पहले से ही पूंजी जुटाने की समस्या से जूझ रहा हो।

इसके बाद अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन को एक ग़ैर बैंकिंग वित्तीय कंपनी के रूप में भी कल्पित किया गया। यह कहा गया कि अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन को एक एनबीएफसी के रूप में स्थापित करना आसान होगा क्योंकि तब न्यूनतम स्टार्ट-अप कैपिटल केवल 2 करोड़ रुपये चाहिये। कार्यकारी समूह का मत था कि प्रारंभ में एक जमाराशि न स्वीकार करने वाली एनबीएफसी (नॉन-डिपॉजिट टेकिंग) के रूप में अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन का गठन सबसे उपयुक्त होगा। कालांतर में यदि व्यवहारिक अनुभव अच्छे मिले तो उसे एक बैंकिंग कंपनी में तब्दील किया जा सकता है।

शेयर पूंजी

चूंकि अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन में शहरी सहकारी बैंकों की सदस्यता को वैकल्पिक रखने का सुझाव दिया गया है इसलिए शेयर पूंजी के रूप में उन पर कुछ थोपा नहीं गया है। आम राय से यह तय किया गया है कि उसके लिए न्यूनतम प्राधिकृत पूंजी 200 करोड़ रुपये तथा प्रारंभिक अभिदत्त पूंजी 100 करोड़ रुपये हो। केंद्र/राज्य सरकारें ग्रामीण सहकारी समितियों को आर्थिक सहायता प्रदान करती रही हैं। लेकिन शहरी सहकारी बैंकों को इस तरह की कोई सहायता नहीं मिली है जबकि देश की वित्तीय प्रणाली को मजबूत बनाने के लिए यह जरूरी हो जाता है कि शहरी बैंकिंग क्षेत्र को मजबूती प्रदान की जाये। अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन इस दिशा में एक अभिनव प्रयोग है। अत: उम्मीद की जाती है कि केंद्र/राज्य सरकार से शहरी सहकारी बैंकों को उपयुक्त राजकोषीय प्रोत्साहन प्राप्त होगा और वे इस प्रकार अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन की शेयर पूंजी के निर्माण में योगदान कर सकेंगे एक इसके अलावा एक मार्ग यह भी निकाला गया है कि एकबारगी सदस्यता शुल्क के रूप में सभी सदस्य बैंकों से 1 लाख रुपये लिए जाएं और उससे रिज़र्व फंड खड़ा किया जाये। अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन को एक नॉन-डिपॉजिट टेकिंग गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनी के रूप में स्वीकार किया गया है इसलिए वह अपने लिए कार्यशील पूंजी (i) बैंकों/वित्तीय संस्थाओं से उधार (ii) शहरी सहकारी बैंकों से मीयादी जमाराशि (iii) बाण्ड/डिबेंचर जैसे ऋण लिखतों (iv) प्रतिभूतियों सहित अपनी वित्तीय आस्तियों पर पुनर्वित्त के स्रोतों से प्राप्त कर सकती है। कार्यकारी समूह का एक विचार यह भी था कि यदि भारतीय रिज़र्व बैंक चाहे तो शहरी सहकारी बैंकों को निम्नलिखित रियायतें दे सकता है:

i) अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन के पास जमा की गयी उनकी राशि को सीआरआर/एसएलआर मान सकता है;

ii) अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन को भुगतान और निपटान प्रणाली की सदस्यता दे सकता है;

iii) भविष्य में जरूरत पड़ने पर उसे एटीएम नेटवर्क आदि स्थापित करने की अनुमति देना।

प्रबंधन

अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन के प्रबंधन में व्यावसायिकता और कार्पोरेट गवर्नेंस की सर्वश्रेष्ठ प्रथाओं का पुट होना चाहिये। उसके निदेशक मंडल में स्वतंत्र निदेशक एवं मुख्य कार्यपालक अधिकारी होना चाहिये जो एक प्रतिष्ठित प्रोफेशनल व्यक्ति हो और जिसके पास सहकारी बैंकिंग का गहरा ज्ञान और वित्तीय व्यवस्था की व्यापारिक महारत हो। शुरूआती वर्षों में भारतीय रिज़र्व बैंक अपना एक निदेशक नामित कर अम्ब्रेला

आर्गनाइजेशन को मार्गदर्शन प्रदान कर सकता है। उसके बाद उसके निदेशक मंडल में अपना एक पर्यवेक्षक नियुक्त कर सकता है।

आकस्मिक निधि सुविधा योजना

अस्थायी चलनिधि की किल्लत के कारण कभी-कभार आकस्मिक वित्तीय संकट में फँसे शहरी सहकारी बैंकों को उबारने के लिए आकस्मिक चलनिधि सहायता की अपेक्षा अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन से की जाने वाली अपेक्षाओं में से सबसे प्रमुख अपेक्षा रही है। लेकिन एक एनबीएफसी के रूप में अभिकल्पित अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन की सीमाओं को देखते हुए उससे आकस्मिक चलनिधि तथा शोधक्षमता सहायता की अपेक्षा नहीं की जानी चाहिये। यह आकस्मिक निधि सुविधा राज्यविशेषी होनी चाहिए क्योंकि बैंकों के माली हालत का प्रभाव स्थानीय रूप से एक राज्य के भीतर तक ही सीमित होता है। यह सहायता एक अल्पकालिक सुलभ ऋण (सॉफ्ट लोन) के रूप में दी जायेगी जिसके लिए कोई संपार्श्विक जमानत जरूरी नहीं होगी। जिन राज्यों में कम शहरी सहकारी बैंक हैं वहां के बैंकों को ऐसी सुविधा का प्रस्ताव देने वाले किसी दूसरे राज्य की आकस्मिक निधि सुविधा योजना से जुड़ जाना चाहिये। आकस्मिक निधि सुविधा मुहैया कराने वाले राज्यों में आकस्मिक निधि सुविधा न्यास स्थापित किया जाना चाहिये। समस्याग्रस्त शहरी सहकारी बैंकों को इस निधि से वित्तीय सहायता प्रदान करने से पहले न्यासी मंडल द्वारा उस राज्य से संबंधित टैफकब की सिफ़ारिशें भी ली जानी चाहिये क्योंकि टैफकब को उस राज्य विशेष की परिस्थितियां और उस बैंक की गतिविधियों का पूरा ज्ञान होता है। टैफकब को ही ट्रस्ट फंड स्थापित करने के लिए संचालन समिति के रूप में काम करने की भी जिम्मेदारी दी जानी चाहिये।

पुनर्जीवन निधि

सहकारिता बैंकिंग क्षेत्र में कमजोर एवं रुग्ण बैंकों की एक बड़ी तादाद है। इनकी मुख्य समस्या शोधक्षमता की है क्योंकि उनका नेटवर्थ ऋणात्मक है। इनकी हालत सुधारने के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक के पास कई उपाय हैं जैसेकि टैफकब के मंच पर सक्षम एवं अक्षम बैंकों की पहचान, पूंजी में वृद्धि करने के लिए विश्वनाथन समिति द्वारा सुझाए गए नए लिखत, कमजोर बैंकों का विलय, वित्तीय पुनर्रचना आदि इसी प्रकार के उपाय हैं। ऐसे बैंकों की कायापलट करने चलें तो लगभग 2000 करोड़ रुपये चाहिये। इतनी बड़ी धनराशि इस क्षेत्र के बैंक अपने मुनाफे में से काटकर तो नहीं देंगे जबकि इस सेक्टर का कुल मुनाफा ही 1000 करोड़ रुपये है। केंद्र/राज्य सरकारों की सहायता के बिना पुनर्जीवन निधि की स्थापना व्यावहारिक प्रतीत नहीं होती।

अंत में

हाल के वर्षों में टैफकब सहकारिता बैंकिंग सेक्टर की डावाँडोल स्थिति को सँभालने में एक मजबूत संस्थागत प्रयास के रूप में सामने आया है। दोहरे नियंत्रण के कारण इस सेक्टर को जिन समस्याओं से जूझना पड़ रहा था उनसे काफी राहत मिली है। मुख्य रूप से जिस एक समस्या से यह सेक्टर अरसे से परेशान है वह उसकी खराब वित्तीय स्थिति से जुड़ी है। इसके अलावा सूचना प्रौद्योगिकी के बढ़ते प्रयोग और बैंकिंग के क्षेत्र में नित-नवीन परिवर्तनों के साथ-साथ अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर मान्य प्रथाओं को बैंकिंग परिचालनों में शामिल करने से बैंकिंग के क्षितिज पर व्यापक बदलाव हो रहे हैं। पिछले कुछ दशकों में हमारे देश की बैंकिंग भी अर्थव्यवस्था को उदारीकरण और भूमंडलीकरण का स्पर्श मिलने के बाद काफी हद तक बदल गयी है। इसके बाद पिछले वर्ष की विश्व आर्थिक मंदी ने भी दुनिया भर की बैंकिंग व्यवस्था को चिंतन और विश्लेषण के नए संदर्भ और नए मुद्दे दिये हैं। ऐसे परिदृश्य में वाणिज्यिक बैंकों के साथ-साथ सहकारी बैंकों की भागीदारी को भी निर्णायक बनाना जरूरी है। भारतीय रिज़र्व बैंक इस दिशा में लगातार प्रयास करता रहा है। सहकारी बैंकिंग क्षेत्र को एक पुख्ता आधार देने, उसे एक सुदृढ़ बैंकिंग चैनल का नया चेहरा देने तथा उसमें खुद को नये सिरे से स्थापित करने की क्षमता पैदा करने में अम्ब्रेला आर्गनाइजेशन निश्चित रूप से मील का पत्थर सिद्ध होगा। बैंकिंग जगत को भारतीय रिज़र्व बैंक का यह एक नया बेशक़ीमती तोहफ़ा होगा। यह न केवल सहकारी बैंकिंग के कायाकल्प का ब्लूप्रिंट है बल्कि उसकी तकदीर सँवारने वाला भाग्यविधाता भी बनेगा।

भारत में शहरी सहकारी बैंक : समस्याएं और समाधान

● विनय बंसल*

सहकारी संगठन आपसी सहयोग पर आधारित वह स्वैच्छिक संगठन है जो निश्चित आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बनाया जाता है। साधारणत: सहकारी संगठनों का संबंध उन लोगों से होता है जो आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए या सीमित साधनों वाले हैं। निश्चित आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति करना तो सहकारी संगठनों का प्रत्यक्ष उद्देश्य होता है, इनका अप्रत्यक्ष उद्देश्य अपने सदस्यों में आत्मनिर्भरता और परस्पर सहायता की भावना पैदा करना होता है।

दक्षिण भारत के कांजीवरम नामक एक छोटे से कस्बे में सबसे पहले सन् 1904 में कांजीवरम अर्बन को-ऑपरेटिव बैंक की स्थापना हुई। बाद में 1912 में सहकारिता को राज्य का विषय बनाया गया। स्वतंत्रता के बाद पहली पंचवर्षीय योजना में सहकारिता को लोकतांत्रिक नियोजन के रूप में परिभाषित किया गया।

भारत में सहकारी आंदोलन का इतिहास 106 वर्ष पुराना है। इसकी औपचारिक शुरूआत 1904 से मानी जाती है, जब पहला सहकारी ऋण समितियां कानून अस्तित्व में आया। तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने भारत में सहकारिता कानून लागू किया जो रेफेसन मॉडल (डेनमार्क) पर आधारित था। रेफेसन मॉडल पर आधारित सहकारी समितियों का निर्माण आसपास के किसान असीमित दायित्व (या कभी-कभी सीमित दायित्व) पर चन्दा लेकर या अंश बेचकर करते हैं। ऐसी समितियों का प्रबंध अवैतनिक लोगों के हाथों में होता है। इन समितियों का कार्यक्षेत्र सीमित होता है तथा सदस्यों का दायित्व असीमित होता है। ये समितियां केवल अपने सदस्यों को ही ऋण देती हैं। सामान्यत: इन समितियों का दृष्टिकोण व्यावसायिक नहीं होता है।

बाद में शुल्ज डेलिश मॉडल (जर्मनी) पर आधारित समितियां भी गठित की गईं। शुल्ज डेलिश मॉडल पर आधारित सहकारी समितियों का निर्माण किसी शहर में रहने वाले कुछ कारीगर सीमित दायित्व के अंश बेचकर करते हैं। ये समितियां निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अपने सदस्यों की सहायता करती हैं। ऐसी समितियों के प्रबंध में बाहर के भी लोग लिए जाते हैं जिससे इनका प्रबंध वेतनभोगी लोगों द्वारा होता है। इन समितियों का कार्यक्षेत्र असीमित होता है तथा सदस्यों का दायित्व सीमित होता है। ये समितियां अपने सदस्यों के अतिरिक्त अन्य लोगों को भी ऋण देती हैं। इन समितियों का दृष्टिकोण व्यावसायिक होता है।

दक्षिण भारत के कांजीवरम नामक एक छोटे से कस्बे में सबसे पहले सन् 1904 में कांजीवरम अर्बन को-ऑपरेटिव बैंक की स्थापना हुई। बाद में 1912 में सहकारिता को राज्य का विषय बनाया गया। स्वतंत्रता के बाद पहली पंचवर्षीय योजना में सहकारिता को लोकतांत्रिक नियोजन के रूप में परिभाषित किया गया। राष्ट्रीय विकास परिषद ने 1958 में राष्ट्रीय सहकारी नीति प्रस्ताव में सहकारिता के भावी विकास के लिए ब्लूप्रिंट तैयार किया।

1969 में जब 14 बड़े वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण हुआ उस समय तक सहकारी ऋण संस्थाएं ग्रामीण ऋण का एकमात्र साधन थीं। 1975 में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना के बाद वाणिज्यिक बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने बड़ी संख्या में शाखाएं खोलीं। लेकिन अभी भी इनकी संख्या सहकारी संस्थाओं से काफी कम है। सहकारी संस्थाएं अभी भी ऐसी महत्वपूर्ण संस्थाएं हैं जो ग्रामवासियों तथा ग्रामीण किसानों के जीवन को बहुत स्पर्श करती हैं। प्राथमिक कृषि ऋण समितियां (लघु अवधि सहकारी ऋण ढांचे पर आधारित) जमा संग्रहण हेतु प्रयास नहीं करती हैं बल्कि उपलब्ध पुनर्वित्त का लाभ उठाकर ऋण संवितरण हेतु एक चैनल के रूप में कार्य करती हैं।

* भारतीय स्टेट बैंक, आगरा मुख्य शाखा, आगरा

सहकारी बैंक एक ऐसा बैंकिंग संगठन है जिसमें लोग स्वेच्छा से समानता के आधार पर अपने आर्थिक हितों की अभिवृद्धि के लिए संगठित होकर बैंकिंग व्यवसाय करते हैं। भारत में सहकारी बैंकिंग क्षेत्र का ढांचा जटिल है। आबादी के विविध वर्गों की ऋण आवश्यकताएं, स्थानीय और आवधिक दोनों ही अर्थों में, सहकारी बैंकिंग के विभिन्न खंडों द्वारा पूरी की जाती हैं। जहां शहरी क्षेत्र की सेवा एकस्तरीय ढांचे वाले शहरी सहकारी बैंकों (प्राथमिक सहकारी बैंकों) द्वारा दी जाती हैं, वहीं ग्रामीण क्षेत्र को अल्पावधि और दीर्घावधि ऋण देने वाली संस्थाओं के दो भिन्न सेटों द्वारा व्यापक रूप से सेवाएं दी जाती हैं। अल्पावधि सहकारी ऋण संस्थाओं का ढांचा त्रि-स्तरीय होता है जिसमें शीर्ष स्तर पर राज्य सहकारी बैंक (राज्य स्तरीय), मध्य स्तर पर जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक (जिला स्तरीय) और आधार स्तर पर प्राथमिक कृषि ऋण समितियां/प्राथमिक सहकारी समितियां (ग्राम्य स्तरीय) होती हैं।

दीर्घावधि सहकारी ऋण संस्थाओं का ढांचा सामान्यत: द्वि-स्तरीय होता है जिसमें राज्य स्तर पर राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक और जिला या विकास खण्ड स्तर पर प्राथमिक सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक होते हैं। कुछ राज्यों में दीर्घावधि ऋण संस्थाओं का ढांचा ऐकिक है और वहां राज्य सहकारी बैंक अपनी स्वयं की शाखाओं के माध्यम से कार्य करते हैं जबकि अन्य राज्यों में ऐकिक और द्वि-स्तरीय, दोनों की प्रणालियों के साथ मिश्रित ढांचा मौजूद है। जिन राज्यों में दीर्घावधिक सहकारी ऋण संस्थाएं नहीं हैं, वहां यह कार्य राज्य सहकारी बैंकों द्वारा किया जाता है।

शहरी सहकारी बैंकों का स्वरूप

शहरी सहकारी बैंक राज्य सहकारी समिति अधिनियम (संबंधित राज्य) अथवा बहु-राज्य सहकारी समिति अधिनियम, 2002 के अंतर्गत सहकारी समिति के रूप में पंजीकृत किए जाते हैं। शहरी सहकारी बैंक महानगरों, शहरों व अर्द्ध-शहरी क्षेत्रों में मध्य वर्गीय व निम्न वर्गीय लोगों को वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं। 1 मार्च 1966 से पहले इन समितियों का विनियामक/पर्यवेक्षक संबंधित राज्य का रजिस्ट्रार ऑफ को-ऑपरेटिव सोसाइटीज अथवा बहु-राज्य सहकारी समिति के मामले में सेंट्रल रजिस्ट्रार ऑफ को-ऑपरेटिव सोसाइटीज होता था। 1 मार्च 1966 से बैंककारी विनियमन अधिनियम के कुछ प्रावधान सहकारी बैंकों पर भी लागू हैं।

वित्तीय कार्यनिष्पादन के आधार पर शहरी सहकारी बैंकों को 4 वर्गों में बांटा गया है। यह वित्तीय निष्पादन पूंजी पर्याप्तता, अनर्जक आस्तियों का स्तर और लाभ-हानि के इतिहास सहित विभिन्न मानदण्डों द्वारा निर्धारित किया जाता है। ग्रेड-1 के शहरी सहकारी बैंक को सापेक्षिक रूप से मजबूत बैंक माना जाता है। ग्रेड-2 के शहरी सहकारी बैंक को भली-भांति परिचालित बैंक माना जाता है। ग्रेड-3 एवं ग्रेड-4 के शहरी सहकारी बैंकों को क्रमश: कमजोर एवं रुग्ण बैंक माना जाता है। 31 मार्च 2009 को शहरी सहकारी बैंकों का ग्रेडवार वितरण **तालिका-1** में दर्शाया गया है :

तालिका-1

शहरी सहकारी बैंकों का ग्रेडवार वितरण

	मार्च 2005	मार्च 2006	मार्च 2007	मार्च 2008	मार्च 2009
ग्रेड-1	807	716	652	748	845
ग्रेड-2	340	460	598	526	484
ग्रेड-3	497	407	295	258	219
ग्रेड-4	228	270	268	238	173
	1872	1853	1813	1770	1721

तालिका-2
शहरी सहकारी बैंकों की जमाराशियों व अग्रिमों को ग्रेडवार वितरण(31 मार्च 2009 की स्थिति)

	शाखाओं की संख्या	कुल के प्रतिशत के रूप में बैंकों की संख्या	जमाराशियां (करोड़ रुपए)	कुल के प्रतिशत के रूप में जमाराशियां	अग्रिम (करोड़ रुपए)	कुल के प्रतिशत के रूप में अग्रिम
ग्रेड-1	845	49.1	103432	65.2	62842	64.2
ग्रेड-2	484	28.1	30956	19.5	19251	19.7
ग्रेड-3	219	12.7	8040	5.1	5498	5.6
ग्रेड-4	173	10.1	16304	10.3	10326	10.5
कुल	1721	100	158733	100	97918	100

हाल के वर्षों में शहरी सहकारी बैंकों की संख्या में गिरावट आई है। यह गिरावट इस क्षेत्र में समेकन प्रक्रिया का परिणाम है जैसा कि ग्रेड-3 और ग्रेड-4 से संबंधित कमज़ोर एवं रुग्ण शहरी सहकारी बैंकों की संख्या में गिरावट से स्पष्ट है। मार्च 2005 में कमजोर एवं रुग्ण बैंकों की संख्या 725 थी जो मार्च 2009 में घटकर 392 रह गई।

मार्च 2009 के अंत में शहरी सहकारी बैंकों की कुल जमाराशियों में ग्रेड-1 बैंकों का हिस्सा 65.2 प्रतिशत था जबकि इन बैंकों के कुल अग्रिमों में ग्रेड-1 बैंकों का हिस्सा 64.2 प्रतिशत था। ग्रेड-1 शहरी सहकारी बैंकों की जमाराशियों और अग्रिमों में वृद्धि का आशय यह हुआ कि शहरी सहकारी बैंकों के शेष तीनों ग्रेडों से शहरी सहकारी बैंक के हिस्से में गिरावट हुई। इसका अर्थ यह हुआ कि सुदृढ़ वित्तीय निष्पादन वाले शहरी सहकारी बैंकों में बैंकिंग कारोबार का संकेन्द्रण बढ़ रहा है।

विनियामक प्रयोजनों के लिए शहरी सहकारी बैंकों को दो टियरों (अर्थात टियर-1 और टियर-2) में वर्गीकृत किया गया है। मार्च 2008 से टियर-1 शहरी सहकारी बैंक की परिभाषा संशोधित की गई और निम्नलिखित वर्गों के अंतर्गत आने वाले बैंकों को टियर-1 शहरी सहकारी बैंक के रूप में वर्गीकृत किया गया है : (1) इकाई बैंक अर्थात वे बैंक जिनकी केवल एक शाखा/प्रधान कार्यालय है और वे बैंक जिनकी जमाराशियां 100 करोड़ रुपए से कम हैं तथा जिनकी शाखाएं मात्र एक जिले के भीतर हैं (2) वे बैंक जिनकी जमाराशियां 100 करोड़ रुपए से कम हैं और उनकी शाखाएं एक से अधिक जिलों में हैं बशर्ते, ये शाखाएं सटे हुए जिलों में हैं और अलग से एक जिले की शाखाओं की जमाराशियां और अग्रिम क्रमश: बैंक की कुल जमाराशियों और अग्रिम के कम से कम 95 प्रतिशत हिस्से का निर्माण करते हैं (3) 100 करोड़ रुपए से कम की जमाराशि वाले बैंक जिनकी शाखाएं मूलत: एक ही जिले में थीं लेकिन बाद में जिले के पुनर्गठन के कारण बहु-जिला हो गई। (शेष सभी शहरी सहकारी बैंक टियर-2 के रूप में वर्गीकृत किए जाते हैं)

मार्च 2009 के अंत में टियर-1 शहरी सहकारी बैंकों की संख्या टियर-2 शहरी सहकारी बैंकों की संख्या से काफी अधिक थीं। कुल जमाराशियों और अग्रिमों में टियर-1 शहरी सहकारी बैंकों का हिस्सा 24 प्रतिशत से कम था, शेष हिस्सा टियर-2 शहरी सहकारी बैंकों का था जैसा कि **तालिका-3** से स्पष्ट है।

शहरी सहकारी बैंकों की समस्याएं

दोहरा नियंत्रण

1 मार्च 1966 से बैंककारी विनियमन अधिनियम के कुछ प्रावधान सहकारी बैंकों पर भी लागू हो जाने से सहकारी

तालिका-3
शहरी सहकारी बैंकों का टियरवार वितरण(31 मार्च 2009 की स्थिति)

शहरी सहकारी बैंक	संख्या	कुल में प्रतिशत अंश	जमाराशियां (करोड़ रुपए)	कुल में प्रतिशत अंश	अग्रिम (करोड़ रुपए)	कुल में प्रतिशत अंश
टियर-1	1429	83	37937	23.9	22913	23.4
टियर-2	292	17	120796	76.1	75005	76.6
कुल	1721	100	158733	100	97918	100

समितियों पर दोहरा नियंत्रण लागू है। शहरी सहकारी बैंकों के बैंकिंग संबंधी कार्यों (शाखा लाइसेंस, परिचालन क्षेत्र का विस्तार, जमाराशियों और ऋणों पर ब्याज दरें, लेखापरीक्षा, निवेश मानदण्ड, पूंजी पर्याप्तता अनुपात, आय अभिज्ञान व आस्ति वर्गीकरण के विवेकपूर्ण मानदण्ड) पर भारतीय रिज़र्व बैंक का नियंत्रण है। इन बैंकों के प्रबंधकीय, प्रशासनिक एवं अन्य कार्यों (पंजीयन, उप नियमों का अनुमोदन, प्रबंध समिति का चुनाव, सदस्यों के अधिकारों का संरक्षण, प्रबंध समिति भंग करना आदि) का पर्यवेक्षण राज्य सरकारों द्वारा किया जाता है।

भारतीय रिज़र्व बैंक का शहरी सहकारी बैंकों पर नियंत्रण अधिकार सीमित ही है। वह उन्हें बैंकिंग कार्य करने के लिए लाइसेंस दे सकता है और उनके लिए अपने खातों एवं कार्यप्रणाली संबंधी रिपोर्ट भेजने के मानदंड निर्धारित कर सकता है, पर वह उनके निदेशक मंडलों को नियंत्रित नहीं कर सकता और न ही किसी गंभीर दुराचार या लापरवाही की स्थिति में उन्हें बदल ही सकता है। यह शक्ति उस राज्य की सहकारी समिति पंजीयक के पास है जिसमें वह शहरी सहकारी बैंक पंजीकृत है।

दोहरे नियंत्रण मामले से निपटने के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक ने शहरी सहकारी बैंकों के लिए एक सुदृढ़ और एकीकृत विनियामक ढांचा विकसित करने हेतु कई कदम उठाए हैं। इन कदमों में 2005 में भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा एक विज़न दस्तावेज तैयार करना भी शामिल है जिसमें शहरी सहकारी बैंकों पर दोहरे नियंत्रण से निपटने की सिफारिश की गई है ताकि जमाकर्ताओं के हितों की रक्षा सुनिश्चित की जा सके, दुष्प्रभावों को फैलने से रोका जा सके और साथ ही स्थानीय समुदायों को उपयोगी सेवा दी जा सके। इस विज़न दस्तावेज़ के मुख्य उद्देश्य निम्नवत हैं :

- इस क्षेत्र की इकाइयों के अलग-अलग चरित्र को देखते हुए मौजूदा विनियामक तथा पर्यवेक्षी नज़रिये को तर्कसंगत बनाना।
- प्रौद्योगिकी के स्तर को बढ़ाकर पर्यवेक्षण पर ध्यान देने वाली और निरंतर प्रणाली को सुविधाजनक बनाना।
- व्यावसायिकता का स्तर बढ़ाना और कुशलता के स्तर को बढ़ाने के लिए प्रशिक्षण देकर और साथ ही साथ बैंकों की निर्णय लेने की प्रक्रिया/प्रबंधन में बड़े जमाकर्ताओं को शामिल करके शहरी सहकारी बैंकों में गवर्नेंस की गुणवत्ता में सुधार लाना।
- मौजूदा विधिक ढांचे को देखते हुए ऐसा तंत्र तैयार करना जिससे दोहरे नियंत्रण की समस्या से निपटा जा सके।
- इस क्षेत्र में कमज़ोर लेकिन व्यवहार्य इकाइयों का पता लगाने के लिए परामर्शदात्री व्यवस्थाएं करना और उन्हें पटरी पर वापस लाने के लिए ढांचा (पुनरुज्जीवन मार्ग) तैयार करना। यदि आवश्यक हो तो इस कार्य को समेकन की प्रक्रिया के ज़रिए करना।
- इस क्षेत्र में व्यावहारिक रूप से गैर-सक्षम इकाइयों का पता लगाना और ऐसी इकाइयों के लिए बाधारहित तरीके से कारोबार से बाहर निकालने का ढांचा (बहिर्गमन मार्ग) तैयार करना।

यह दस्तावेज़ सहकारी बैंकिंग क्षेत्र के हाल के इतिहास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है। इसके आधार पर अब तक

26 राज्य सरकारों ने भारतीय रिज़र्व बैंक के साथ समझौता ज्ञापन हस्ताक्षरित कर दिया है। इन राज्यों में एक परामर्शी एवं सहयोगात्मक मंच के रूप में राज्य स्तरीय टैफकब (टॉस्क फोर्स फॉर को-ऑपरेटिव अर्बन बैंक्स) गठित कर दिए गए हैं। ये टैफकब व्यवहार्य और अव्यवहार्य शहरी सहकारी बैंकों की पहचान करते हैं। व्यवहार्य शहरी सहकारी बैंकों के लिए पुनरुज्जीवन मार्ग तथा अव्यवहार्य शहरी सहकारी बैंकों के लिए अबाधित बहिर्गमन मार्ग (विलय, समिति में परिवर्तन, समापन आदि) तैयार करते हैं। बहु-राज्यीय शहरी सहकारी बैंकों के विनियमन और पर्यवेक्षण के उद्देश्य से एक केन्द्रीय टैफकब का भी गठन किया गया है। इससे सहकारी बैंकिंग में दोहरे नियंत्रण की समस्या से निजात मिलेगा।

अकुशल प्रबंध

शहरी सहकारी बैंकों में पेशेवर लोगों जिन्हें आधुनिक बैंकिंग, सूचना प्रौद्योगिकी प्रणाली का ज्ञान हो, की कमी है। सहकारिताओं की सफलता उनके कर्तव्य निर्वहन की योग्यता एवं उनके सदस्यों की अपेक्षाओं को पूर्ण करने पर निर्भर है। सहकारी बैंकों का संगठन एवं प्रबंध कभी-कभी उन लोगों के हाथों में होता है जिनमें पर्याप्त शैक्षणिक योग्यता, आवश्यक अनुभव एवं कार्यज्ञान का अभाव है। अकुशल प्रबंध के कारण ही 2001 में शेयर दलाल केतन पारेख ने शेयर बाजार सट्टे में माधवपुरा मर्केण्टाइल बैंक (अहमदाबाद) को 977 करोड़ रुपए का चूना लगाया। बैंक प्रबंधन की अकुशलता के चलते ही केतन सेठ की होमट्रेड नामक शेयर दलाली वाली फर्म ने नागपुर जिला सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक को चूना लगाया। अनाप-शनाप कर्ज देने के कारण चारमीनार अर्बन को-ऑपरेटिव बैंक (हैदराबाद) का दिवाला पिटा तथा सूरत नागरिक सहकारी बैंक सहित कई सहकारी बैंकों की मोटी रकम डूबी।

शहरी सहकारी बैंकों का प्रबंधन राज्य स्तर के राजनेताओं द्वारा आसानी से प्रभावित किया जा सकता है। अनेक राजनेताओं का सहकारी बैंकों के प्रति खासा आकर्षण है। कई विधायक और मंत्री सहकारी बैंकों के अध्यक्ष हैं। सहकारी बैंकों में को-ऑपरेट गवर्नेंस का अभाव है, पारदर्शिता नहीं है। तथापि भारतीय रिज़र्व बैंक ने शहरी सहकारी बैंकों को सूचित किया है (अप्रैल 2002) कि वे हर समय अपने निदेशक मंडल में उचित बैंकिंग अनुभव रखने वाले अथवा संबद्ध पेशेवर योग्यताएं रखने वाले (सनदी लेखाकार, विधि विशेषज्ञ, वित्तीय क्षेत्र की व्यावसायिक योग्यता रखने वाला व्यक्ति) कम से कम 2 पेशेवर निदेशक रखें।

दोषपूर्ण ऋण नीति

शहरी सहकारी बैंकों की ऋण नीतियां भी दोषपूर्ण हैं। ऋण लेने का पात्र बनने के लिए किसी व्यक्ति के पास ऋणराशि के 1-5 प्रतिशत तक अंशधारिता होनी चाहिए। मात्र 1 प्रतिशत अंशधारिता से उसे बैंक की वार्षिक महासभा में वोट देने का अधिकार मिल जाता है। इससे उधार लेने वाला व्यक्ति अपनी शेयरधारक होने की क्षमता में ऋण नीतियों को प्रभावित कर सकता है। ऋण देने संबंधी नीतियां सामान्यत: सहकारी बैंकों के निदेशक मंडल तय करते हैं, अत: निदेशक मंडलों पर अपना अधिकार स्थापित करने में भारतीय रिज़र्व बैंक की असमर्थता से इन बैंकों में अनर्जक आस्तियों का स्तर बढ़ जाता है जिससे शहरी सहकारी बैंकों की वित्तीय मजबूती पर खतरा उत्पन्न हो जाता है।

कमजोर बैंक

देश में 50 प्रतिशत सहकारी बैंक कमजोर हैं तथा कमजोर सहकारी बैंकों में 30 प्रतिशत बैंकों की पूंजी 1 लाख रुपए से कम है। कई सहकारी बैंक या तो बंद हो गए हैं या बंदी के कगार पर हैं। साउथ इंडियन को-ऑपरेटिव बैंक तथा मराठा मंदिर सहकारी बैंक जैसे अनेक सहकारी बैंकों की माली हालत खस्ता है। भारतीय रिज़र्व बैंक ने वैद्यनाथन समिति (अगस्त 2004 में गठित) की संस्तुतियों के आलोक में विज़न दस्तावेज का प्रारूप तैयार किया था। विज़न दस्तावेज़ जारी करने और टैफकब के गठन के बाद शहरी सहकारी बैंकों की स्थिति में आशा के अनुरूप सुधार हुआ है, जैसा कि **तालिका-1** से स्पष्ट है।

वैद्यनाथन समिति ने कमजोर सहकारी ऋण संस्थाओं हेतु रिवाइवल पैकेज की संस्तुति की है। इसमें वित्तीय सहायता, विधिक सुधार तथा प्रबंधन की गुणवत्ता में सुधार हेतु उपाय शामिल हैं। रिवाइवल पैकेज में प्रस्तावित 13596 करोड़ रुपए की वित्तीय सहायता के सापेक्ष 41295 प्राथमिक कृषि ऋण समितियों के पुनर्पूंजीकरण हेतु नाबार्ड ने 12 राज्यों में 7561

करोड़ रुपए (फरवरी 2010 तक) की सहायता प्रदान की है तथा राज्य सरकारों ने 689 करोड़ रुपए की सहायता प्रदान की है।

असमान वितरण

भारतीय सहकारी वित्त व्यवस्था में सहकारी ऋण समितियां और सहकारी बैंक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। देश में 1721 शहरी सहकारी बैंक हैं जिनमें से 843 केवल महाराष्ट्र/गोवा और गुजरात में संकेन्द्रित हैं (**तालिका- 4** देखिए)। देश के 5 राज्यों में लगभग 89 प्रतिशत शाखाएं हैं।

तालिका-4
शहरी सहकारी बैंकों की राज्यवार संख्या

राज्य	मार्च 2008	मार्च 2009
महाराष्ट्र एवं गोवा	609	583
गुजरात	271	260
कर्नाटक	280	273
तमिलनाडु एवं पांडिचेरी	130	130
आंध्र प्रदेश	115	114
संपूर्ण भारत	1770	1721

सीमित परिचालन

अधिकतर शहरी सहकारी बैंक बहुत सीमित परिचालन करते हैं। इनकी आय का मुख्य स्रोत ब्याज आय ही है। इनका गैर-निधि आधारित व्यवसाय लगभग नगण्य है। अंतर-बैंक बाजार/पूंजी बाजार तक इनकी सीमित पहुंच है तथा विदेशी मुद्रा व्यवसाय एवं व्यापारी बैंकिंग सेवाओं का दायरा भी सीमित है। इसी प्रकार अधिकतर शहरी सहकारी बैंक डी-मैट एवं क्रेडिट कार्ड सुविधा प्रदान नहीं करते हैं।

हालांकि कुछ शहरी सहकारी बैंक निधि प्रबंधन, आस्ति प्रबंधन, एटीएम, क्रेडिट कार्ड, प्रतिभूतिकरण आदि सेवाएं प्रदान करते हैं। कॉसमॉस को-ऑपरेटिव बैंक (देश का दूसरा सबसे पुराना बैंक) में कोषागार विभाग भी है तथा वह तयशुदा लेनदेन प्रणाली (एनडीएस), तत्काल सकल निपटान प्रणाली (आरटीजीएस), डी-मैट सुविधा, अनिवासी खाते, विदेशी मुद्रा परिवर्तन जैसी सेवाएं प्रदान कर रहा है। यह बैंक कोर बैंकिंग सोल्युशन (सीबीएस) लागू करने वाला देश का पहला सहकारी बैंक है। महाराष्ट्र स्टेट को-ऑपरेटिव बैंक तत्काल सकल निपटान प्रणाली शुरू करने वाला (दिसम्बर 2004) देश का पहला सहकारी बैंक है। यह बैंक शहरी सहकारी बैंकों तथा जिला केन्द्रीय सहकारी बैंकों के लिए विदेशी मुद्रा के प्राधिकृत व्यापारी के रूप में भी कार्य करता है। शामराव विट्ठल को-ऑपरेटिव बैंक आधुनिकतम प्रौद्योगिकी के जरिये (तत्काल सकल निपटान प्रणाली सहित) विस्तृत बैंकिंग सेवाएं प्रदान कर रहा है। सूरत पीपुल्स को-ऑपरेटिव बैंक डिपॉजिटरी सेवाएं प्रदान कर रहा है। यह बैंक दक्षिण गुजरात में डिपॉजिटरी सेवाएं प्रदान करने वाला (वर्ष 1999) प्रथम सहकारी बैंक है। अभ्युदय को-ऑपरेटिव बैंक (मुंबई), एस को-ऑपरेटिव बैंक (मुंबई), भारत को-ऑपरेटिव बैंक (मुंबई), कॉसमॉस को-ऑपरेटिव बैंक (पुणे), ए.पी.महेश को-ऑपरेटिव बैंक (हैदराबाद) सहित अनेक शहरी सहकारी बैंक एटीएम सेवाएं, अनिवासी खाते, कोषागार सेवाएं, विदेशी मुद्रा विनिमय, साख पत्र जारी करना, निर्यात ऋण, बैंक बीमा, टेलीबैंकिंग, मोबाइल बैंकिंग आदि सेवाएं प्रदान कर रहे हैं। ए.पी.महेश को-ऑपरेटिव बैंक, जिसने हाल ही में सीबीएस लागू किया है, का पूंजी पर्याप्तता अनुपात 30 प्रतिशत से भी अधिक है और इसकी अनर्जक आस्तियां शून्य स्तर पर हैं।

सीमित संसाधन

सीमित पूंजी के कारण शहरी सहकारी बैंकों का पूंजी पर्याप्तता अनुपात बहुत कम है। यद्यपि हाल के वर्षों में इन बैंकों के पूंजी पर्याप्तता अनुपात में सुधार हुआ है, तथापि अभी भी (31 मार्च 2009 की स्थिति) 1721 शहरी सहकारी बैंकों में से 237 शहरी सहकारी बैंकों का पूंजी पर्याप्तता अनुपात 9 प्रतिशत से कम है (**तालिका-5** देखिए)।

अन्य समस्याएं :

सभी शहरी सहकारी बैंक निक्षेप बीमा एवं प्रत्यय गारंटी निगम से जमा बीमा सुरक्षा हेतु पात्र नहीं हैं जबकि सभी सरकारी बैंकों एवं निजी बैंकों में प्रति जमाकर्ता प्रति बैंक एक लाख रुपए तक का जमा कवरेज उपलब्ध है। एकाधिक राज्यों में कार्यरत और बहु-राज्य सहकारी समितियां अधिनियम 2002 के तहत पंजीकृत लगभग 34 शहरी सहकारी बैंकों

तालिका-5
शहरी सहकारी बैंकों का पूंजी पर्याप्तता अनुपात(31 मार्च 2009 की स्थिति)

शहरी सहकारी बैंक	3 प्रतिशत से कम	3 प्रतिशत से अधिक लेकिन 6 प्रतिशत से कम	6 प्रतिशत से अधिक लेकिन 9 प्रतिशत से कम	9 प्रतिशत या इससे अधिक	कुल श.स.बैंक
अनुसूचित बैंक	9	1	1	42	53
गैर-अनुसूचित बैंक	136	24	66	1442	1668
कुल श.स.बैंक	145	25	67	1484	1721

को जमाराशि का बीमा उपलब्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त किसी सहकारी बैंक से उधार लेने के लिए यह आवश्यक है कि वह व्यक्ति बैंक का अंशधारक हो। सहकारी बैंकों के लिए उच्च प्रौद्योगिकी वाले बैंकिंग परिवेश में कार्य करना भी एक चुनौती है।

विनियामक एवं पर्यवेक्षी मानदण्ड

भारतीय रिज़र्व बैंक ने सूचित किया है कि शहरी सहकारी बैंक एजेण्ट के रूप में म्यूचुअल फंडों के यूनिटों का विपणन एवं यूनिटों की खरीद (ग्राहक की जोखिम पर) कर सकते हैं (अप्रैल 2006)। यह भी सूचित किया गया है कि राज्य में पंजीकृत शहरी सहकारी बैंक जिन्होंने समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए हैं तथा बहु-राज्य सहकारी समितियां अधिनियम, 2002 के अंतर्गत पंजीकृत सहकारी बैंक कॉरपोरेट एजेण्ट के रूप में जोखिम सहभागिता के बिना बीमा व्यवसाय कर सकते हैं बशर्ते शहरी सहकारी बैंक की निवल मालियत 10 करोड़ रुपए या अधिक हो तथा वह ग्रेड-3 या ग्रेड-4 में वर्गीकृत न हो (मई 2007)। इन बैंकों के लिए यह अनिवार्य है कि वे म्यूचुअल फंडों तथा बीमा कंपनियों के उत्पादों का विपणन करने से प्राप्त फीस/कमीशन का ब्यौरा ग्राहकों के समक्ष प्रकट करें। प्राधिकृत व्यापारी का लाइसेंस रखने वाले शहरी सहकारी बैंकों को अनिवासी सामान्य खाते खोलने की अनुमति दी गई है (जून 2007)।

शहरी सहकारी बैंक सार्वजनिक निर्गम के जरिए अपनी पूंजी नहीं बढ़ा सकते थे, अत: उनके सामने पूंजी निधि की समस्या बनी रहती है। पूंजी निधियां जुटाना सुसाध्य बनाने के उद्देश्य से शहरी सहकारी बैंकों को (15 जुलाई 2008) इस बात की अनुमति दी गई कि वे निम्नलिखित अधिमान शेयर जारी कर सकते हैं :

- बेमियादी गैर-संचयी अधिमानी शेयर (पीएनपीसीएस)
- बेमियादी संचयी अधिमानी शेयर (पीसीपीएस)
- मोचनीय गैर-संचयी अधिमानी शेयर (आरएनसीपीएस)
- मोचनीय संचयी अधिमानी शेयर (आरसीपीएस)

शहरी सहकारी बैंक (कतिपय मानदण्डों के अधीन) उसी राज्य के भीतर अपने परिचालन क्षेत्र के अंदर एक शहर से दूसरे शहर में अपनी शाखाओं को ले जा सकते हैं (अगस्त 2007)। शहरी सहकारी बैंकों का विनियामक ढांचा जो वाणिज्यिक बैंकों के साथ कमोबेश तुलनीय हो गया है, में महत्वपूर्ण परिवर्तनों को दृष्टिगत रखते हुए तथा शहरी सहकारी बैंकों द्वारा आयकर की अदायगी से मिली छूट अब समाप्त कर दी गई है। अत: शहरी सहकारी बैंकों के लिए प्राथमिकता क्षेत्र ऋण का लक्ष्य घटाकर 40 प्रतिशत (1 अप्रैल 2008 से) कर दिया गया है।

शहरी सहकारी बैंकों की ऑफ साइट निगरानी प्रणाली के भीतर 50 करोड़ रुपए से कम जमाराशि वाले शहरी सहकारी बैंक भी शामिल किए गए हैं (दिसम्बर 2008)। अनुसूचित सहकारी बैंकों को अपनी आधिक्य निधियों को अच्छी साख वाली कंपनियों के जमा प्रमाणपत्रों तथा वाणिज्यिक पत्रों में

निवेश की स्वतंत्रता दी गई है। जमा एवं ऋण ब्याज दरों का अविनियमन किया गया है। प्राथमिक सहकारी बैंकों की आधिक्य निधि को उनकी कुल जमाओं का अधिकतम 10 प्रतिशत सार्वजनिक क्षेत्र बॉण्डों में निवेशित किया जा सकता है।

कुछ निर्धारित मानदण्डों के पूरा करने पर भारतीय रिज़र्व बैंक की अनुमति के बाद प्राथमिक सहकारी बैंक पट्टा वित्तीयन कार्य भी कर सकते हैं। ऐसे सहकारी बैंक जिनकी जमाराशियां 50 करोड़ रुपए से अधिक हैं, को समवर्ती लेखापरीक्षा पद्धति लागू करनी होगी।

अब सभी शहरी सहकारी बैंकों को आय पहचान, आस्ति वर्गीकरण तथा प्रावधानीकरण संबंधी विवेकपूर्ण मानदण्डों का पालन करना अनिवार्य है। भारतीय रिज़र्व बैंक अब केवल उन्हीं शहरी सहकारी बैंकों को लाइसेंस जारी करता है जिनका पूंजी पर्याप्तता अनुपात 4 प्रतिशत या अधिक हो। वाणिज्यिक बैंकों पर लागू मानदंड अब चरणबद्ध तरीके से शहरी सहकारी बैंकों पर भी लागू किए जा रहे हैं। कालांतर में सभी शहरी सहकारी बैंकों के लिए विनियामक मानदंड वाणिज्यिक बैंकों पर लागू मानदण्डों के समान ही होंगे।

हाल ही में भारतीय रिज़र्व बैंक ने महिला नागरिक सहकारी बैंक (गुजरात) तथा सुविधा महिला नागरिक सहकारी बैंक (होशंगाबाद, मध्य प्रदेश) का लाइसेंस निरस्त कर दिया है। अब ये बैंककारी बैंकिंग विनियमन अधिनियम की धारा 5 (बी) के अनुसार बैंकिंग व्यवसाय नहीं कर सकते।

भारतीय रिज़र्व बैंक ने सूचित किया है कि अपेक्षित बुनियादी ढांचा वाले सभी शहरी सहकारी बैंकों को इनफिनेट की सदस्यता प्रदान की जाए। लाइसेंस रहित शहरी सहकारी बैंक को इनफिनेट की सदस्यता का लाभ उठाने की भी अनुमति दी जा सकती है जब तक कि भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा लाइसेंस हेतु उसके आवेदन को अस्वीकार नहीं कर दिया जाता।

छत्र संगठन की स्थापना का औचित्य

देश में शहरी सहकारी बैंकों के लिए छत्र संगठन की स्थापना किए जाने की मांग उठी है। भारतीय रिज़र्व बैंक ने इसकी स्थापना हेतु विचार आमंत्रित किए हैं। छत्र संगठन के गठन तथा पुनरुज्जीवन निधि के सृजन हेतु वी.एस.दास कार्यदल ने अपनी रिपोर्ट (2010) प्रस्तुत कर दी है। अब भारतीय रिज़र्व बैंक इस रिपोर्ट का अध्ययन कर रहा है। छत्र संगठन की स्थापना से पूर्व निम्न बिन्दुओं पर भी विचार किया जाना चाहिए :

क्या छत्र संगठन गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी के रूप में कार्य करेगा? यदि हां, तो यह गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी सार्वजनिक जमाराशियां स्वीकार करने वाली होगी अथवा ऐसी जमाएं न स्वीकार करने वाली? यदि जनता से जमाराशियां स्वीकार करने पर प्रतिबंध होगा तो क्या यह छत्र संगठन सहकारी बैंकों से भी जमाराशियां स्वीकार नहीं कर सकेगा? क्या सदस्य एवं गैर-सदस्य सभी सहकारी बैंकों की जमाएं स्वीकार की जाएंगी? क्या प्रस्तावित छत्र संगठन शहरी सहकारी बैंकों से ऋण लेने हेतु पात्र है? यदि हां, तो क्या सदस्य बैंकों से भी ऋण लिया जा सकेगा? छत्र संगठन शहरी सहकारी बैंकों से केवल सावधि जमाएं ही स्वीकार कर सकेंगे या फिर मांग जमाएं भी?

बैंककारी विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 11 के अंतर्गत एक शहरी सहकारी बैंक के लिए न्यूनतम पूंजी 1 लाख रुपए रखी गई है। तो क्या सभी शहरी सहकारी बैंक छत्र संगठन के सदस्य होंगे? क्या प्रस्तावित छत्र संगठन शहरी सहकारी बैंकों का पुनर्पूंजीकरण कर सकेगा और आकस्मिकता के समय उनकी मदद कर सकेगा? ऐसी प्राथमिक सहकारी ऋण समिति जिसकी प्रदत्त पूंजी एवं प्रारक्षिती 1 लाख रुपए या अधिक हो और जो बैंकिंग व्यवसाय करती हो, को स्वत: ही शहरी सहकारी बैंक का दर्जा मिल जाता है। इससे चोर रास्ते से शहरी बैंकिंग क्षेत्र में प्रवेश संभव है। छत्र संगठन की स्थापना के बाद इस संबंध में क्या नियम होंगे? छत्र संगठन इस प्रकार की ऋण समितियों के साथ कैसा व्यवहार करेगा?

क्या प्रस्तावित छत्र संगठन सभी शहरी सहकारी बैंकों को त्वरित सकल निपटान प्रणाली (आरटीजीएस) के अंतर्गत अभिगम कराएगा या फिर कुछ मानदण्डों को पूर्ण करने वाले बैंकों को ही? ये मानदण्ड क्या होंगे? क्या ये मानदण्ड सदस्य बैंकों पर ही लागू होंगे या फिर गैर-सदस्य बैंकों पर भी? क्या अत्यधिक छोटे बैंकों तथा अत्यधिक बड़े बैंकों के लिए समान मानदण्ड होंगे?

छत्र संगठन की पूंजी में शहरी सहकारी बैंकों को अंशदान करना अनिवार्य होगा या ऐच्छिक? यदि ऐच्छिक होगा तो क्या अंशधारक चुने हुए 5 राज्यों से ही हो सकते हैं? यदि कोई शहरी सहकारी बैंक छत्र संगठन की पूंजी में अंशदान नहीं करता है तो उसके लिए क्या अर्थदण्ड होगा? अंशदान की न्यूनतम सीमा कितनी होगी? 50 करोड़ रुपए से कम की आस्ति वाले शहरी सहकारी बैंकों तथा 1000 करोड़ रुपए से अधिक आस्ति वाले शहरी सहकारी बैंकों पर लागू नियमों में क्या कोई अंतर होगा या एकसमान नियम होंगे? अंशदान में घट-बढ़ होने पर मत देने के अधिकार पर क्या अंतर पड़ेगा?

शहरी सहकारी बैंकों द्वारा छत्र संगठन के पास रखी जमाराशियां प्रारक्षित नकदी निधि अनुपात (सीआरआर) और सांविधिक चलनिधि अनुपात (एसएलआर) का हिस्सा मानी जाएंगी अथवा नहीं? क्या छत्र संगठन जिला केन्द्रीय सहकारी बैंकों तथा राज्य सहकारी बैंकों से जमाराशियां स्वीकार करेगा? यदि हां, तो ऐसी जमाराशियों पर छत्र संगठन के लिए तथा जमाकर्ता सहकारी बैंकों के लिए प्रारक्षित नकदी निधि अनुपात और सांविधिक चलनिधि अनुपात संबंधी प्रावधान क्या होंगे?

क्या छत्र संगठन जिला केन्द्रीय सहकारी बैंकों, राज्य सहकारी बैंकों, ऋण साख समितियों को ऋण दे सकता है? क्या छत्र संगठन इन बैंकों का बैंक होगा या फिर केवल शहरी सहकारी बैंकों का बैंक होगा?

बड़े अथवा सुदृढ़ शहरी सहकारी बैंक जो अपने ग्राहकों के लिए छत्र संगठन से सेवाएं नहीं लेना चाहते उनके लिए क्या प्रावधान होंगें? छोटे बैंक जो अपने ग्राहकों के लिए छत्र संगठन से सेवाएं प्राप्त करने के बदले उन्हें भारी-भरकम शुल्क देने में असमर्थ हैं उनके लिए क्या नियम होंगे?

क्या छत्र संगठन बैंककारी विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 5 में उल्लिखित सभी बैंकिंग कार्य करेगा या फिर उनमें से कुछ ही? क्या यह छत्र संगठन सदस्य बैंकों को ही सेवाएं प्रदान करेगा या फिर सीधे ग्राहकों को भी वही सेवाएं मुहैया करेगा। क्या छत्र संगठन सदस्य शहरी सहकारी बैंकों को पुनर्वित्त सुविधा भी मुहैया करेगा?

क्या छत्र संगठन की स्थापना कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 25 के अंतर्गत होगी? क्या छत्र संगठन को पूंजी बाजार से निधियां जुटाने की अनुमति होगी। क्या छत्र संगठन शीर्ष सहकारी बैंक होगा या फिर सिर्फ शहरी शीर्ष सहकारी बैंक? क्या शीर्ष सहकारी बैंक का पंजीयन बहु-राज्य सहकारी समितियां अधिनियम, 2002 के अंतर्गत होगा? क्या छत्र संगठन सदस्य बैंकों को लाभांश बांटेगा? यदि नहीं, तो क्या अंशधारक शहरी सहकारी बैंकों को ऐसा छत्र संगठन स्वीकार्य होगा। क्या छत्र संगठन वाणिज्यिक बैंकों तथा अन्य बैंकों से प्रतिस्पर्धा करेगा?

क्या छत्र संगठन निधियों का विनियोजन गैर-सहकारिता क्षेत्रों में कर सकेगा? क्या छत्र संगठन म्यूचुअल फंडों में निवेश कर सकेगा? और यदि हां, तो किस सीमा तक। छत्र संगठन की स्थापना के लिए न्यूनतम प्रारंभिक पूंजी संबंधी मानदण्ड कौन-से लागू होंगे क्योंकि बैंकिंग कंपनी के लिए यह राशि 300 करोड़ रुपए है, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी के लिए यह राशि 2 करोड़ रुपए है। यदि छत्र संगठन की स्थापना गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी के रूप में की जाती है तो यह संगठन ऐसे कार्य कैसे कर सकता है जो एक गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी के लिए प्रतिबंधित हैं? यदि इसकी स्थापना गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी के रूप में की जाती है तो क्या बाद में इसे बैंकिंग कंपनी में संपरिवर्तित किया जा सकेगा?

छत्र संगठन सदस्य बैंकों के खातों का निपटान कार्य तभी कर सकता है जब सभी सदस्य बैंक छत्र संगठन के पास पर्याप्त निधि रखें। इन निधियों की मात्रा व स्वरूप क्या होगा? सूचना प्रौद्योगिकी तथा सॉफ्टवेयर विकास हेतु कौन जिम्मेदार होगा तथा संबंधित खर्चे कौन वहन करेगा?

कई शहरी सहकारी बैंक कोर बैंकिंग सोल्युशन लागू कर चुके हैं या लागू करने में स्वयं सक्षम हैं। यदि ये बैंक छत्र संगठन से इस बाबत मदद नहीं चाहते तो कौन-सा नियम लागू होगा? वर्तमान में 150 से अधिक सहकारी बैंक ऐसे हैं जिनके पास भारतीय रिज़र्व बैंक का लाइसेस नहीं है। इन बैंकों के लिए भावी नीति क्या होगी? कमजोर एवं रुग्ण शहरी सहकारी बैंकों के साथ छत्र संगठन कैसा व्यवहार करेगा?

भारतीय रिज़र्व बैंक शहरी सहकारी बैंकों के लिए चरणबद्ध ढंग से वही मानदंड लागू कर रहा है जो वाणिज्यिक

बैंकों पर लागू हैं (यथा–पूंजी पर्याप्तता अनुपात, करेंसी चेस्ट सुविधा, प्राथमिकता क्षेत्र ऋण मानदण्ड आदि)। जब शहरी सहकारी बैंकों तथा वाणिज्यिक बैंकों के लिए एकसमान पर्यवेक्षी एवं विनियामक ढांचा होगा तो छत्र संगठन की क्या भूमिका होगी?

ये कुछ ऐसे सवाल हैं जिन पर छत्र संगठन का अस्तित्व निर्भर करता है।

सुझाव

- बैंककारी विनियमन अधिनियम, 1949 में यथावश्यक संशोधन करके भारतीय रिज़र्व बैंक की शक्तियों में वृद्धि की जाए ताकि सभी शहरी सहकारी बैंकों पर प्रभावी नियंत्रण किया जा सके। कुछ निर्धारित मानदण्ड पूरे करने वाले (टियर-2) शहरी सहकारी बैंकों को वाणिज्यिक बैंक में संपरिवर्तित कर दिया जाए। इन बैंकों पर भारतीय रिज़र्व बैंक का पूर्ण नियंत्रण रहेगा।

- कुछ निर्धारित मानदण्ड पूरे न करने वाले शहरी सहकारी बैंकों को सहकारी समिति में संपरिवर्तित कर दिया जाए। इन बैंकों पर रजिस्ट्रार/सेण्ट्रल रजिस्ट्रार ऑफ सोसाइटीज का नियंत्रण रहेगा। ये बैंक अपने नाम के आगे ''बैंक'' शब्द नहीं लगा सकते हैं।

- उपर्युक्त दोनों श्रेणियों के बीच के शहरी सहकारी बैंकों में ग्रेड-4 के बैंकों का सुदृढ़ बैंकों (वाणिज्यिक बैंक अथवा शहरी सहकारी बैंक) में विलय कर दिया जाए। ग्रेड-3 के बैंकों का पुनर्पूंजीकरण किया जाए। ग्रेड-1 एवं ग्रेड-2 बैंकों में निदेशकों/मुख्य कार्यपालकों की नियुक्ति व्यावसायिक दक्षता/नीयत के आधार पर होनी चाहिए। प्रबंधन में बदलाव करना भारतीय रिज़र्व बैंक के नियंत्रण में हो तथा राज्य सरकारों के नियंत्रणाधीन कार्यों की एक सूची बनाई जाए। परिचालनों में व्यावसायिकता का समावेश किया जाए और सुदृढ़ कारोबारी सिद्धांतों के आधार पर चलाया जाए। सहकारिता का अराजनीतिकरण हो। निदेशक मंडल में ऐसे ज्ञानी व्यक्तियों को ही स्थान दिया जाए जिन्हें निदेशक मंडल के सदस्य के रूप में अपनी जिम्मेदारियों का पूर्ण अहसास हो।

- व्यावसायिक दक्षता में सुधार हेतु निदेशकों, मुख्य कार्यपालकों एवं अन्य अधिकारियों को भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा समुचित प्रशिक्षण दिया जाए। नाबार्ड/कृषि बैंकिंग महाविद्यालय को चाहिए कि वे प्रशिक्षण प्रणाली में सुधार करें ताकि सहकारी कार्मिक तैयार किए जा सकें तथा नयी चुनौतियों का सामना किया जा सके। बैंक अधिकारियों से उनकी निजी संपत्ति के संबंध में पूर्ण जानकारी ली जाए। कॉरपोरेट गवर्नेंस के एक भाग के रूप में शहरी सहकारी बैंक के बोर्ड में न्यूनतम 2 निदेशक रखना अनिवार्य हो तथा ये निदेशक किसी बैंक या वित्तीय संस्था के चूककर्ता न हों तथा ये निदेशक किसी बैंक/वित्तीय संस्था/चिट फण्ड कंपनी के निदेशक न हों।

यद्यपि कनाडा, अमेरिका में प्रांतीय छत्र संगठन हैं तथा आस्ट्रेलिया, यूरोपीय देशों में राष्ट्रीय स्तर के छत्र संगठन हैं तथापि वहां की तुलना में हमारे देश में सहकारिता का संरचनात्मक ढांचा काफी जटिल है तथा विनियामक एवं पर्यवेक्षी ढांचा भी शहरी सहकारी बैंकों हेतु एक छत्र संगठन गठित करने हेतु पर्याप्त नहीं है। जब शहरी सहकारी बैंकों (अपेक्षित बुनियादी ढांचे वाले) को इन्फिनेट की सदस्यता मिली हो तो उनकी पहुंच भुगतान प्रणाली तक सहज हो जाएगी। जब बैंककारी विनियमन अधिनियम में संशोधन करके भारतीय रिज़र्व बैंक को शहरी सहकारी बैंकों के पर्यवेक्षण हेतु अधिक शक्तियां प्रदान कर दी जाएंगी तो शहरी सहकारी बैंक प्रभावी रूप से एवं दक्षतापूर्वक कार्य करेंगे। ऐसे में यह कहना संदेहास्पद है कि छत्र संगठन ही शहरी सहकारी बैंकों की सभी समस्याओं का एकमात्र समाधान है।

शहरी सहकारी बैंकों का वर्तमान एवं भविष्य: सुधार की आवश्यकता

● डॉ. नरेन्द्रपाल सिंह[1] एवं
डॉ. लोकेन्द्र सिंह[2]

शहरी सहकारी बैंकों का उदय सहकारी समिति अधिनियम, 1904 के प्रगतिशील होने के बाद ही हुआ है। सर्वप्रथम शहरी सहकारी समिति अक्तूबर 1904 में तत्कालीन मद्रास प्रान्त स्थित कांजीवरम शहर में पंजीकृत हुई थी। 1912 में मैक्लेगन समिति ने उन संस्थाओं के महत्व को समझा तभी से शहरी सहकारी ऋण आन्दोलन ने सुचारू रूप से गति पकड़ी यह आन्दोलन तब प्रोत्साहित हुआ जब 1966 में बैंकिंग कानूनों को सहकारी समितियों पर लागू कर दिया गया ताकि जमाकर्ताओं के हितों की रक्षा की जा सके और निक्षेप बीमा और प्रत्यय गारन्टी निगम अधिनियम, 1961 के प्रावधानों के तहत बीमा कवर प्रदान किया जा सके। शहरी सहकारी बैंक, महानगर, शहरी, अर्द्धशहरी क्षेत्रों में निम्न/मध्यम वर्ग की जनता-मुख्य रूप से व्यवसायी, छोटे दुकानदार, दस्तकार, फैक्ट्री कामगार, वेतनभोगी व्यक्ति आदि की बैंकिंग आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। 31 मार्च 2009 तक 1721 शहरी सहकारी बैंक कार्यरत हैं। इन बैंकों की प्रमुख विशेषता में, विविधता और दोहरा विनियामक नियन्त्रण है। शहरी सहकारी क्षेत्र के बैंकों में 83 प्रतिशत अर्थात् 1429 ऐसे छोटे शहरी सहकारी बैंक हैं जिनकी जमा राशि 100 करोड़ से भी कम है और उनका परिचालन उसी जिले या निकटवर्ती जिलों तक सीमित है तथा जमाराशियों में भी उनकी भागीदारी मात्र 23.6 प्रतिशत है। विभिन्न राज्यों में शहरी सहकारी बैंकों की संख्या भी अलग-अलग है। महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु में शहरी सहकारी बैंकों की बड़ी हिस्सेदारी है जो 79 प्रतिशत है, साथ ही जमाराशियों में उनकी भागीदारी 89 प्रतिशत है। उत्तर प्रदेश, केरल, पश्चिम बंगाल और राजस्थान में भी सहकारी बैंकों की स्थिति उल्लेखनीय है लेकिन बाकी राज्यों में इनकी संख्या कुछ बैंकों तक ही सीमित रह गयी है। शहरी सहकारी बैंकों में 53 ऐसे शहरी सहकारी बैंक हैं जिनके नाम भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 के तहत अनुसूचित बैंकों की सूची में शामिल हैं। 40 शहरी सहकारी बैंक ऐसे हैं जिनका परिचालन कई राज्यों में होता है और इस क्षेत्र की कुल जमाराशियों में उनकी भागीदारी 26 प्रतिशत है।

शहरी सहकारी बैंक, राज्य सहकारी समितियां अधिनियम या बहु-राज्यीय सहकारी समितियां अधिनियम के अन्तर्गत सहकारी समितियों के रूप में पंजीकृत हैं और बैंककारी विनियमन अधिनियम, 1949 के प्रावधानों के अन्तर्गत बैंकिंग व्यापार करने के लिए उन्हें लाइसेंस प्राप्त है। शहरी सहकारी बैंक प्राथमिक स्तर पर सहकारी समितियां हैं और वे एकल ढांचे का प्रतिनिधित्व करती हैं। त्रिस्तरीय ग्रामीण सहकारी ऋण ढांचे के विपरीत वे एकल संस्था के रूप में परिचालन करती हैं। हालांकि जिला मध्यवर्ती सहकारी बैंक और राज्य सहकारी बैंकों जैसी वित्त प्रदान करने वाली उच्चतर संस्थाओं से किसी न किसी रूप में ये बैंक जुड़े होते हैं। विगत कुछ वर्षों में शहरी सहकारी बैंकों के ग्राहकों की संख्या में क्रमिक रूप से कमी आयी है। प्रतिस्पर्धी वातावरण में निजी एवं विदेशी क्षेत्र के बैंकों सहित वाणिज्यिक बैंकों ने अपने उच्च दर्जे के वित्तीय एवं तकनीकी स्रोतों के साथ शहरी सहकारी बैंकों के ग्राहकों तक पहुंचना प्रारम्भ कर दिया है। छोटे शहरी सहकारी बैंक अपने सीमित मानव, वित्तीय और तकनीकी संसाधनों के साथ प्रतिस्पर्धा का सामना करने में कठिनाई महसूस कर रहे हैं। शहरी सहकारी बैंकों, विशेष रूप से छोटे बैंकों में व्यावसायिक कुशलता का अभाव होता है और उक्त क्षेत्रों में

1. एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य संकाय, साहू जैन कालेज, नजीबाबाद (उत्तर प्रदेश)
2. सहायक प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, जनता वैदिक कालेज, बड़ौत (बागपत) उत्तर प्रदेश

उन्हें समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

कार्य निष्पादकता

विगत वर्षों में जमाराशियों में वृद्धि तथा ऋण मांग में कमी बैंकिंग उद्योग की मुख्य समस्या रही है, परिणामस्वरूप प्रयत्न करने के बाद भी ऋण वितरण में कमी परिलक्षित हो रही है। स्वर्ण आभूषण तारण, गृह निर्माण, उपभोज्य वस्तुओं एवं सामाजिक संस्कार हेतु ऋण शहरी सहकारी बैंकों द्वारा मुख्य रूप से दिये जाते रहे हैं लेकिन अब वाणिज्य बैंक भी इस प्रकार के ऋण आक्रामक तरीके से वितरित कर रहे हैं। राष्ट्रीय स्वरूप, उपलब्ध वृहद निधियां, विज्ञापन एवं विपणन सामर्थ्य तथा व्यावसायिक दृष्टि एवं व्यवहार से वाणिज्य बैंकों की स्पर्धा क्षमता अधिक हुई है, जिससे शहरी सहकारी बैंक टक्कर नहीं ले सकते, इसलिए अपने परम्परागत व्यवसाय में भी शहरी सहकारी बैंकों को पिछड़ना पड़ रहा है। बैंकों की विभिन्न कार्यविधियों और प्रक्रियाओं के अविनियमन ने शहरी सहकारी बैंकों के सम्मुख नई चुनौतियां उत्पन्न की हैं जिनमें सबसे प्रमुख चुनौती ब्याज दरों के अविनियमन की रही है। शुल्क आधारित वित्तीय सेवाओं को प्रस्तुत करने में शहरी सहकारी बैंक अपंग एवं असमर्थ हैं। सीमित कार्यक्षेत्र या स्थानीय स्वरूप, शीर्ष संस्था की अनुपस्थिति अथवा राष्ट्रीय तन्त्र का अभाव, यथोचित संसाधन एवं तकनीकी ज्ञान की अनुपलब्धता के कारण शहरी सहकारी बैंक, बाहरी चेक संग्रहणकर्ता बनकर, विदेशी मुद्रा विनिमय आदि की प्रभावी सेवायें देने से वंचित हैं या किन्हीं व्यावसायिक बैंकों की मर्जी पर हैं। सूचना तन्त्र की क्रान्ति ने बैंकों की सेवा शक्ति बहुगुणित कर दी है। उपग्रह द्वारा ऑनलाइन ट्रेडिंग, संग्रहण, धन प्रेषण, भुगतान एवं शेष प्रमापीकरण आदि कार्य त्वरित गति से होते हैं। दिन-प्रतिदिन आधुनिक एवं जटिल होती जा रही ग्राहकों की आवश्यकताएं पूरी करने में उक्त संसाधन सक्षम हैं तथा ग्राहकों को इनसे अपरिमित सन्तुष्टि प्राप्त हो रही है। अधिकांश शहरी सहकारी बैंक इन संसाधनों से वंचित होने के कारण ग्राहकों की दृष्टि में कमजोर सिद्ध हो रहे हैं। समय पर उपस्थित इस चेतावनी पर यदि ध्यान नहीं दिया गया तो कई शहरी सहकारी बैंक बीमार बैंक की श्रेणी में आ जायेंगे अत: आज की आवश्यकता है कि शहरी सहकारी बैंकों को अधिक नवोन्मेषी संसाधन युक्त एवं सामर्थ्यवान बनाया जाये।

वर्ष 1966 में जब बैंककारी विनियमन अधिनियम, 1949 शहरी सहकारी बैंकों पर लागू किया गया तब लगभग 1100 शहरी सहकारी बैंक थे और क्रमश: 167 करोड़ और 153 करोड़ रुपये उनकी जमाराशियां और अग्रिम थे वर्ष 2003 तक शहरी सहकारी बैंकों में तीव्र वृद्धि जारी रही और उनकी संख्या बढ़कर 1941 हो गयी और जिनमें क्रमश: 101546 करोड़ रुपये और 64880 करोड़ रुपये की जमाराशियां और अग्रिम थे। 1992 में गठित मराठे समिति की सिफारिशों के अनुपालन में रिज़र्व बैंक द्वारा अपनायी गयी लचीली लाइसेंसी नीति के चलते इस क्षेत्र का काफी विस्तार हुआ। तथापि वर्ष 2004 से नये शहरी सहकारी बैंकों के लाइसेंस पर लगे प्रतिबन्ध और इस क्षेत्र में स्वेच्छापूर्ण समामेलन और समेकन को प्रोत्साहित करने के परिणामस्वरूप वर्ष 2009 में शहरी सहकारी बैंकों की संख्या घटकर 1721 हो गयी जिनमें 158733 करोड़ रुपये की जमाराशियां और 97918 करोड़ रुपये के अग्रिम थे। शहरी सहकारी बैंकों की वृद्धि को सारणी-I में दर्शाया गया है।

शहरी सहकारी बैंक, शहरी और अर्द्धशहरी आबादी के सामाजिक रूप से कमजोर और वंचित वर्ग को दिये जाने वाले ऋण का महत्वपूर्ण प्रबन्धकर्ता हैं। इस क्षेत्र में 79 लाख से अधिक उधारकर्ता हैं और 5.36 करोड़ से अधिक जमाकर्ता हैं। शहरी सहकारी बैंकों की बाजार हिस्सेदारी सारणी -II में दर्शायी गयी है। सारणी के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि शहरी सहकारी बैंकों के पास आधारभूत बैंकिंग सुविधाओं के अभाव में इन बैंकों की बाजार भागीदारी मार्च 2000 के अन्त में अपने उच्चतम स्तर 6.6 प्रतिशत से घटकर मार्च 2008 के अन्त में 3.7 प्रतिशत हो गयी है। इन बैंकों के साथ ग्रामीण सहकारी बैंक एवं क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की हिस्सेदारी में भी कमी आयी है जबकि वाणिज्यिक बैंकों का हिस्सा निरन्तर वृद्धि की ओर अग्रसर है।

शहरी सहकारी बैंकों का बैंकिंग क्षेत्र में अद्‌भुत स्थान है क्योंकि इस क्षेत्र में आकार (जमाराशियां, परिसम्पत्तियां और शाखाएं) भौगोलिक वितरण एवं वित्तीय स्वास्थ्य के रूप में बैंकों के बीच काफी उच्च स्तरीय विषमता है। इसके अतिरिक्त कुछ शहरी सहकारी बैंक, कुछ समुदाय विशेष की विशिष्ट आवश्यकताओं, समाज के कमजोर वर्ग, महिला

सारणी I
शहरी सहकारी बैंकों की वृद्धि

(राशि करोड़ रुपये में)

वर्ष (31 मार्च को समाप्त)	शहरी सहकारी बैंकों की सं.	जमाराशियां	वृद्धि का प्रतिशत	अग्रिम	वृद्धि का प्रतिशत
1991	1307	10157	–	8003	–
1996	1327	24165	–	17908	–
2001	1618	80840	–	54389	–
2002	1854	93069	15.1	62060	14.1
2003	1941	101546	9.1	64880	4.5
2004	1926	110256	8.6	67930	4.7
2005	1872	105021	–4.7	66874	–1.6
2006	1853	114060	8.6	71641	7.1
2007	1813	121391	6.4	79733	11.3
2008	1770	138496	14.1	88981	11.6
2009	1721	158733	14.6	97918	10.0

स्रोत : भारतीय रिज़र्व बैंक बुलेटिन अनुपूरक दिसम्बर 2009

सारणी II
कुल जमाराशियों में सभी बैंक समूहों की जमाराशियों की बाजार हिस्सेदारी

(प्रतिशत में)

वर्ष (31 मार्च को समाप्त)	शहरी सहकारी बैंक	ग्रामीण सहकारी बैंक	क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक	वाणिज्यिक बैंक
1996	4.5	7.2	2.5	85.8
2000	6.6	7.7	2.8	82.9
2001	6.3	7.2	2.9	83.6
2002	6.4	7.2	3	83.4
2003	6.3	7	3	83.7
2004	5.8	6.6	3.1	84.5
2005	5.3	6.3	3.1	85.3
2006	4.6	5.4	2.9	87.2
2007	4	4.7	2.7	88.6
2008	3.7	4.1	2.7	89.5

स्रोत : भारतीय रिज़र्व बैंक बुलेटिन अनुपूरक दिसम्बर 2009

बैंकों आदि के लिए गठित किये गये हैं। 31 मार्च 2009 की स्थिति के अनुसार कुल 1721 शहरी सहकारी बैंक, 1668 गैर अनुसूचित बैंक, 79 वेतनभोगियों के बैंक, 108 महिला बैंक और 6 अनुसूचित जनजाति बैंक थे। कुछ बड़े अनुसूचित शहरी सहकारी बैंकों को छोड़कर अधिकतर बैंक छोटे और मझोले आकार के हैं। निम्न सारणी के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि मार्च 2009 के अन्त में 27 प्रतिशत शहरी सहकारी बैंकों की जमाराशियां 10 करोड़ रुपये से कम थीं। तथापि मार्च 2009 के अन्त में इन बैंकों की जमाराशियां कुल जमाराशियों का केवल 1.9 प्रतिशत थी जबकि दूसरी तरफ 1000 करोड़ रुपये और उससे अधिक जमाराशि वाले 20 शहरी सहकारी बैंक थे जिनके पास इस क्षेत्र की 33.6 प्रतिशत जमाराशियां थी। इसके अलावा 250 करोड़ रुपये या उससे अधिक परन्तु 1000 करोड़ रुपये से कम जमाराशि वाले 83 शहरी सहकारी बैंक अर्थात कुल बैंकों का 4.9 प्रतिशत थे जिनके पास कुल जमाराशियों का 24.9 प्रतिशत राशि थी। 250 करोड़ रुपये या उससे अधिक का ऋण प्रदान करने वाले 64 शहरी सहकारी बैंक थे जो कुल बैंकों का 3.6 प्रतिशत थे, जिनकी कुल अग्रिमों में 50.8 प्रतिशत की हिस्सेदारी थी। अत: यह क्षेत्र जमाराशियों और अग्रिमों का

सारणी III

शहरी सहकारी बैंकों की जमाराशि, अग्रिम तथा आस्तियों का आकार

जमाराशि, अग्रिम एवं आस्तियों का आकार	जमाराशियां				अग्रिम				आस्ति	
	बैंकों की संख्या	बैंकों की संख्या (कुल का प्रतिशत)	जमाराशियां (करोड़ रु. में)	जमाराशियां (कुल का प्रतिशत)	बैंकों की संख्या	बैंकों की संख्या (कुल का प्रतिशत)	अग्रिम (करोड़ रु. में)	अग्रिम (कुल का प्रतिशत)	बैंकों की संख्या (कुल का प्रतिशत)	आस्तियां (कुल का प्रतिशत)
10 करोड़ रु0 से कम	464	27.0	2975	1.9	710	41.3	3831	3.9	–	–
15 करोड़ रु0 से कम	–	–	–	–	–	–	–	–	28.6	2.3
10 करोड़ रु0 से अधिक परन्तु 25 करोड़ से कम	452	26.3	7621	4.8	441	25.6	7279	7.4	–	–
15 करोड़ रु0 से अधिक परन्तु 25 करोड़ से कम	–	–	–	–	–	–	–	–	16.6	2.6
25 करोड़ रु0 से अधिक परन्तु 50 करोड़ से कम	317	18.4	11757	7.4	236	13.7	8658	8.8	19.5	5.9
50 करोड़ रु0 से अधिक परन्तु 100 करोड़ से कम	196	11.4	15069	9.5	154	8.9	11634	11.9	14.2	8.3

सारणी III जारी...

शहरी सहकारी बैंकों की जमाराशि, अग्रिम तथा आस्तियों का आकार

जमाराशि, अग्रिम एवं आस्तियों का आकार	जमाराशियां				अग्रिम				आस्ति	
	बैंकों की संख्या	बैंकों की संख्या (कुल का प्रतिशत)	जमाराशियां (करोड़ रु. में)	जमाराशियां (कुल का प्रतिशत)	बैंकों की संख्या	बैंकों की संख्या (कुल का प्रतिशत)	अग्रिम (करोड़ रु. में)	अग्रिम (कुल का प्रतिशत)	बैंकों की संख्या (कुल का प्रतिशत)	आस्तिया (कुल का प्रतिशत)
100 करोड़ रु0 से अधिक परन्तु 250 करोड़ से कम	189	11.0	28526	18.0	116	6.7	17721	18.1	13.1	17.1
250 करोड़ रु0 से अधिक परन्तु 500 करोड़ से कम	56	3.3	20754	13.1	37	2.1	12668	12.9	4.2	12.4
500 करोड़ रु0 से अधिक परन्तु 1000 करोड़ से कम	27	1.6	18749	11.8	16	0.9	11093	11.3	2.3	13.5
1000 करोड़ रु0 से अधिक	20	1.2	53281	33.6	11	0.6	25033	25.6	0.6	6.3
2000 करोड़ रु0 से अधिक	–	–	–	–	–	–	–	–	0.9	31.7
योग	1721	100.0	158733	100.0	1721	100.0	97918	100.0	100.0	100.0

स्रोत: भारतीय रिज़र्व बैंक बुलेटिन अनुपूरक, दिसम्बर 2009

विषम वितरण दर्शाता है। इसी प्रकार आस्तिवार वितरण में भी विषम विभाजन की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है और 1000 करोड़ रुपये या उससे अधिक आस्ति रखने वाले 1.5 प्रतिशत शहरी सहकारी बैंकों के पास क्षेत्र की 38.0 प्रतिशत आस्तियां थीं।

शहरी सहकारी बैंकों का विस्तार भौगोलिक रूप से भी असमान है। शहरी सहकारी बैंक 5 राज्यों नामत: महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु में संकेन्द्रित हैं जिनकी संख्या कुल शहरी सहकारी बैंकों की 79 प्रतिशत है और इनके पास 89 प्रतिशत जमाराशियां हैं। अकेले महाराष्ट्र में कुल शहरी सहकारी बैंकों के 33.9 प्रतिशत बैंक हैं जिनके पास इस क्षेत्र की 61.4 प्रतिशत जमाराशि है।

भारत में शहरी सहकारी बैंक महानगरीय, शहरी और अर्द्धशहरी केन्द्रों में मध्य वर्ग तथा निम्न मध्यवर्ग के लोगों की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। उनका परिचालन भारत के ग्रामीण सहकारी बैंकों से भिन्न एक विशिष्ट आधार पर किया जाता है जिसकी एक त्रिस्तरीय संरचना है। ये बैंक लघु से लेकर मध्यम आकार तक के भिन्न-भिन्न आस्ति आकारों के बावजूद बड़ी संख्या में हैं। यद्यपि ये वाणिज्यिक बैंकों के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं लेकिन कुल जमा राशि में इनका हिस्सा मात्र चार प्रतिशत है। शहरी सहकारी बैंकिंग क्षेत्र का एक बड़ा भाग व्यावसायिकता से वंचित है और सूचना प्रौद्योगिकी, आधुनिक बैंकिंग प्रणालियों तथा वित्तीय उत्पादों के क्षेत्र में तीव्र गति से हो रही प्रगति के साथ कदम मिलाकर

सारणी IV
31 मार्च 2009 के अन्त में शहरी सहकारी बैंकों का क्षेत्रवार फैलाव

(प्रतिशत में)

क्र. सं.	राज्य	शहरी सहकारी बैंकों की संख्या	जमाराशियां	शाखाओं/ विस्तार काउन्टरों की संख्या
1	आन्ध्र प्रदेश	6.6	2.3	3.1
2	गुजरात	15.1	16.1	11.5
3	कर्नाटक	15.9	6.5	10.8
4	महाराष्ट्र	33.9	61.4	55.5
5	तमिलनाडु	7.5	2.3	4.0
6	अन्य	21.0	11.4	15.1
7	योग	100.0	100.0	100.0

चलने में असमर्थ है। इस क्षेत्र में बड़ी संख्या में ऐसे भी बैंक हैं जो कमजोर हैं तथा उन्हें वित्तीय समर्थन की जरूरत है। इन बैंकों को चलनिधि की समस्याओं का सामना भी करता पड़ता है। सहकारी समिति का स्वरूप होते हुए भी शहरी सहकारी बैंकों की अपनी पूंजी बढ़ाने की क्षमता सीमित है जिसके कारण उनके विकास में बाधा आती है। शहरी सहकारी बैंकों की संगठनात्मक संरचना, उनका लघु आकार तथा सीमित परिचालन क्षेत्र भी उनके नाजुकपन को बढ़ाते हैं। इसके अलावा सूचना और संचार प्रौद्योगिकी, भुगतान और निपटान प्रणालियों में हुई प्रगति को देखते हुए आवश्यकता इस बात की है कि पेशेवराना अंदाज में अपने संचालन के लिए ये अपनी सेवाओं का दायरा विस्तृत करें तथा वाणिज्यिक बैंकों द्वारा उपलब्ध करायी जाने वाली सेवाओं की तरह, सेवा उपलब्ध करायें। शहरी सहकारी बैंकों के कमजोर होने के पीछे मुख्य कारण प्रदत्त ऋणों के निर्धारित सीमा से अधिक प्रतिशत में अनर्जक आस्तियों का होना है। बैंक की कुल नेटवर्थ एवं लाभप्रदता में कमी भी इन बैंकों को दिन-प्रतिदिन कमजोर कर रही है। शहरी सहकारी बैंकों को अपनी अनर्जक आस्तियों को वसूल करके इनका प्रतिशत घटाना चाहिए और अनावश्यक खर्चों पर नियन्त्रण करके बैंक का परिचालन लाभ बढ़ाना चाहिए। कमजोर स्थिति से उभरकर नयी शाखाओं को खोलने के लिए लाइसेंस प्राप्त करने की पात्रता प्राप्त करके अपने व्यवसाय को बढ़ाने का मार्ग प्रशस्त करना चाहिए। ऐसा करके ही ये बैंक राज्य की अरबन बैंक आन्दोलन की मुख्य धारा से जुड़ सकते हैं।

शहरी सहकारी बैंकों के समक्ष भी स्टाफ के वेतनमान, भत्तों एवं सेवा शर्तों में संशोधन, स्टाफ ऋण सम्बन्धी मुद्दे, उधार नीति, विनियोजन पॉलिसी, एकमुश्त भुगतान योजना, लाभांश सम्बन्धी प्रकरण, स्टाफ स्वीकृति नीति, कार्यक्षेत्र में वृद्धि आदि विचाराधीन है। शहरी सहकारी बैंकों के तेज एवं नियमित विकास के लिए, राज्य में इन बैंकों के अलग से शीर्ष सहकारी बैंक के गठन की आवश्यकता है। इसके लिए स्टेट फेडरेशन के सक्रिय प्रयास के साथ-साथ राज्य सरकार, केन्द्र सरकार एवं भारतीय रिज़र्व बैंक के सकारात्मक सहयोग की आवश्यकता है। शहरी सहकारी बैंकों का प्रसार भी पूरे देश में एक समान नहीं है। पांच राज्यों अर्थात आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, महाराष्ट्र और तमिलनाडु में शहरी सहकारी बैंकों की बहुलता है। जहां शहरी सहकारी बैंकों के पास पूरे क्षेत्र के कुल कारोबार का लगभग 89 प्रतिशत कारोबार है वहीं अकेले महाराष्ट्र में ही शहरी सहकारी बैंकों के पास कुल कारोबार का लगभग 64 प्रतिशत हिस्सा है इसके विपरीत बहुत सारे राज्यों में इनकी उपस्थिति नगण्य है। शहरी सहकारी बैकों के क्षेत्रीय प्रसार तथा बाजार में हिस्सेदारी को देखते हुए कई समर्थक संस्थाओं का होना अथवा राज्यवार कई समर्थक संस्थाओं का होना न तो सुसंगत है और न ही वांछनीय है। अत: इन बातों को ध्यान में रखते हुए समग्र शहरी सहकारी बैंकिंग क्षेत्र के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक शीर्ष संस्था होनी चाहिए जो ऋण और अग्रिम उपलब्ध कराने, पुनर्वित्त, भुगतान और निपटान सेवाएं, सूचना प्रौद्योगिकी सेवाएं, एटीएम नेटवर्क सेवाएं, निवेश बैंकिंग, निधि प्रबन्धन, प्रबन्धन परामर्श, क्षमता निर्माण सेवाएं तथा पूंजी समर्थन जैसी सेवाओं के व्यापक दायरे उपलब्ध कराये जाने चाहिए।

शीर्ष सहकारी बैंक इन बैंकों की समस्याओं का सार्थक हल है। शीर्ष बैंक, उपग्रह द्वारा सहभागी शहरी सहकारी बैंकों से जुड़ा रहेगा अर्थात शहरी सहकारी बैंक अपनी स्वायत्तता बनाये रखते हुए भी शीर्ष बैंक के साथ व्यावसायिक साझेदार रहेंगे। उपग्रह द्वारा सभी बैंकों के बीच ऑनलाइन कारोबार

किया जा सकेगा और सभी व्यवहारों एवं हिसाब के अन्तिम निपटान पर शीर्ष बैंक का नियन्त्रण बना रहेगा जो प्रतिदिन किया जा सकता है।

शीर्ष शहरी सहकारी बैंक का गठन

शीर्ष शहरी सहकारी बैंक के गठन की आवश्यकता महसूस की जा रही है अत: उसके लिए दो विकल्प हो सकते हैं प्रथम विकल्प में देश के शहरी सहकारी बैंक जो सहभागी बनना चाहते हैं, को शीर्ष बैंक के अंश खरीदने होंगे। न्यूनतम एक करोड़ के अंश खरीदने के इच्छुक पांच सौ बैंक तैयार हुए तो पांच सौ करोड़ रुपये प्रदत्त अंश पूंजी से कार्य प्रारम्भ करना सम्भव है। बैंक के पंजीयन की कार्यवाही कर भारतीय रिज़र्व बैंक से बैंकिंग लाइसेंस प्राप्त करना होगा तथा साथ ही साथ सॉफ्टवेयर एवं डाटाबेस भी बनवाना होगा। दूसरे विकल्प में प्रमुख शहरी सहकारी बैंक प्रथम चरण में आपसी विचार विमर्श कर परस्पर व्यावसायिक सुविधा हेतु समझौता हस्ताक्षरित करें। इस समझौते के अन्तर्गत एक सॉफ्टवेयर (सहकारी समिति) स्थापित किया जाये। इस समिति का काम इच्छुक बैंकों के बीच कोर बैंकिंग नेटवर्क तैयार करना तथा उसको संचालित करना होगा। समिति द्वारा सभी शहरी सहकारी बैंकों को सॉफ्टवेयर सुविधा प्रदान की जायेगी जिसका निर्धारित शुल्क उसे प्राप्त होगा। इस नेटवर्क के द्वारा ड्राफ्ट, चेकों का सममूल्य पर भुगतान, ईसीएस, एटीएम, हुंडी, बिल्टी, चेक संग्रहण एवं इलेक्ट्रॉनिक बैंकिंग से सम्बन्धित सभी कार्य तथा पोर्टफोलियो प्रबन्धन जैसे कार्य भी सरलता से किये जा सकते हैं। शीर्ष बैंक द्वारा विभिन्न बैंकों के बीच हुए व्यवहारों का लेखा जोखा एवं हिसाब का निपटान भी प्रतिदिन आसानी से सम्भव हो जायेगा। इस विकल्प को अपनाने से किसी जटिल या कठिन प्रक्रिया अथवा अनुमति की आवश्यकता भी नहीं होगी। धीरे-धीरे द्वितीय या तृतीय चरण में इस नेटवर्क से अधिकतम शहरी सहकारी बैंकों को जोड़ा जा सकता है।

शीर्ष सहकारी बैंक का गठन करते समय उसमें प्रमुख बातों में शामिल होना चाहिए कि शीर्ष सहकारी बैंक एक सेवा प्रदाता बैंक होगा। साथ ही शहरी सहकारी बैंक अपनी स्वायत्तता रखते हुए शीर्ष सहकारी बैंक के अंशधारी/व्यावसायिक साझेदार हो सकते हैं। सभी शहरी सहकारी बैंक परस्पर व्यवसाय व्यवहार करेंगे एवं शीर्ष शहरी सहकारी बैंक द्वारा उनका लेखा जोखा व निपटान किया जायेगा। सभी शहरी सहकारी बैंक निपटान को पूर्ण करने के लिए शीर्ष शहरी सहकारी बैंक में पर्याप्त कोष रखेंगे। सूचनातन्त्र व सॉफ्टवेयर विकसित कर उनके रखरखाव एवं आवश्यक संशोधन एवं परिवर्तन करने का कार्य शीर्ष शहरी सहकारी बैंक करेगा जिस पर आने वाली लागत को सम्बद्ध बैंकों से लिया जा सकता है। शीर्ष शहरी सहकारी बैंक एवं शहरी सहकारी बैंकों के मध्य सेवा प्रदाता एवं सेवा उपभोक्ता अथवा व्यावसायिक साझेदार जैसे सम्बन्ध रखने होंगे।

शीर्ष शहरी सहकारी बैंक की कार्यविधि बाम्बे स्टॉक एक्सचेंज या नेशनल स्टॉक एक्सचेंज जैसी रहेगी। उपग्रह द्वारा सभी व्यावसायिक साझेदार शहरी सहकारी बैंक शीर्ष सहकारी बैंक के साथ जुड़े रहेंगे और परस्पर कारोबार कर सकेंगे। शीर्ष शहरी सहकारी बैंक द्वारा ऋण और अग्रिम उपलब्ध कराने, पुनर्वित्त, भुगतान और निपटान सेवाएं, सूचना प्रौद्योगिकी सेवाएं, एटीएम नेटवर्क सेवाएं, निवेश बैंकिंग, निधि प्रबन्धन, प्रबन्धन परामर्श, क्षमता निर्माण सेवाएं तथा पूंजी समर्थन जैसी सेवाओं के व्यापक दायरे उपलब्ध कराये जायेंगे। छोटे शहरी सहकारी बैंक भी अपनी कुशलता एवं विशेषज्ञता की कमी को देखते हुए इस सरकारी प्रतिभूति के क्रय विक्रय और प्रबन्धन के लिए एक शीर्ष शहरी सहकारी बैंक की आशा रखते हैं जो उपरोक्त सेवाओं को विस्तृत दायरे में उपलब्ध करा सके। एक बैंक का ग्राहक दूसरे बैंक के ग्राहक के साथ अपने-अपने बैंक के माध्यम से व्यवहार करेगा। इसके लिए हर साझेदार बैंक का सहभागी बैंक क्रमांक (Bank Participent No.) एवं उसके ग्राहकों का ग्राहक पहचान क्रमांक (Customer Identification

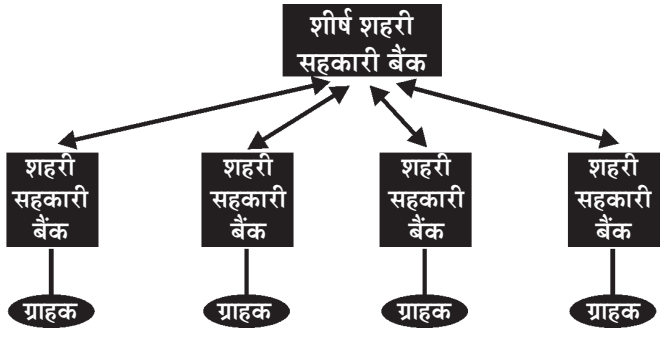

No.) निश्चित होगा। शीर्ष शहरी सहकारी बैंक एक दिन में हुए समस्त कारोबार का सारांश शुद्ध नामे/जमा स्थिति के अनुसार विभिन्न बैंकों को नामे/जमा कर देगा। इस हेतु प्रत्येक व्यावसायिक साझेदार बैंक का खाता एवं उसमें पर्याप्त शेष शीर्ष शहरी सहकारी बैंक के पास रहेगा।

शहरी सहकारी बैंकों पर प्रभाव

देश में आकार और प्रसार की दृष्टि से एक विषम समूह बनाती हुई शहरी सहकारी बैंकों की एक बड़ी संख्या है जिसमें अधिकांश आकार और फैलाव में बहुत छोटे हैं और समान बैंकिंग कार्य क्षेत्र में अपनी तुलना में बड़े सहभागियों से प्रतिस्पर्धा करते हैं। विगत वर्षों में कुछ शहरी सहकारी बैंक कमजोर और अलाभप्रद हो गये हैं इसलिए शहरी सहकारी बैंकिंग क्षेत्र में प्रणालीगत जोखिम आ गया है। इन बैंकों के पास पूंजीगत निधियों को एकत्र करने के अवसरों की कमी है क्योंकि ये न तो शेयरों के सार्वजनिक निर्गम निकाल सकते हैं और न ही सदस्यों को प्रीमियम पर शेयर जारी कर सकते हैं। शहरी सहकारी बैंकिंग क्षेत्र के एक महत्वपूर्ण भाग के पास पेशेवर कौशल की कमी है तथा वह सूचना प्रौद्योगिकी, आधुनिक बैंकिंग प्रणाली तथा वित्तीय उत्पादों में हो रही तीव्र प्रगति के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने में असमर्थ है। इस क्षेत्र में बड़ी संख्या में ऐसे बैंक हैं जो कमजोर हैं तथा उन्हें वित्तीय समर्थन की आवश्यकता है। शहरी सहकारी बैंकों की संगठनात्मक संरचना, उनका लघु आकार तथा सीमित परिचालन क्षेत्र भी उनके कमजोर पड़ जाने की संभावनाओं में वृद्धि करते हैं। इसके अलावा सूचना और संचार प्रौद्योगिकी, भुगतान और निपटान प्रणालियों में हुई प्रगति को देखते हुए इस बात की आवश्यकता है कि पेशेवराना अंदाज में अपने संचालन के लिए ये अपनी सेवाओं का दायरा विस्तृत करें तथा वाणिज्यिक बैंकों द्वारा उपलब्ध करायी जाने वाली सेवाओं की तरह सेवा उपलब्ध करायें। जिसके लिए शीर्ष शहरी सहकारी बैंक का गठन ही एक मात्र हल है। यदि शीर्ष शहरी सहकारी बैंक का गठन हो जाये तो उसका शहरी सहकारी बैंकों की कार्यप्रणाली पर निम्न प्रभाव पड़ेगा :

- प्रत्येक साझेदार शहरी सहकारी बैंक उन सभी स्थानों पर, जहां-जहां शहरी सहकारी बैंक एवं उनकी शाखाएं साझेदार हैं, के लिए संग्रहण, शोधन एवं धन प्रेषण की सुविधायें दे सकेगा।

- ऐसे उत्पाद जिनकी प्रथम आवश्यकता राष्ट्रीय तन्त्र है जैसे ट्रैवलर चेक, गिफ्ट चेक, हुंडी/बिल्टी, डिमान्ड ड्राफ्ट आदि शीर्ष शहरी सहकारी बैंक द्वारा प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिसका उपयोग सभी साझेदार शहरी सहकारी बैंक कर सकेंगे।

- शीर्ष शहरी सहकारी बैंक, एटीएम कार्ड, डेबिट कार्ड एवं क्रेडिट कार्ड जारी कर सभी साझेदार शहरी सहकारी बैंकों के लिए प्रभावी कर उन्हें लाभान्वित कर सकता है। साझेदार शहरी सहकारी बैंकों को ये सुविधाएं अत्यन्त कम लागत पर उपलब्ध हो सकेंगी।

- शहरी सहकारी बैंकों की अधिशेष निधियों को शीर्ष शहरी सहकारी बैंक उधार लेकर अथवा संयुक्त विनियोजन के आधार पर विनियोजित कर सकता है। इससे शहरी सहकारी बैंकों की आय में वृद्धि होगी।

- वर्तमान में सब कुछ इलेक्ट्रॉनिक बैंकिंग एवं नेट के माध्यम से सम्भव हो गया है अत: शीर्ष शहरी सहकारी बैंक नेट बैंकिंग के माध्यम से सभी शहरी सहकारी बैंकों से जुड़ जायेंगे और उनको आपस में भी जुड़ने का लाभ मिलेगा।

- पूंजी बाजार में लाभदायक विनियोजन करना शीर्ष शहरी सहकारी बैंक के माध्यम से सम्भव होगा। शीर्ष शहरी सहकारी बैंक विनियोग विशेषज्ञों की सेवाएं लेकर आवश्यक परामर्श एवं सेवाएं शहरी सहकारी बैंकों को उपलब्ध करा सकेगा।

- यदि विज्ञापन विस्तृत क्षेत्र में प्रभावी एवं बारम्बार किया जाये तो यह विनियोग होता है अत: शीर्ष शहरी सहकारी बैंक द्वारा किया गया राष्ट्रीय स्तर पर विज्ञापन सभी साझेदार शहरी सहकारी बैंकों के लिए लाभप्रद रहेगा।

- गैर-निधि एवं शुल्क आधारित व्यवसाय यथा परामर्श, विनिमय, डीमैट एकाउन्ट, पोर्टफोलियो प्रबन्धन, ईसीएस आदि के लिए विशेषज्ञता, समर्थता, संसाधन एवं तत्परता आवश्यक है। इसकी पूर्ति शीर्ष शहरी सहकारी बैंक ही कर सकता है एवं सभी साझेदार, शहरी सहकारी बैंक

उसका लाभ उठा सकते हैं।

- शीर्ष शहरी सहकारी बैंक, हायर पर्चेज, लीजिंग, बीमा, पूंजी निर्गम प्रबन्धन आदि कार्यों को अपना सकता है जो सभी साझेदार शहरी सहकारी बैंकों के लिए लाभप्रद रहेंगे।

- संरचनात्मक विकास एवं बड़ी लागत की परियोजनाओं में विनियोग के अवसर शहरी सहकारी बैंकों के लिए दूर की बात है जबकि शीर्ष शहरी सहकारी बैंक द्वारा यह कार्य सम्भव होगा। फलस्वरूप सभी साझेदार शहरी सहकारी बैंक लाभान्वित होंगे।

शीर्ष शहरी सहकारी बैंक का गठन, शहरी सहकारी बैंकों का पूरक या सहयोगी होकर उनकी अक्षमताओं एवं कमजोरियों को दूर कर उन्हें विकास के पथ पर ले जायेगा। शीर्ष शहरी सहकारी बैंक नये शहरी सहकारी बैंकों की स्थापना में मार्गदर्शक की भूमिका निभायेगा तथा कमजोर एवं बीमार बैंकों हेतु चल रही पोषक योजना में चिकित्सक के रूप में कार्य करेगा। बैंकिंग उद्योग में चल रही प्रचार की आंधी एवं गलाकाट प्रतिस्पर्धा में आज शहरी सहकारी बैंकों को शीर्ष शहरी सहकारी बैंक का संरक्षण आवश्यक हो गया है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि शीर्ष शहरी सहकारी बैंक इस सदी की अनिवार्यता है जिसकी स्थापना से शहरी सहकारी बैंकों को नई दिशा, ऊर्जा, सामर्थ्य एवं उन्नति प्राप्त हो सकेगी। इस कार्य में भारतीय रिज़र्व बैंक, राज्य एवं केन्द्रीय सरकारों की महती भूमिका रहेगी। इस कार्ययोजना का लाभ पूरे बैंकिंग जगत एवं उसके हितधारकों को अनिवार्य रूप से मिलेगा।

यूसीबी क्षेत्र का समेकन और सुदृढ़ीकरण
मजबूत बैंकों द्वारा कमजोर बैंकों के विलयन/अधिग्रहण में वर्षवार हुई प्रगति (जारी एनओसी)
(30 जून 2010 को)

क्रम सं.	राज्यों के नाम	2004-05	2005-06	2006-07	2007-08	2008-09	2009-10	2010-11	**कुल**
1	महाराष्ट्र	-	5	6	11	6	10	-	**38**
2	गुजरात	1	5	5	6	3	4	-	**24**
3	आंध्र प्रदेश	-	2	1	3	1	3	-	**10**
4	कर्नाटक	-	-	3	2	1	1	-	**7**
5	गोवा	-	1	-	-	-	-	-	**1**
6	राजस्थान	-	-	-	-	-	-	-	**-**
7	दिल्ली	-	-	-	-	-	-	-	**-**
8	पंजाब	-	-	1	-	-	-	-	**1**
9	मध्यप्रदेश	-	-	1	2	1	2	-	**6**
10	उत्तराखंड	-	-	-	2	-	-	-	**2**
11	छत्तीसगढ़	-	-	-	-	1	-	-	**1**
12	बहु-राज्य	-	1	-	-	-	-	-	**1**
कुल (1 से 12)		1	14	17	26	13	20	-	**91**

स्रोत : भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति एवं प्रगति पर रिपोर्ट, 2009-10

पुस्तक का नाम	:	**तुलनपत्र का विश्लेषण और कार्यशील पूंजी का आकलन**
लेखक का नाम	:	श्री रविनाथ टंडन
प्रकाशक	:	आधार प्रकाशन, पंचकुला (हरियाणा)
पृष्ठ संख्या	:	180
मूल्य	:	250 रुपये

विश्व में मानव समाज ने जो प्रगति की है उसमें उद्योगों और कारोबार का बहुत बड़ा योगदान रहा है। यह भी एक सत्य है कि कोई भी कारोबार बिना पूंजी और उद्यमशीलता के नहीं चल सकता, वैसे तो देखें तो उत्पादन या कारोबार के लिए सभी साधन अपने-अपने स्थान पर महत्व रखते हैं, लेकिन पूंजी का महत्व कुछ विशेषता लिए हुए है। बहुत बड़ा उद्योग घराना हो या किसी का छोटा व्यापार या फिर कोई बहुराष्ट्रीय कम्पनी - कोई भी पूंजी के महत्व को नकार नहीं सकता। सभी इस पर निर्भर हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में पूंजी के प्रकार, गुणवत्ता, मात्रा, आदि के बारे में तरह-तरह के विश्लेषण और आकलन किए जाते हैं। इस प्रकार के आकलन और विश्लेषण एक बैंकर की दृष्टि से और भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं, क्योंकि इन्हीं आकलनों के आधार पर बैंक किसी कारोबार के लिए, जमे जमाए उद्योग के लिए अतिरिक्त ऋण प्रदान करते हैं। पूंजी के इतने महत्व को आप यदि मूर्त रूप में देखना चाहें तो आप किसी भी उद्योग के बही खातों में तुलनपत्र को देख सकते हैं। लेकिन केवल तुलनपत्र को देखने से पूंजी की गुणवत्ता के बारे में कुछ जानकारी कर पाना संभव नहीं होता है। इसके लिए तुलन पत्र का अध्ययन अपेक्षित होता है और इस कार्य को कैसे किया जाए इसका विश्लेषण किया गया है - तुलनपत्र का विश्लेषण और कार्यशील पूंजी का आकलन नामक पुस्तक में।

प्रस्तुत पुस्तक में बैंक में कार्यरत श्री रविनाथ टंडन ने तुलनपत्र के विश्लेषण और कार्यशील पूंजी के आकलन का बहुत ही सारगर्भित और सूक्ष्म चित्रण किया है। यह पुस्तक मूल रूप से एक बैंकर को ध्यान में रखते हुए लिखी गई है। कुल नौ अध्यायों में लिखी हुए इस पुस्तक में सबसे पहले तुलनपत्र के महत्व को काफी बारीकी से समझाया गया है। प्रथम अध्याय में ही लेखा पद्धति की धारणाओं और सीमाओं को बहुत ही आसान भाषा में समझाया गया है। इसी अध्याय में यह भी बता दिया गया है कि एक बैंकर के लिए तुलनपत्र का क्या महत्व है और किसी भी उद्योग या कारोबारी को ऋण देते समय या अन्य वित्तीय सुविधाएं देते समय तुलनपत्र की क्या उपयोगिता रहती है। व्यावसायिक लेखे किस प्रकार से तैयार किए जाते हैं, व्यय को किस प्रकार से लेखांकित किया जाए आदि को सरलता से समझाया गया है।

द्वितीय अध्याय में वित्तीय विवरणियों के बारे में बताया गया है। वस्तुत: वित्तीय विवरणियों में तुलन पत्र के साथ प्रस्तुत किए जाने वाले व्यापार खाता, लाभ-हानि खाते भी काफी महत्त्वपूर्ण होते हैं। इनका विश्लेषण किसी भी व्यापारिक इकाई की सम्पूर्ण स्थिति को प्रकट करने में सहायक होता है और यदि कोई बैंकर इनमें से किसी भी खाते के सही विश्लेषण में चूक करता है तो उसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं। तुलनपत्र में आपको शुद्ध लाभ के आंकड़े तो मिल जाएंगे, लेकिन इस शुद्ध लाभ की गणना कैसे हुई इसका ज्ञान लाभ-हानि खाते के माध्यम से ही हो सकेगा। निश्चय ही एक बैंकर की दृष्टि से इन खातों का महत्व होता है और इसी महत्व को इस अध्याय में विशद रूप से बहुत बारीकी से समझाया गया है। इसी के पूरक रूप में तीसरे अध्याय में वित्तीय विवरणियों की अलग-अलग मदों के बारे में विस्तार से चर्चा की गई और प्रत्येक मद के गुण-दोष बताते हुए आकलन में रखी जाने वाली सावधानियों के बारे में बताया गया है। यहीं से आपको पता चलेगा कि आपको पूंजी के चार स्वरूप देखने को मिलेंगे यथा - प्राधिकृत पूंजी, निर्गमित पूंजी, अभिदत्त पूंजी और प्रदत्त पूंजी। लेखक ने इन चारों को बहुत ही सरल शब्दों में व्यक्त किया है।

चौथे अध्याय में लेखक ने बहुत ही महत्वपूर्ण तथ्य अर्थात तुलनपत्र आदि में दिए गए आंकड़ों की स्वीकार्यता के बारे में बताया है। यह बहुत ही जरूरी होता है कि हमारे सामने जो आंकड़े दिए गए हैं वे सही भी हैं या नहीं। यदि किसी कारोबारी ने किसी प्रकार का छल प्रपंच करते हुए झूठे या मनगढ़ंत आंकड़े दे दिए हैं तो उन्हें कैसे पकड़ा जा सकता है। इसी बात को और आगे बढ़ाते हुए पांचवे अध्याय में लेखक ने तुलन पत्र के विश्लेषण के तरीके का उल्लेख किया है। इस विश्लेषण में विशेष रूप से ध्यान दी जाने वाली मदों अर्थात बिक्री, उत्पाद शुल्क और शुद्ध लाभ के आपसी संबंध का भी उल्लेख लेखक ने किया है।

छठे अध्याय में लेखक ने सबसे कठिन कार्य अनुपात विश्लेषण समझाया है। तुलनपत्र तथा इससे संबद्ध लेखा विवरणियों के आकलन में सर्वाधिक कठिन कार्य है अनुपात विश्लेषण। किसी भी प्रतिष्ठान के लिए विभिन्न आंकड़ों से कोई सार्थक परिणाम निकालने के लिए यह जरूरी है कि आंकड़ों का नियमानुसार तुलनात्मक अध्ययन किया जाए। इसके बिना आगे का कार्य संभव नहीं है, इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए लेखक ने लेखा विवरणियों की प्रत्येक मद को गणितीय दृष्टि से देखते हुए विश्लेषण की विधि समझाई है, साथ ही यह भी बताया है कि अनुपात के परिणामों के आधार पर कौन सी स्थिति किसी प्रतिष्ठान के लिए सही है या गलत। अनुपात निकालने की सभी विधियों का यहां परिचय दे पाना, स्थानाभाव के कारण संभव नहीं है, इसके लिए आपको पुस्तक का अध्ययन करना होगा।

सातवें, आठवें और नौवें अध्यायों में क्रमश: निधि प्रवाह और कार्यशील पूंजी निर्धारण के बारे में विस्तार से समझाया गया है। निधियों के दीर्घकालिक उपयोग और स्रोत दोनों के बीच संबंध और इस विवरण को बनाने का जो तरीका बताया गया है वह किसी भी संस्थान की वास्तविक स्थिति बताने के लिए पर्याप्त है। इसी प्रकार व्यवसाय को जारी रखने के लिए अल्प अवधि की सम्पत्तियां का होना भी अनिवार्य है, अन्य शब्दों में इसी को कार्यशील पूंजी भी कहा जाता है। कार्यशील पूंजी निर्धारण की सभी विधियों अर्थात परिचालन चक्र, कैश बजट या फिर विभिन्न समितियों द्वारा की गई अनुशंसाओं के आधार पर कार्यशील पूंजी निर्धारण की विधि का लेखक ने सरल और रोचक चित्रण किया है।

इसके बाद लेखक ने तुलन पत्र के विश्लेषण के दौरान रखी जाने वाली सावधानियों का उल्लेख किया है कि किस प्रकार से भ्रमित करने वाले तुलनपत्र बनाए जाते हैं, और यदि थोड़ी सी सावधानी रखी जाए तो किस प्रकार इन्हें तुरन्त ही पकड़ा भी जा सकता है।

कुल मिलाकर श्री टंडन का यह प्रयास बहुत ही सराहनीय है। बैंक में कार्यरत अधिकारियों के लिए यह पुस्तक काफी उपयोगी हो सकती है। पुस्तक की शैली बहुत ही रोचक है और एक जटिल तथा नीरस विषय को जिस सहज और सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया है वह बधाई के योग्य है। भाषा के स्तर पर कहीं कहीं इतना जरूर हुआ है कि मानक शब्दावली का प्रयोग नहीं हुआ है, लेकिन उससे पुस्तक की रोचकता बढ़ी है, जैसे - Closing stock के लिए रहतिया शब्द का प्रयोग किया गया है। यह शब्द मानक शब्दावली में नहीं मिलेगा लेकिन जनसाधारण में इसका प्रयोग होता है। प्रत्येक अध्याय के आरंभ में ही जो सार संक्षेप दिया गया है, वह पाठक के लिए एक मार्गदर्शक का कार्य करता है। यदि आप बहुत जल्दी में हों या किसी साक्षात्कार की तैयारी कर रहे हों तो यह सार संक्षेप काफी उपयोगी सिद्ध हो सकता है। पुस्तक में गणितीय उदाहरण इतनी सरलता के साथ समझाए गए हैं कि गणित का साधारण जानकार भी उनका उपयोग करते हुए अपेक्षित परिणाम हासिल कर सकता है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि आधार प्रकाशन द्वारा प्रकाशित यह पुस्तक किसी बैंकर के साथ-साथ वाणिज्य विषय के सामान्य अध्ययनकर्ताओं के लिए भी उपयोगी हो सकती है।

● **के.पी. तिवारी**
प्रबंधक (राजभाषा)
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

अनुचिंतन

कल ही चिन्तन-अनुचिन्तन का जुलाई-सितम्बर 2010 अंक प्राप्त हुआ और अत्यन्त व्यस्तताओं के बीच भी आज ही मैंने पूरा पढ़ा भी लिया, क्योंकि लगा ही इतना अच्छा।

आत्म-मन्थन को मजबूर करता सम्पादकीय बेहद प्रेरक लगा। नित नयी खोजों और तकनीकों के साथ ज्ञान को अद्यतन रखने के लिए एक सफल बैंकर हेतु ज्ञान-पिपासु होना अति आवश्यक है। हालांकि हम सभी समय की महत्ता को जानते एवं समझते हैं, मगर 'समय-प्रबन्धन' लेख उन लोगों के लिए मार्गदर्शी है जो समय के शिलालेखों में अपना नाम दर्ज करवाना चाहते हैं। '...जो भी करो जुड़कर करो' साक्षात्कार स्तम्भ क्या आपकी पूरी पत्रिका यही कहती हुई - प्रतीत हुई। सच कहूं तो साक्षात्कार स्तंभ मुझे ऊर्जा प्रदान करता है। अब तक मेरे पास पत्रिका के तीन अंक हैं जिनमें से मैंने प्रत्येक साक्षात्कार को दो-दो बार तो अवश्य ही पढ़ा है। अब 'इतिहास के पन्नों से' में सिलसिलेवार आप बैकों की कहानी से परिचित करवायेंगे। निश्चय ही यह प्रयास भी रोचक, ज्ञानवर्धक व प्रेरक होगा। उम्मीद है आप इन दोनों स्तम्भों में ग्रामीण बैंकों को भी सम्मिलित करेंगे। चूंकि भारत की आत्मा गाँव में बसती है और उसे सींचने एवं पुष्पित पल्लवित करने का महायज्ञ ग्रामीण बैंकों के माध्यम से सम्पन्न हो रहा है।

एक बेहतरीन अंक के लिए साधुवाद।

● **आशा रानी खत्री**
हरियाणा ग्रामीण बैंक
प्रधान कार्यालय, देहली रोड
रोहतक

आपने संपादकीय में बड़े ही सारगर्भित ढंग से बड़ी सटीक बातें कही हैं। पत्रिका में प्रकाशित लेख एन एल पी–सफलता की कुंजी तथा भारतीय बैंकिंग कोड एवं मानक बोर्ड ज्ञानवर्धक हैं। लेखकों को साधुवाद। पत्रिका चिंतन के माध्यम से राजभाषा के बढ़ते कदम और अधिक सार्थक हों–यही कामना है।

इतने सुंदर प्रकाशन के लिए संपादन मंडल बधाई का पात्र है।

● **परमजीत सिंह घावरी**
महाप्रबंधक (राजभाषा)
पंजाब एण्ड सिंध बैंक, नई दिल्ली

बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन का जुलाई-सितम्बर 2010 अंक नये उपयोगी आलेखों के साथ प्राप्त हुआ। संपादकीय के अंतर्गत डॉ. पुष्पकुमार शर्मा की ''गुरु महत्ता'' प्रेरणादायक है। ''अतीत से आज तक'' नया स्तंभ बहुत अच्छा है, ऐसे नये स्तंभ के लिए बधाई स्वीकार करें। ''बड़ा सोचो, बड़ा बनो'' श्री जे. पी. दुआ जी के प्रेरणादायक शब्द आज के बैंकिंग जगत के लिए ''मील का पत्थर'' हैं, वास्तव में प्रतिस्पर्धात्मक दौर में यही अवधारणा शतप्रतिशत तक बढ़ने के लिए लालाथित करेगी। 'इधर-उधर से' के अंतर्गत संकलन उपयोगी है एवं कई जिज्ञासाओं का समाधान करता है। आशा है, आगामी अंक बहुपयोगी जानकारी के साथ शीघ्र प्राप्त होगा। उच्च स्तरीय संपादन एवं प्रकाशन के लिए बधाई स्वीकारें...

● **संतोष श्रीवास्तव**
यूनियन बैंक आफ इंडिया
स्टाफ प्रशिक्षण केन्द्र, भोपाल

बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन का जनवरी-जून 2010 संयुक्तांक प्राप्त हुआ। आपका संपादकीय पढ़ा। मनुस्मृति का प्रमाण देकर, यदि सब कुछ श्रेष्ठता के पैमाने पर ही हो रहा है तो फिर असंतोष क्यों, असमझ क्यों? क्या हम अपनी बुद्धि को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित कर पाते है? हम संभवत: ज्ञान और बुद्धि का अंतर स्पष्ट नहीं कर पा रहे हैं।

आपकी बात बिलकुल सही है। कई सवाल ऐसे होते है जिनका हल बुद्धि से नहीं दे सकते, लेकिन ये उलझन ज्ञान से, अनुभव से, तुरंत सुलझ जाती है। एक बहुत ही अच्छा विचार देने के लिए आपका अभिनंदन।

● **दिनकर एस. चौगुले**
सहायक महाप्रबंधक
क्षेत्रीय कार्यालय
बैंक ऑफ महाराष्ट्र, जलगांव

''बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन का जनवरी-जून 2010'' का संयुक्तांक देखा। पहली बार ही इस पत्रिका को पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बैंकिंग पर व्यावसायिक जगत जुड़े सभी आलेख व अन्य रचनाएं उत्पन्न ज्ञानवर्धक व रुचिकर लगी।

● **रमेशचन्द्र कर्नावट**
उज्जैन, मध्यप्रदेश

हमें 'चिंतन-अनुचिंतन' लगातार मिल रही है। पत्रिका मिलते ही हम वाचनालय में रख देते हैं। हमारे यहाँ पढ़नेवाले कर्मचारी गण बढ़े चाव से पढ़ते हैं।

पत्रिका की सुन्दर साज-सज्जा के साथ स्तरीय रचनाएँ देखकर अत्यन्त हर्ष होता है। कई संस्थानो द्वारा प्रकाशित गृह पत्रिकाओं से बेहतर पाया है। लेखकों के लेख ज्ञानवर्द्धक और प्रशंसनीय है। हर एक अंक हर प्रकार से आकर्षक और संग्रहणीय है। मनमोहक आकृति, स्तरयुक्त वाचक, उपयोगी सामग्री प्रकाशित करने के लिए सम्पादक को साधुवाद।

● **आर. स्वामीनाथन**
सचिव
''स्वागतम'' एच.टी.सी.
मयिलाडुदुरै, तमिलनाडु

हमें आपकी पत्रिका ''**बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन**'' अंक जुलाई-सितम्बर, 2010 मिला, धन्यवाद। संपादकीय में मानव जीवन में गुरु के महत्व का वर्णन करते हुए उसे सांसारिक जीवन से बहुत ही सुन्दर ढंग से जोड़ा गया है। स्कूली शिक्षा से ज्ञान की व्यापकता और गुरू कृपा से सूक्ष्मता प्राप्त होती है, अक्षरांशा सत्य है। 'भारतीय बैंकिंग कोड एवं मानक बोर्ड' सहीत अन्य सभी प्रकाशित सामग्री ज्ञानवर्धक एवं रोचक है। संपादक मंडल को हमारी ओर से शुभकामनाएं।

● **अमर सिंह सचान**
हिन्दी अधिकारी
राष्ट्रीय आवास बैंक, नई दिल्ली

बैंकिंग चिंतन-अनुचितंन जुलाई-सितम्बर, 2010 पढ़ने का मौका मिला। धन्यवाद। पत्रिका के सभी लेख रूचिकर, ज्ञानवर्धक और समसामयिक हैं। इसकी साज-सज्जा और मुखपृष्ठ विशेष रूप से आकर्षक हैं। पत्रिका के लेख इसकी विविधता को रेखांकित करते हैं। जहां एक ओर इसका संपादकीय गुरु की महिमा का गुणगान करता है वहीं दूसरी ओर **भारतीय बैंकिंग कोड एवं मानक बोर्ड, बैंकिंग और जोखिम, रिवर्स मार्गेज योजना-बुजुर्गों का सहारा** जैसे लेख बैंकिंग क्षेत्र की समसायिक व्यावसायिकता को उजागर करते हैं। श्री काज़ी ने अपने आलेख में समय प्रबंध पर कैलकुलेटिव दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है जो इसके महत्व और उद्देश्य को दर्शाता है। साक्षात्कार स्तंभ के जरिए श्री जे. पी. दुआ के प्रोफेशनल व्यक्तित्व से रू-ब-रू होने का मौका मिला, जानकर खुशी हुई। मुझे पूरी पत्रिका ही रोचक लगी लेकिन **इतिहास के पन्नों से** स्तंभ काफी रोचक एवं ज्ञानवर्धक था। यह आलेख इलाहाबाद बैंक के इतिहास के पन्नों में झांकते हुए इसकी अब तक की यात्रा के क्रमिक विकास को दर्शाता है जो वाकई प्रशंसनीय है। अगले अंक का इंतजार रहेगा...

● **डॉ. शम्भू शरण नायक**
गरीफा, 24 परगना (उत्तर)
पश्चिम बंगाल

लेखकों से

इस पत्रिका का उद्देश्य बैंकिंग और उससे संबंधित विषयों पर हिन्दी में मौलिक सामग्री उपलब्ध कराना है। बैंकिंग विषयों पर हिन्दी में मूल रूप से लिखने वाले सभी लेखकों से सहयोग मिले बिना इस उद्देश्य की पूर्ति कैसे होगी? हमें इसमें आपका सक्रिय सहयोग चाहिए। बैंकिंग विषयों पर हिन्दी में मूल रूप से लिखे स्तरीय लेखों की हमें प्रतीक्षा रहती है। साथ ही, अर्थशास्त्र, वित्त, मुद्रा बाज़ार, पूंजी बाज़ार, वाणिज्य, विधि, मानव संसाधन विकास, कार्यपालक स्वास्थ्य, मनोविज्ञान, परा बैंकिंग, कम्प्यूटर, सूचना प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों से जुड़े विशेषज्ञ इन विषयों पर व्यावहारिक या शोधपूर्ण मौलिक लेख भी हमें प्रकाशनार्थ भेज सकते हैं। प्रकाशित लेखों और पुस्तक समीक्षाओं पर **मानदेय देने** की व्यवस्था है। **कृपया प्रकाशनार्थ सामग्री भेजते समय यह देख लें कि :**

- सामग्री बैंकिंग और उससे संबंधित विषयों पर ही है।
- उसमें दी गयी जानकारी उपयोगी और अद्यतन है एवं अधिकतम 8 टंकित पृष्ठों में है।
- लेख यदि संभव हो तो सी.डी. में आकृति/एपीएस फांट में भेजने की व्यवस्था की जाए।
- वह कागज़ के एक ओर स्पष्ट अक्षरों में लिखित अथवा टंकित है।
- यथासंभव सरल और प्रचलित हिंदी शब्दावली का प्रयोग किया गया है और अप्रचलित एवं तकनीकी शब्दों के अर्थ कोष्ठक में अंग्रेजी में दिये गये हैं।
- यह प्रमाणित करें कि लेख मौलिक है, प्रकाशन के लिए अन्यत्र नहीं भेजा गया है और 'बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन' में प्रकाशनार्थ प्रेषित है।
- लेख में शामिल **आंकड़ों, तथ्यों आदि के संबंध में स्रोत का स्पष्ट उल्लेख करें।**
- प्रकाशन के संबंध में यह सुनिश्चित करें कि **जब तक लेख संबंधी अस्वीकृति की सूचना प्राप्त नहीं होती, संबंधित लेख किसी अन्य पत्र-पत्रिका में प्रकाशनार्थ न भेजा जाए।**

प्रकाशकों से

जो प्रकाशक अपनी पुस्तक की समीक्षा करवाना चाहते हैं
वे कृपया अपनी पुस्तकों की दो प्रतियां भिजवाने की व्यवस्था करें।

पाठकों से

इस पत्रिका को आप नि:शुल्क प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिए आपको लिखित रूप में 'कार्यकारी संपादक, बैंकिंग चिंतन अनुचिंतन' से अनुरोध करना होगा। आपका पत्र मिलते ही आपका नाम डाक सूची में शामिल कर लिया जाएगा और तदनंतर आपको पत्रिका निरंतर मिलती रहेगी। आपसे अनुरोध है कि अपने सहयोगियों को भी यह जानकारी प्रदान करें तथा अपनी मांग से हमें तत्काल अवगत कराएं ताकि हम तदनुसार प्रतियों का मुद्रण कर सकें। **पुराने पाठक कृपया पत्राचार करते समय अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख अवश्य करें।**

- **सुधी पाठकों की प्रतिक्रियाओं का हमें सदैव इंतजार रहता है।**

बैंकिंग पारिभाषिक कोश का प्रकाशन

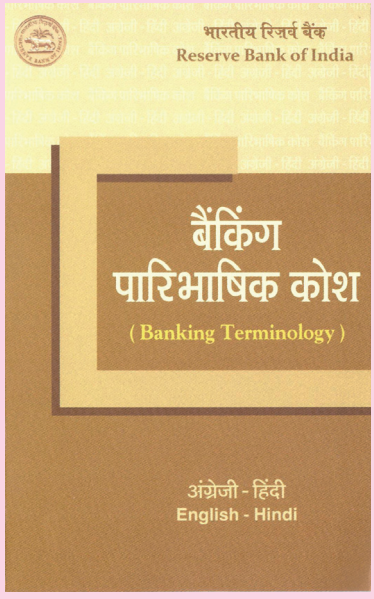

भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा हाल ही में बैंकिंग एवं वित्तीय जगत से जुड़ी संकल्पनाओं / अवधारणाओं पर आधारित बैंकिंग पारिभाषिक कोश का प्रकाशन किया गया है। 301 पृष्ठ वाले इस कोश का मूल्य 75/- रुपये (डाक व्यय अतिरिक्त) है। इसे प्राप्त करने हेतु निम्न पते पर संपर्क किया जा सकता है:

निदेशक, रिपोर्ट, समीक्षा और प्रकाशन (बिक्री अनुभाग)

आर्थिक विश्लेषण और नीति विभाग
भारतीय रिज़र्व बैंक
अमर भवन, फोर्ट, मुंबई-400 001

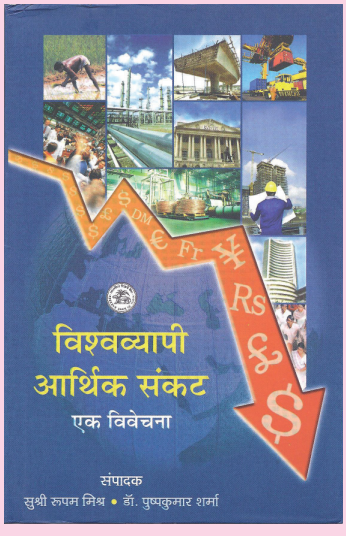

भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा प्रकाशित नवीनतम हिन्दी पुस्तक

'विश्वव्यापी आर्थिक संकट - एक विवेचना'

मूल्य : 250/- रुपये

पुस्तक मिलने का पता

मै. आधार प्रकाशन प्रा. लि.
एस.सी.एफ. 267, सेक्टर 16
पंचकुला (हरियाणा)

इस अंक के प्रकाशन में राजभाषा विभाग, केन्द्रीय कार्यालय, भारतीय रिज़र्व बैंक के प्रबंधक (राजभाषा) श्री के. पी. तिवारी एवं सहायक प्रबंधक (राजभाषा) श्री पंढरीनाथ और श्री आशीष पूजन का सहयोग प्राप्त हुआ।

पंजीकरण संख्या - 47043/88

भारत में सहकारी ऋण संस्थाओं की संरचना
(मार्च 2010 के अंत में)

टिप्पणी : 1. कोष्ठक में दिए गए आंकड़े यूसीबी के लिए मार्च 2010 के अंत में और ग्रामीण सहकारी ऋण संस्थाओं के लिए मार्च 2009 के अंत में संस्थाओं की संख्या दर्शाते हैं। 2. ग्रामीण सहकारी समितियों के लिए बैंकों की संख्या से तात्पर्य रिपोर्टिंग बैंकों से है।